21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध

IKKISVI SADI KE PRAMBHIK DO DASHKO KE NAVGEETON ME YUGBODH

A Thesis

Submitted in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

(HINDI)

By

SANJAY SINGH YADAV

(41800351)

Supervised By

DR. VINOD KUMAR

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

PUNJAB

2022

समर्पण

माता पिता को

जिन्होंने जन्म दिया

गुरुजनों को

जिन्होंने समय को समझने

के लिए दृष्टि दी

घोषणा - पत्र

मैं संजय सिंह यादव, शोधार्थी पीएच. डी. हिन्दी, सत्य व निष्ठापूर्वक प्रमाणित करता हूँ कि '**21वीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध**' विषय पर किया गया शोध मेरा मौलिक शोध कार्य है। प्रस्तुत शोध प्रबंध लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच. डी. हिन्दी की उपाधि हेतु किया गया है। यह शोध **डॉ. विनोद कुमार** एसोसिएट प्रोफेसर, समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय, लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब के निर्देशन में पूरा किया गया है।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि मेरे द्वारा किया गया प्रस्तुत शोध प्रबंध आंशिक अथवा पूर्ण रूप से किसी अन्य उपाधि के लिए अन्य किसी विश्वविद्यालय को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

दिनांक :

संजय सिंह यादव (शोध छात्र)

पंजीयन संख्या : 41800351

समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय,

लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब।

प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी संजय सिंह यादव ने **'21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध'** विषयक शोध प्रबंध मेरे निर्देशन में स्वयं लिखा है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री शोधपरक एवं मौलिक है। मैं इस शोध प्रबंध को लवली प्रोफेशन यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच.डी. हिन्दी की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

दिनांक :

(डॉ. विनोद कुमार)
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय,
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,
फगवाड़ा, पंजाब

प्राक्कथन

गीतों ने सदैव से मेरे जीवन को प्रभावित किया है, लोकगीतों से होता हुआ, यह सफर विभिन्न पड़ावों को पार करता हुआ, नवगीतों तक पहुँच गया। गीत एवं नवगीतों का पिछले कई वर्षों से निरन्तर अध्ययन कर रहा हूँ। शोध कार्य के लिए मुझे शोध–निर्देशक एवं हिंदी विभाग ने मुझे अपनी रुचि के विषय पर ही शोध करने के लिए प्रेरित किया। इसलिए मैंने **'21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध'** विषय को शोध कार्य हेतु चुना।

गीत–नवगीत, लोकगीत आदि विधायें समाज के ताने–बाने का प्रमुख अंग रही हैं। हमारे जन्म से लेकर जीवन में होने वाले प्रत्येक शुभ–अवसर का आनन्द गीतों से ही पूर्ण होता है। नवगीत, हिन्दी साहित्य परम्परा में अपना प्रमुख स्थान बना चुका है। वर्तमान समय के युगबोध का नवगीतों में वर्णन, किस प्रकार हो रहा है, इसका अध्ययन करते हुए, समसामयिक समस्याओं का निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है, यह इस शोध का उद्देश्य है।

प्रथम अध्याय '**सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि**' में 'युगबोध का अर्थ, उसके विभिन्न आयाम, नवगीत उद्‌भव एवं उसके विकास की प्रक्रिया के साथ ही 21वीं सदी के नवगीत का परिचय, प्रमुख प्रवृत्तियाँ, 21वीं सदी में नवगीत के प्रमुख हस्ताक्षरों के साथ ही नवगीत आलोचना पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय '**सामाजिक युगबोध**' में विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों, उनके कारण उत्पन्न स्थितियों, का विवेचन किया है। साथ ही वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों के कारण किस प्रकार समाज में असमानता बढ़ रही है, उसका भी वर्णन है। साथ ही सामाजिक समरसता के पहलुओं को भी दर्शाया गया है ।

तृतीय अध्याय '**आर्थिक युगबोध**' में वर्तमान समयकाल में 'अर्थ' का महत्त्व कितना बढ़ गया है, उसका निरुपण है। 'अर्थ' के इस बढ़ते महत्व के कारण उत्पन्न आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण आदि पक्षों का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय **'राजनीतिक युगबोध'** में वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। राजनेताओं में बढ़ती 'स्व' प्रवृत्ति, नेता–नौकरशाही–माफिया गठजोड़, के कारण बढ़ती स्वार्थपरकता का भी विश्लेषण किया गया है। समाज में राजनेताओं का गिरता महत्व एवं उस पर नवगीतकारों द्वारा किये गये कटाक्षों/व्यंग्यों का भी विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय **'सांस्कृतिक युगबोध'** में ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति के अच्छे एवं बुरे, दोनों पहलुओं का समग्रता से अध्ययन किया गया है। वर्तमान समय में हो रहे सांस्कृतिक संक्रमण के कारण उत्पन्न परिस्थितियों से होने वाली पीड़ा को विश्लेषित किया गया है।

षष्ठम अध्याय **'पर्यावरण युगबोध'** में पर्यावरण के असंतुलित एवं अवैज्ञानिक दोहन के कारण, पर्यावरण को हो रही हानि का विवेचन किया गया है। पर्यावरण हानि को रोकने हेतु नवगीतकारों के द्वारा अपने नवगीतों के माध्यम से किस प्रकार, जन–मानस को सचेत किया जा रहा है, इसको स्पष्ट किया गया है।

सप्तम अध्याय **'साहित्यिक युगबोध'** में नवगीतों पर युगबोध के प्रभाव की विवेचना की गई है। प्रत्येक समयकाल का साहित्य अपनी युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है, इस कारण से उसके शिल्प विधान, उसकी कथ्य परम्परा, उसमें प्रयुक्त होने वाले बिम्ब एवं प्रतीक में किस प्रकार परिवर्तन आता है, इसको स्पष्ट किया गया है। भाषा के स्तर पर नये शब्दों के चयन एवं प्रयोग को भी स्पष्ट किया गया है।

अष्टम अध्याय **'समसामयिक समस्याओं के सांकेतिक निवारण बिन्दुओं का विश्लेषण'** में नवगीतकारों के द्वारा, अपने नवगीतों में किस प्रकार से वर्तमान समस्याऐं हल हो सकती है, उसको विश्लेषित किया गया है। प्रत्येक नवगीतकार वर्तमान समस्याओं को किस प्रकार देखता है एवं समाज से उसकी क्या अपेक्षायें है, इसको भी विश्लेषित किया गया है।

नवम अध्याय **'व्यवहारिक पक्ष'** में प्रश्नावली के माध्यम से नवगीत के भूत, भविष्य, वर्तमान को जानने का प्रयास किया गया है। नवगीत विधा का हिन्दी

साहित्य आलोचना में स्थान, उसके गुण, 20वीं सदी के नवगीतों की 21वीं सदी के नवगीतों से किन आयामों पर भिन्नता है, इसे भी जानने का प्रयास किया गया है।

उपर्युक्त अध्यायों के पश्चात अंत में '**उपसंहार**' में शोध के निष्कर्षों को दिया गया है। साथ ही भविष्य में होने वाले शोध कार्य हेतु, संभावनाओं का भी वर्णन किया गया है।

सर्वप्रथम मैं इस शोध प्रबंध के निर्देशक परमपूज्य गुरुवर डॉ. विनोद कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान एवं भाषा संकाय, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, फगवाड़ा, पंजाब के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी प्रेरणा एवं मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही, इस शोध कार्य को सम्पन्न करने में सफल हो सका हूँ। श्रेष्ठ गुरु का निर्देशन मिल जायें, तो संसार में किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है। यह मेरा सौभाग्य रहा, जो मुझे श्रेष्ठ गुरुवर का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। समय–समय पर उनसे प्राप्त उत्साह, स्नेह एवं सहयोग अविस्मरणीय है। मैं पूरे विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी, अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने समय–समय पर, अपने अमूल्य सुझाव और दिशा–निर्देशन प्रदान कर मेरा मार्गदर्शन किया।

अपने इस शोध कार्य में मुझे जिन आत्मीयजनों का सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उनके प्रति भी आभार प्रदर्शन करता हूँ। सर्वप्रथम प्रातः वंदनीय माता–पिता के आशीवार्द को इस कार्य की पूर्णता में अहम् मानता हूँ। अपने परिवार एवं मित्रों के द्वारा प्राप्त स्नेह, सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए जितना भी कहूँ, कम ही होगा। मैं उन सभी नवगीतकारों एवं साहित्य के अन्य क्षेत्रों में कार्य कर रहे, विद्वानों के द्वारा किये गये सहयोग एवं मार्गदर्शन के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

संजय सिंह यादव
(शोध छात्र)

''21वी सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध''

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

i. प्रस्तावना
ii. समस्या कथन
iii. समस्या औचित्य
iv. उद्देश्य
v. चुनौतियाँ
vi. प्रविधियाँ
vii. परिसीमांकन
viii. परिकल्पना
ix. पूर्व सम्बद्ध साहित्यावलोकन
x. शोध अन्तराल

प्रथम अध्याय – सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

1.1 युगबोध का अर्थ
1.2 युगबोध के विविध आयाम
1.3 नवगीत उद्भव व विकास
1.4 21वी सदी के नवगीतों का विहंगावलोकन
1.4.1 परिचय
1.4.2 प्रमुख प्रवृतियाँ
1.4.3 21वीं सदी में नवगीत के प्रमुख हस्ताक्षर
1.4.4 नवगीत व आलोचना

द्वितीय अध्याय – 21वीं सदी के नवगीतों में सामाजिक युगबोध

2.1 नवगीतों में सामाजिक यथार्थ का बोध

2.2 नवगीतों में सामाजिक व्यवस्था की संकीर्णता का वर्णन

2.3 सामाजिक असमानता का बोध

2.4 सामाजिक समरसता के बिन्दुओं का बोध

तृतीय अध्याय – 21वीं सदी के नवगीतों में आर्थिक युगबोध

3.1 कर्म संघर्ष के विभिन्न पक्षों का वर्णन

3.2 नवगीतों में आर्थिक शोषण का वर्णन

3.3 वर्ग संघर्ष से उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन

3.4 वर्तमान आर्थिक स्थितियों का आक्रोशात्मक भाव से वर्णन

चतुर्थ अध्याय – 21 वीं सदी के नवगीतों में राजनीतिक युगबोध

4.1 राजनीति भ्रष्टाचार का वर्णन

4.2 वर्तमान समय के राजनेताओं की स्वार्थपरकता का वर्णन

4.3 नौकरशाही के बढ़ते प्रभाव का वर्णन

4.4 वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों पर व्यंग्य

पंचम अध्याय – 21वीं सदी के नवगीतों में सांस्कृतिक युगबोध

5.1 नवगीतों में ग्रामीण संस्कृति

5.2 नवगीतों में शहरी संस्कृति

5.3 सांस्कृतिक संक्रमण से उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन

5.4 संस्कृति के धार्मिक पक्ष का वर्णन

5.5 सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास का बोध

5.5.1 ग्रामीण सांस्कृतिक ह्रास

5.5.2 शहरी सांस्कृतिक ह्रास

षष्ठम अध्याय – 21वीं सदी के नवगीतों में पर्यावरण युगबोध

6.1 पर्यावरण असंतुलन का वर्णन

6.2 पर्यावरण के अवैज्ञानिक दोहन का वर्णन

6.3 नवगीतों में पर्यावरण के ह्रास का वर्णन

6.4 नवगीतों द्वारा पर्यावरण के प्रति जनचेतना को जागृत करना

सप्तम अध्याय – 21वीं सदी के नवगीतों में साहित्यिक युगबोध

7.1 21वीं सदी के नवगीतों की वस्तु (कथ्य) योजना

7.2 21वीं सदी के नवगीतों में प्रयुक्त बिम्ब एवं प्रतीक

7.3 21वीं सदी के नवगीतों की शब्दावली

अष्टम अध्याय – 21वीं सदी के नवगीतों में समसामयिक समस्याओं के सांकेतिक निवारण बिन्दुओं का विश्लेषण

नवम अध्याय – 21वीं सदी के नवगीतों का व्यवहारिक पक्ष

उपसंहार

ग्रंथ सूची

1. आधार ग्रंथ
2. सहायक ग्रंथ
3. कोश ग्रंथ
4. पत्र–पत्रिकाएँ
5. इन्टरनेट

परिशिष्ट –

1. साक्षात्कार
2. प्रश्नावली
3. शोध आलेख
4. सम्मेलन सहभागिता

21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध

i <u>प्रस्तावना</u>

गीत जीवन की व्यथा है, दर्द है अनुभूति का।

हर्ष–विषाद, आनंद–करूणा, शब्दों का सैलाब है।

वर्तमान युगबोध पर आधारित प्रस्तुत शोध समाज के अन्दर वैचारिक एवं सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों में आ रहे परिवर्तन, के पुनरावलोकन का प्रयास है। इस शोध कार्य को हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा, नवगीतों पर आधारित किया गया है। गीत एवं नवगीत सदैव; मनुष्य के हमसफर रहे हैं। भारतीय संस्कृति में, गीत सदैव से ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मनुष्य का जीवन गीतों के अभाव में सूना–सूना रहा है। व्युत्पत्ति के अनुसार गीत दो धातुओं के योग से बना है – गै + कत, इसका अर्थ है, वह कला रचना; जो जनसामान्य द्वारा गाई जाती है। साहित्य जगत में छायावाद के पश्चात के गीतों ने, जब परम्परागत शिल्प विधान को छोड़कर नवीन पद्धति को अपनाया, तो उसके गीत से नवगीत बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। नवगीत विधा का विकास 19वी शताब्दी के छठे दशक से प्रारम्भ होता है। यह कोई नई विधा नहीं है, परन्तु पुरातन समय से चली आ रही गीतों की परम्परा का ही विकसित रूप है, जिसमें आज के समय में समकालीन नवगीत, जनगीत जैसे शब्द भी समाहित है। इसी को आधार बनाकर, 21वीं सदी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों को समेटते हुए, यह शोध कार्य उनके कार्य में वर्तमान युगबोध को खोजने का प्रयास है। जिसके द्वारा हम अपने मूल्यों में हो रहे विघटन को पहचान सके और उसे रोककर या रोकने का प्रयास कर, समाज को एक सही दिशा में बढ़ा सके।

ii **समस्या कथन**

''21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध''

आधुनिकता वह कारक है, जिसने मानव के जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं। यूँ तो यह 19वीं शदी से ही प्रारम्भ हो गयी थी, जब जेम्स वॉट ने भाप के इंजन का आविष्कार किया था, परन्तु भारत में आधुनिकता 1990 ई. के पश्चात उदारीकरण के दौर में आयी। जब अपने को वैश्विक बनाने की चाहत में, हमने सामाजिक से आर्थिक होना स्वीकार कर लिया। इस शोध कार्य में 21वीं सदी के नवगीत संग्रहों एवं नवगीतकारों के चयन का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है, क्योंकि 1990 ई. से शुरू, इस दौर ने सन् 2000 में एक दशक की उम्र प्राप्त कर ली थी। उसके परिणाम आने प्रारम्भ हो गये थे। 10 वर्ष का समय किसी भी परिवर्तन के परिणामों को देखने के लिए पर्याप्त होता है। उसके पश्चात के 20 वर्ष, नवगीतकारों के लिए भी इस परिवर्तन को व्यक्त करने हेतु पर्याप्त है।

iii **समस्या औचित्य**

समाज एवं मानव का व्यवहार सभ्य और सुसंस्कृत तभी कहलाता है, जब वो मूल्य आधारित, ग्रहणीय एवं जनकल्याणकारी व्यवहार हो, परन्तु आज के आधुनिक परिवेश में मूल्य, चाहे वह सांस्कृतिक हो, सामाजिक हो या ग्रामीण जीवन से जुड़े हो, वे या तो समाप्त हो रहे हैं या परिवर्तन से गुजर रहे हैं। कुछ विद्धान इसे मूल्यों का संक्रमण काल भी कहते हैं। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इस परिवर्तन के साथ ही, हमारे युगबोध के प्रतिमानों में भी परिवर्तन आ जाता है। युगबोध के प्रतिमानों में परिवर्तन, जब समाज पर लागू होते हैं, तो एक नवगीतकार भी इससे प्रभावित होता है, क्योंकि वह स्वयं भी समाज का एक अंग है। वह युगीन परिस्थितियों से जुड़े बोध को, सदैव से ही अपने नवगीतों में स्थान देता रहा है। नवगीतकारों की इसी दृष्टि के अवलोकन का विषय है, यह शोध।

iv **उद्देश्य**

हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तम्भ, नवगीतों में युगबोध का उल्लेख कभी कम नहीं रहा है, युगबोध में जिस प्रकार के परिवर्तन हुए उसी के साथ–साथ नवगीतों ने, उसके विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया। यह दोनों धारायें साथ–साथ चलती रही है। अतः इसी तथ्य की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य होंगे :–

- 21वीं सदी में वैश्विक युगबोध के आधार बिन्दुओं को चिह्नित करना।
- 21वीं सदी के नवगीतों में प्रस्तुत युगबोध के विविध पक्षों को स्पष्ट करना।
- 21वीं सदी के नवगीतकारों के समसामयिक विषयों से सम्बंधित दृष्टिकोण का विश्लेषण करना।
- समसामयिक समस्याओं के निराकरण से सम्बंधित सांकेतिक निवारक बिन्दुओं का विश्लेषण करना।

v **शोध कार्य में चुनौतियां**

आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। उसी प्रकार, आवश्यकता से उत्पन्न आविष्कार मनुष्य के लिए ही है। चाहे इनसे कोई एक खास वर्ग ही लाभान्वित होता हो। इस प्रकार से इन परिवर्तनों को समाज के एक महत्त्वपूर्ण वर्ग ने आत्मसात कर लिया और अब इसे ही मानक के रूप में माना जाने लगा है। कुछ बुद्धिजीवियों का मानना है, यदि हम अपने मूल्यों एवं संस्कारों की ओर लौटेंगे तो हम पुनः मध्ययुगीन हो जायेंगे। इस प्रकार के विरोधाभासी माहौल में, समाज के, सही रूप रंग को, प्रदर्शित करने वाले नवगीतों का चयन ही चुनौतिपूर्ण है।

- ➢ यदि इस क्षेत्र में किये गये सभी कार्यों और साहित्य की विवेचना की जाये, तो इसकी उपादेयता की संभावना बहुत कम हो जायेगी और शोध अपने लक्ष्य से भटक जायेगा। अपनी सीमाओं में रहते हुए कार्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचना अपने आप में एक चुनौती है।

- नवगीतकार एक भिन्न प्रकार की वैयक्तिक मानसिकता एवं पृष्ठभूमि में अपनी रचना को प्रस्तुत करता है। विवेचना के समय उस मानसिकता तक पहुँचना एक चुनौती होगी।
- बहुत से विद्वानों ने भी इस विषय पर कार्य एवं विचार प्रस्तुत किये है, उन सभी मतो, विचारों तक पहुँचना भी एक वृहत चुनौती होगी।

vi **शोध प्रविधि**

किसी भी कार्य को पूर्ण करने हेतु, उसकी एक रूपरेखा बना लेना आवश्यक है। जिस प्रकार मनुष्य को मंजिल तक पहुँचने हेतु, रास्ते की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शोधार्थी को निर्धारित अवधि में अपने निष्कर्ष तक पहुंचने हेतु, शोध प्रविधियों की आवश्यकता होती है। इस विषय में शोधार्थी, अपने शोध में सहायक अनेक प्रविधियों में से कुछ का चुनाव करता है।

प्रस्तुत शोध **''21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध**'' में भी कुछ शोध प्रविधियों की सहायता से, कार्य सम्पन्न किया गया है, जो निम्नलिखित है :–

(अ) **ऐतिहासिक शोध प्रविधि** : नवगीत की उत्पत्ति एवं विकास को समझने हेतु। इसके विभिन्न चरणों एवं आधार स्तम्भों को जानने हेतु हमें इतिहास में जाना होगा। इस प्रविधि की एक संक्षिप्त परिभाषा के रूप में डॉ. आर.एन. त्रिवेदी अपनी पुस्तक *"रिसर्च मैथ्डोलॉजी"* में लिखते हैं – "अतीत की सहायता से 'वर्तमान' को समझने की विधि को ही ऐतिहासिक पद्धति कहते है।" (124)

(ब) **मनोविश्लेषणात्मक प्रविधि :** एक नवगीतकार जब नवगीत लिखता है, उस समय के, उसके मनोविज्ञान को समझना बहुत आवश्यक है। इसके अभाव में, हम उसकी रचना के मर्म को नहीं समझ पायेंगे। बैजनाथ सिंहल इस प्रविधि के विषय में अपनी पुस्तक *शोध* में लिखते हैं –

> इस पद्धति में रचनाकार और रचनागत पात्रों की अंतर्चेतना का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति में रचना को चैतन्य मानकार चला जाता है। यह रचनागत चैतन्य व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों और प्रभावों की दृष्टि से ही माना जाता है। (25)

(स) **तुलनात्मक विधि :** जब हम शोध को एक समय सीमा में बाँध देते है, तो उस सीमा से बाहर के साहित्य से स्वतः उसकी तुलना हो जाती है। इसी प्रकार आधुनिक विचारधारा के व्यक्तियों और परंपरागत सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों के महत्त्व को समझने वाले, व्यक्तियों के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। डॉ. आर.एन. त्रिवेदी इस प्रविधि के विषय में अपनी पुस्तक *रिसर्च मैथ्डोलॉजी* में लिखते हैं – "तुलनात्मक पद्धति समानताओं और विभिन्नताओं का अध्ययन करती है।" (394) तुलनात्मक पद्धति के विषय में कुछ चिन्ताए भी है। इन्हें व्यक्त करते हुए डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा अपनी पुस्तक *शोध प्रविधि* में लिखते हैं–

> तुलना में दृष्टि कि निस्संगता, तटस्थता और स्वच्छता नितान्त आवश्यक है। साथ ही दो विषयों को एक साथ संभालना दुष्कर भी है। .... तुलनात्मक अध्ययन दुधारी तलवार पर चलने के समान है। इसलिए अनेक विद्वानों ने तुलनात्मक प्रविधि के प्रयोग से बचने की सलाह दी है। शेक्सपीयर और कालिदास की तुलना करना व्यर्थ की खींच–खाँच ही होगी। (112)

(द) **विश्लेषणात्मक प्रविधि** : साहित्यकार के साहित्य का विवेचन, विश्लेषण करते समय, एक सामाजिक दृष्टि का रहना आवश्यक है और यह गुण तभी आ सकता है, जब हम उस कृति को समाज से जोड़कर उसका अध्ययन करे।

(य) **अन्य सहायक प्रविधियाँ** : शोध कार्य के दौरान अनेक पड़ाव आते हैं, जहाँ पर भिन्न–भिन्न शोध प्रविधियों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है।

vii **परिसीमांकन**

किसी भी विषय का सीमाबद्ध होना, उसकी कुशलता और पूर्णता का द्योतक है। युगबोध को हमारे साहित्य की, अन्य विधाओं में भी पूर्णरूप से दर्शाया गया है, जिनमें कविता के अन्य लोकप्रिय रूप गजल, दोहे, लोकगीत आदि महत्त्वपूर्ण है, परन्तु यदि इन्हें भी शोध में सम्मिलित किया जायेगा, तो न केवल शोधकर्ता अपने कार्य से भटक जायेगा, अपितु उसकी प्रामाणिकता और कुशलता में भी कमी आ जायेगी। कई कार्य और विचार इस शोध को प्रभावित करने वाले होंगे, परन्तु बिना भटकाव के आवश्यक, वांछनीय एवं उपयोगी सामग्री के साथ, शोधकार्य को समय–सीमा के अन्दर पूरा करना शोधकर्ता का प्रयास रहा है।

viii **परिकल्पना**

किसी भी कार्य के निष्कर्षों का पूर्वानुमान परिकल्पना कहलाता है। इसमें शोधार्थी अपनी कल्पना के द्वारा, कुछ निष्कर्ष प्राप्त होने की सम्भावना को प्रकट करता है। प्रस्तावित शोध कार्य में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ निर्मित की गई है, जो मुख्यतः नवगीत संग्रहों के अध्ययन, शोधार्थी के अनुभव तथा सामान्य सिद्धान्तों पर आधारित है :–

- नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में युगबोध को सही तरह से व्यक्त किया हैं।
- नवगीतकार न तो पुरातपंथी है और न ही आधुनिकता विरोधी, परन्तु वे तो एक वर्ग विशेष को लाभ के विरोधी है।

ix <u>पूर्व सम्बद्ध साहित्यावलोकन</u>

(अ) नवगीत संग्रह :

1. *नवगीत दशक – 1* : संपादक, शंभुनाथ सिंह
2. *नवगीत दशक – 2* : संपादक, शंभुनाथ सिंह
3. *नवगीत दशक – 3* : संपादक, शंभुनाथ सिंह
4. *नवगीत अर्द्धशती* : संपादक, शंभुनाथ सिंह
5. *पाँच जोड़ बाँसुरी* : संपादक, चन्द्रदेव सिंह
6. *बंसी और मादल* : ठाकुर प्रसाद सिंह
7. *पंख कटी महराबे* : डॉ. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'
8. *समय के सहयात्री* : संपादक, रणजीत पटेल
9. *सार्थक कविता की तलाश व नवगीतनामा* : डॉ. इन्दीवर पाण्डेय
10. *अपनी सदी के स्थिवर* : डॉ. इन्दीवर पाण्डेय
11. *नवगीत का दस्तावेज* : डॉ. इन्दीवर पाण्डेय
12. *नवगीत की विकास यात्रा* : माधव कौशिक
13. *नई सदी के नवगीत (5खण्ड)*: संपादक, डॉ. ओमप्रकाश सिंह
14. *नवगीत साहित्य का यथार्थ* : डॉ. अनिल कुमार
15. *श्रेष्ठ हिन्दी गीत संचयन* : संपादक, कन्हैया लाल नन्दन
16. *कविता सदी* : संपादक, सुरेश सलिल
17. *समकालीन गीत कोश* : संपादक, नचिकेता

(ब) विषय से सम्बद्ध शोध ग्रन्थ

1. **गुप्ता, अनिता, नवगीत में छायावादी तत्व**, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1992। छायावाद को नवगीत की भूमि कहा जाता है, यह उसी की कोख से निकला है, परन्तु समय के साथ इसने छायावादी रूमानियता को छोड़कर, आमजन के सुख दुःख को अपना लिया।

2. **रघुनाथ**, **नवगीत : कथ्य–वैविध्य और शैल्पिक संरचना**, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़, 1993। प्रस्तुत शोध में महाकवि निराला से लेकर 90 के दशक तक के नवगीतों का वर्णन है। इसके विविध आयाम, शिल्पगत परिवर्तन आदि को दर्शाते हुए, इसके एक ढाँचे के रूप में विकास का वर्णन है।
3. **धोडे, शीला, हिन्दी नवगीत : विकासपरक अध्ययन और युगबोध की अभिव्यक्ति**, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, 1995। प्रस्तुत शोध पत्र में मनुष्य के लिए लिखा है, कि मनुष्य अपने इतिहास की रचना स्वयं करता है। साहित्य उस इतिहास को देखकर, भविष्य को सुन्दर बनाने में सहयोग देता है।
4. **पटेल, रामनारायण, हिन्दी नवगीत : एक अध्ययन,** सम्बलपुर विश्वविद्यालय, सम्बलपुर 1996। प्रस्तुत शोध पत्र में नवगीत के गंभीर भाव पक्ष को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। स्वरूप निर्धारण के सम्बंध में शोधार्थी का मत है कि हिन्दी काव्य में अपनी परम्पराओं एवं परिवेशगत चुनौतियों के आधार पर नवगीत ने अपना स्वरूप निर्धारण किया।
5. **सिंह, सूर्य प्रकाश, हिन्दी की नवगीत परम्परा : विविध आयाम**, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडौदा, 2000। इस शोध प्रबन्ध में, शोधार्थी ने उन तमाम नये और पुराने नवगीतकारों को परीक्षित और विवेचित किया है, जो एक निश्चित पहचान और विशिष्टताओं के साथ अग्रसर है। यहाँ यह भी रेखांकित किया गया है कि नवगीतों के द्वारा मानवीय संवेदनाओं को सहज और स्वाभाविक रूप से परिलक्षित किया गया है, जो कि काव्य की अन्य विधाओं में दृष्टिगत नहीं होता।
6. **तिवारी, सन्तोष कुमार**, **नवगीत के विकास में पूर्वांचल के कवियों का योगदान**, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2002। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'नवगीत' के इतिहास और पूर्वान्चल के नवगीतकारों के योगदान का ऐतिहासिक सर्वेक्षण है। यह सर्वमान्य निष्कर्ष है कि पूर्वांचल के नवगीतकारों के वस्तुनिष्ठ विवेचन के बगैर, 'नवगीत का सफरनामा' अधूरा है।

7. **प्रकाश, हर्मिला, नवगीत : परम्परा और प्रयोग**, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव पंजिम, 2002। प्रस्तुत शोध में नवगीत में हो रहे विभिन्न प्रयोगों पर शोध करते हुए, लेखिका का मत है कि 'गीत न कभी मरा था और न कभी मर सकता है।'
8. **देवी, गीता**, **भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी नवगीत का मूल्यांकन**, वीर बहादूर सिंह पूर्वाचंल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2004। प्रस्तुत शोध में भारतीय संस्कृति एवं नवगीत के परिप्रेक्ष्य में कहा गया है कि नवगीतकार विषय–वस्तु और विभिन्न शैल्पिक उपकरणों से नवगीत को सुसज्जित कर, नवगीत को नित्य नये आयाम प्रदान कर रहे हैं।
9. **शुक्ला, मंजू, हिन्दी गीति परम्परा तथा समकालीन हिन्दी काव्य (नवगीत एवं हिंदी गजल के विशेष परिप्रेक्ष्य में)**, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2007। कविता से दूर होकर जिन दो विधाओं ने, अपना स्वतंत्र रूप बनाया, वह नवगीत एवं गजल ही हैं। शोधार्थी ने इनके सन्दर्भ में सभी चिंताओं का निराकरण करते हुए, इन विधाओं के भविष्य की सम्भावनाओं पर गहरा विश्लेषण किया है।
10. **फात्मा, शमीम, हिन्दी नवगीत के विकास में डां. रविन्द्र भ्रमर का योगदान**, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2009। डा. रवीन्द्र भ्रमर के योगदान का विश्लेषण करते हुए, शोधार्थी ने लिखा है कि इनके गीत राष्ट्रीय संस्कृति के उत्थान के प्रति सचेत है। इनकी रचनाओं पर भोजपुरी और अवधी का प्रभाव दिखाई पड़ता है, परन्तु इनके गीतों को लोकगीतों का अनुकरण नहीं माना जा सकता। इनके गीतो में लोकगीतो की लयात्मकता है।
11. **गिरीश, कंचन कुमारी, नवगीत काव्य में जनवादी चेतना के स्वर : एक अध्ययन,** महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडौदा, 2010। प्रस्तुत शोध में यह सुस्पष्ट कर दिया गया है कि नवगीत का प्रारम्भ और प्रस्ताव जनवादी चिन्तन के धरातल पर ही विकसित हुआ है।

12. **सोजित्रा, प्रो. विजय, हिन्दी नवगीत परम्परा, प्रयोग और विष्णुविराट**, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट, 2010। प्रस्तुत शोध से नवगीतकार विष्णु विराट की काव्य प्रतिभा का आंकलन है। ब्रज भाषा के आशुकवि विष्णु विराट, को नवगीत का नवल कवि कहा गया है।
13. **पाण्डेय, कमलेश कुमार**, **हिन्दी नवगीत में आंचलिकता बोध का स्वरूप**, बर्दवान विश्वविद्यालय, बर्धमान, 2011। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में गीत से नवगीत के विकास का स्वरूप से लेकर, हिन्दी नवगीत में आंचलिक शिल्प विधान के, बोध का स्वरूप, तक का समग्र विवेचन है।
14. **मिश्रा, शशिकला, हिन्दी नवगीत और शंभुनाथ सिंह का रचना संसार**, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2013। प्रस्तुत शोध में नवगीत में शंभुनाथ सिंह के योगदान और उनके द्वारा रचित नवगीतों की विशेषताओं का वर्णन है। नवगीत को साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने में शंभुनाथ का महत्वपूर्ण योगदान है।
15. **सरोज, छोटेलाल, हिन्दी नवगीत : जनवादी परिप्रेक्ष्य,** वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2013। प्रस्तुत शोध में समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर कर समता के स्थापन के लिए, सामाजिक न्याय के लिए, सामाजिक प्रेम के लिए, मानवता के कल्याण के लिए, भाई–चारे के विकास में, नवगीत के योगदान का वर्णन है। इसमें नवगीत को जनवादी परिप्रेक्ष्य में देखा गया है।
16. **चतुर्वेदी, वीरेन्द्र प्रसाद, हिन्दी गीत परम्परा और प. श्रीकृष्ण तिवारी**, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2014। प्रस्तुत शोध में प. श्रीकृष्ण तिवारी की नवगीत को देन पर प्रकाश डालते हुए उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर किया गया है।

(स) हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के शोध प्रबन्ध

1. **निलेसन, डी, मोहन रोकश के नाटको का दार्शनिक परिवेश**, केरल विश्वविद्यालय, 1994। प्रस्तुत शोध में मोहन राकेश के नाटकों का, दार्शनिक

परिवेश के संदर्भ में विश्लेषण किया गया है। राकेश ने वर्तमान परिवेश के संघर्षो का ज्वलन्त चित्र, रंगमंच पर प्रस्तुत करके परम्परागत नाट्य धारणाओं को तोड़ दिया।

2. **सिंह, दिलीप कुमार, छायावादी काव्य में अन्तर्निहित युगबोध एवं इतिहास बोध**, पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर (1998)। प्रस्तुत शोध में छायावादी काव्य के विषय में कहा गया है कि यह यूरोपीय रोमैण्टिक काव्य का पर्याय नहीं है, न ही रहस्यवाद की अनुकृति। छायावादी काव्य उच्चतम, मधुरतम काव्य है, जिसकी उपज मानवीय पीड़ा, शोषण, विदेशी परतंत्रता की बेड़ियों, जो मानवता के विकास में बाधक है, से होती है।
3. **चौरसिया, चिन्तामणि**, द्विवेदी युगीन हिन्दी काव्य में युग–बोध। वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर (2002)। प्रस्तुत शोध में द्विवेदी युगीन हिन्दी काव्य के मूल में, जातीय गौरव का भाव और अपने महान अतीत की चेतना है। पश्चिम का अन्धानुकरण करने की प्रवृति, द्विवेदी युग में अपनी राष्ट्रीय सांस्कृतिक धरोहर को महत्त्व न देने के कारण बढ़ने लगी थी।
4. **सिंह, प्रतिभा, साठोत्तर हिन्दी नाटकों में युग–बोध**, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर (2002)। काल की परिवर्तनशीलता के परिणामस्वरूप, मानवीय मूल्यों की परिवर्तनशीलता स्वाभाविक है। हमारे समाज की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों ने नाटककारों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इससे इस तथ्य की भी पुष्टि होती है कि साहित्य समाज का दर्पण है।
5. **नारायण, सत**, **हिन्दी में दलित रचनाकारों की आत्मकथाएं और भारतीय सांस्कृतिक परिवेश का सन्दर्भ**, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 2011। मनुष्य आज अपने को शहरी, आधुनिक और सभ्य कह ले, परन्तु समाज के निम्न वर्ग की व्यथाओं का कही अन्त नहीं है और जब ये व्यथाऐं स्वयं भुक्तभोगीयों ने लिखी हो, तो वह समाज का यथार्थ बताती है।
6. **गर्ग, शिल्पी, शरद जोशी कृत 'एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ' एवं 'अन्धों का हाथी' व्यंग्यात्मक नाटको में राजनीतिक परिवेश**, दयालबाग शिक्षण

संस्थान (डीम्ड विश्वविद्यालय), आगरा, 2013। व्यंग्य जीवन की आलोचना करता है। वह सामाजिक विसंगतियों तथा विकृतियों की निन्दा करता है। आधुनिक साहित्य में व्यंग्य का लक्ष्य व्यक्ति विशेष न होकर सम्पूर्ण मानवता की रक्षा है। इस सम्बन्ध में शरद जोशी का लेखन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

7. **काले, अनिल, रामदरश मिश्र और आन्नद यादव के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण परिवेश : तुलनात्मक अध्ययन,** पुणे विश्वविद्यालय, पुणे, 2013। प्रस्तुत शोध में ग्रामीण परिवेश के सही चित्रण के लिए, तुलनात्मक अध्ययन के महत्व को दर्शाते हुए, ग्रामीण जीवन के यथार्थ तक पहुँचने का प्रयास किया गया है।
8. **शर्मा, सरिता, आधुनिक परिवेश में नारी द्वन्द्व : चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य के सन्दर्भ में**, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, 2014। मानव सभ्यता के विकास में नारी के महत्व को चित्रित करते हुए, आधुनिक युग में उसके अन्दर चल रहे वैचारिक द्वन्द्व की खोज है, यह शोध प्रबन्ध। नारी की चाह उसे एक और स्वयं को आगे बढाने की है, वही दूसरी ओर वह घर एवं परिवार से भी दूर नही हो सकती है।

(द) अन्य मानविकी विषयों के शोध प्रबन्ध

1. **दास, घनश्याम, ग्रामीण परिवेश में गुटबन्दी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन,** समाजशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, 2002। प्रस्तुत शोध में ग्रामीण जीवन में बढ रही गुटबन्दी, खत्म हो रहे आपसी प्रेम के कारणों को जानने का प्रयास किया है। आधुनिक जीवन शैली इसमें प्रमुख है। जाति व जातिगत गुट, राजनीतिक गुटबन्दी आज ग्रामीण जीवन में आम है।
2. **सिंह, मधु, आधुनिक परिवेश में महात्मा गाँधी का शिक्षा–दर्शन**, शिक्षाशास्त्र विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2002। प्रस्तुत शोध में आज के आधुनिक परिवेश में जब हम अपने मूल्यों से दूर हो रहे हैं, तो उस सन्दर्भ में महात्मा गाँधी के शिक्षा–दर्शन का विश्लेषण किया गया है।

3. **चौधरी, चन्द्रशेखर, सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन में संचार माध्यमों की भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन (ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश के सन्दर्भ में)**, समाजशास्त्र विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2014। प्रस्तुत शोध में एक साक्षात्कार अनूसूची का प्रयोग करते हुए, सामाजिक संगठनों को बनाये रखने में, संचार माध्यमों की भूमिका के महत्व को दर्शाया गया है। साथ ही इनसे हो रहे नुकसान की तरफ भी ध्यान दिलाया गया है।

(य) **शोध पत्र**

1. **दिल्लीवार, डॉ. तेजराम, नयी कविता और आधुनिक गीत,** *हिन्दी गीत यात्रा एवं समकालीन सन्दर्भ,* भावना प्रकाशन दिल्ली, 2005। प्रस्तुत शोध पत्र में लेखक ने कविता और गीत के मध्य अन्तर एवं समानताओं पर प्रकाश डाला है।
2. **मिश्र, डॉ. कृष्ण गोपाल**, **नवगीत का सामाजिक सन्दर्भ,** *हिन्दी गीत यात्रा एवं समकालीन सन्दर्भ,* भावना प्रकाशन दिल्ली, 2005। प्रस्तुत शोध में साहित्य व समाज के मध्य सम्बन्धों का वर्णन है। लेखक का निष्कर्ष है कि नवगीत का कथ्य विविध सामाजिक सन्दर्भो से अनुप्रमाणित है, समृद्ध है।

ix **<u>शोध अन्तराल</u>**

पूर्व में किये गये शोधकार्यो के साहित्य पुनरावलोकन से; कुछ निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, जिनमें मुख्य है कि पूर्व के शोध व्यक्ति विशेष पर आधारित है या वे समाज के अंग विशेष यथा ग्रामीण बोध, सामाजिक मूल्य आदि पर आधारित है। कुछ शोध कार्यों में नवगीतों के शिल्प विधान पर कार्य किया गया है। उपर्युक्त निष्कर्षों से हमें ज्ञात होता है कि आधुनिक जीवन में आये परिवर्तनों का समग्र अध्ययन अभी भी उपेक्षित सा है। अतः यह शोध, ''21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध'' अपने अन्दर समग्र को समाहित करते हुए, आगे बढ़ने का प्रयत्न है।

अध्याय 1

21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युगबोध : सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

शोध शीर्षक '21 वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के नवगीतों में युग बोध' में प्रमुख शब्द '21वीं सदी', 'नवगीत', एवं 'युगबोध' है। शोध कार्य में यह महत्वपूर्ण है कि इनका अर्थ, परिभाषा एवं इनके विभिन्न पक्ष स्पष्ट हो। प्रथम अध्याय में इन महत्वपूर्ण शब्दावलियों को स्पष्ट करते हुए, इनकी परिभाषा, साहित्यिक महत्व आदि का वर्णन करते हुए, इनका विश्लेषण किया गया है।

1.1 युगबोध का अर्थ

21वीं सदी के हिन्दी नवगीतकारों ने लोक–जीवन में आने वाले बदलावों को अपनी रचनाओं के केन्द्र में रखा है। नवगीत विधा मनुष्य जीवन के सर्वाधिक नजदीक है। यह मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों की सहचर है। सुख हो या दुःख की घड़ी हो, अपनी सभी भावानुभतियों के लिए उसने गीतों की रचना की है। । नवगीतों में अन्तर्निहित युग–बोध की भावना ही उसे प्रतिष्ठा प्रदान करती है। किसी भी प्रकार का साहित्य, यदि अपने युग की अवस्थाओं से विमुख है, तो वह कभी आमजन का साहित्य नहीं बन सकता। इन परिस्थितियों में या तो वह बौद्धिक वर्ग तक सीमित रह जायेगा या समय के गर्त में खो जायेगा। साहित्य एवं जीवन बहुत ही गहराई से एक–दूसरे से संबद्ध है। साहित्य जीवन की ही विभिन्न मनोदशाओं का चित्रण है, उनका साहित्यिक रूप है, जीवन के रंगों से विमुख होकर साहित्य अपना अस्तित्व खो देता हैं। साहित्य की इसी प्रवृति के कारण, अनेक विद्वान साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब मानते हैं। इसी कारण से युग विशेष की भावनाओं का मूल्यांकन करना और साहित्य में उसका वास्तविक चित्रण करना साहित्य का प्रमुख ध्येय है। साहित्यकार का सृजन कौशल ही यह निर्धारित करता है कि वह अपने युग के सापेक्ष कितना लिख पाता है। साहित्य की रचना करते समय वह अपनी प्रतिभा के द्वारा, संवेदनशील परिस्थितियों को उद्घाटित करने का प्रयास करता है।

साहित्य में यह गुण सदैव विद्यमान रहा है। रामायण एवं महाभारत जैसे काव्यों का सृजन भी युग–सापेक्ष परिस्थितियों का सुन्दर वर्णन हैं। इसी प्रकार रीतिकाल में रचा गया साहित्य, उस समय की युगीन परिस्थितियों को व्यक्त करता

है। यह युग बोध की प्रक्रिया ही है, जो एक ही पात्र को पृथक–पृथक रूप में प्रकट करती है। जैसे सूरदास, हरिऔध और विद्यापति की राधा में युग सापेक्ष अन्तर है। युग सापेक्षता का गुण ही काव्य को विशिष्ट बनाता है। किसी भी काव्य के मूल्यांकन का एक विशिष्ट आधार होता है, उस युग की परिस्थितियाँ। यदि हम आज के वर्तमान समय के आधार पर, रीतिकालीन काव्य का अध्ययन करें, तो भले ही वह आज की परिस्थितियों में संगत न बैठता हो, परन्तु वह उस काल खण्ड की परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण है। यही युग सापेक्ष गुण उसके अमर होने का मूल कारण है; यह नियम सर्वव्यापी है एवं प्रत्येक युग के साहित्य पर लागू होता है। काव्य में निहित युग सापेक्षता का गुण ही, उस काव्य एवं उसके सर्जक का साहित्य के इतिहास में स्थान निर्धारित करता है।

युग का अर्थ –

युग बोध का सामान्य भाषा में प्रयोग करते हुए, हम इसे समसामयिक परिस्थितियों का ज्ञान कहते हैं। यह दो शब्दों के मेल से बना है– युग + बोध। युग शब्द का कालिका प्रसाद द्वारा संपादित *बृहत हिन्दी कोश* के अनुसार अर्थ है – समय, काल, बोध, प्रतीति जानकारी अथवा किसी के अस्तित्व के प्रकार, स्वरूप आदि का परिज्ञान। (1011)। इस प्रकार सामान्य रूप से देखने पर युग का अर्थ किसी काल विशेष की परिस्थितियों अथवा विशेषताओं का सम्यक ज्ञान अथवा मनुष्य के सामाजिक परिवेश में परम्परागत मूल्यों से भिन्न नूतन मानदण्ड़ों की स्थापना माना जा सकता है। अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोश के अनुसार ''युग का शाब्दिक अर्थ है– समय, काल, जमाना, शासनकाल, युग। *नालन्दा विशाल शब्द सागर* के अनुसार युग का शाब्दिक अर्थ है – जोड़ा, युग्म, पुश्त, पीढ़ी, समय, जमाना। (1141)

भारतीय विचारकों के मतानुसार काल को व्यक्त करने हेतु कल्प तथा युग महत्वपूर्ण इकाईयाँ माना जाती रही हैं। 'युग' शब्द स्वयं में काल–सापेक्ष है। युग का सम्बंध किसी घटना, व्यक्ति, काल से होता है। प्राचीन काल में समस्त समय चक्र को चार युगों –सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग एवं कलियुग में बाँटा गया था,

परन्तु आधुनिक समय में इसका नामकरण किसी व्यक्ति (यथा – भारतेन्दु युग, प्रसाद युग), किसी धर्म (बौद्ध युग, जैन युग), किसी घटना (रामायणकाल, महाभारतकाल), किसी शासनकाल (मौर्ययुग, विक्टोरिया युग, मुगल युग), किसी विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति (भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद) आदि के द्वारा किया जाने लगा है।

इस प्रकार 'युग' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। हिन्दी के आचार्यों ने युग से तात्पर्य एक समय विशेष से माना है। युग का अर्थ; समय विशेष मान लेने पर वह एक सीमित समय का द्योतक है। काल विशेष की अभिव्यंजना करने के कारण, यह संपूर्ण का एक भाग होता है, फिर भी अपने में परिपूर्ण होता है। अंग्रेजी भाषा में युग को असश कहते है। वहाँ पर इसका अर्थ Lifetime होता है। *The Student Practical Dictionary* में असश से तात्पर्य A Period of time go भी है। (32) युग का अर्थ भले ही भिन्न रहे, परन्तु 'बोध' शब्द के साथ जुड़कर इसका अर्थ समय या समय की एक विशेष अवधि ही माना जाता है।

बोध का अर्थ –

बोध शब्द की उत्पत्ति 'बुद्ध' शब्द से हुई है। यह संस्कृत की बुध धातु से बना है जिसका सामान्य अर्थ है – जानना। यह संज्ञा पुल्लिंग शब्द है, इसका अर्थ ज्ञान, विवेक, समझ, चैतन्य, विचारना आदि होता है। श्री नवल द्वारा संपादित *नालन्दा विशाल शब्द सागर* के अनुसार बोध का शाब्दिक अर्थ है– ''ज्ञान, जानकारी, धीरज, संतोष, तसल्ली। (999) अंग्रेजी भाषा में बोध के पर्याय है– अवेयरनेस (Awareness) कान्शसनेस (Conciousness) तथा सेंसिबिलिटी (Sensibility) *ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोश* के अनुसार बोध शब्द का अर्थ है सचेतन, चेतन, चैतन्य, होश, जानकारी।

सामान्य अर्थ में बोध शब्द से अभिप्राय होता है– स्वयं को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसका मूल्यांकन करने की शक्ति। बोध का एक प्रमुख गुण है– परिवर्तनशीलता। परिस्थितियों में निरन्तर आ रहे परिवर्तन को, अपने विवेक के माध्यम से, बोध करना ही समय सापेक्षता है। बोध रूपी शक्ति

मानव चेतना की देन है। मनोविज्ञान मानता है कि बोध मानव में उपस्थित वह महत्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके कारण ही उसे विविध प्रकार की अनुभूतियाँ होती है। उसे खट्टा, मीठा, ठण्डा, गर्म आदि अनुभव होता है, परन्तु समग्र में मानवीय बोध में ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक चेतना का समावेश होता है– डॉ. रामविलास शर्मा अपने लेख 'आस्था एवं सौंदर्य' में लिखते हैं :– ''वैज्ञानिक भौतिकवाद के अनुसार मनुष्य प्रकृति की उपज है और बोध मस्तिष्क में निहित पदार्थ का गुण है, अतः प्रकृति का एक अंश बोध है।" (4)

बोध ही मनुष्य को व्यक्तिगत एवं वातावरण के विषय में ज्ञान कराता है। इसे हम विचार या बुद्धि कह सकते हैं। मनुष्य की समस्त भावनाओं, उसके उद्‌गारों का मूल कारण बोध ही है। बोध के कारण ही वह सुख–दुःख को महसूस करता है।

युगबोध का अर्थ –

यदि युग व बोध दोनों शब्दों को मिलाया जाये, तो उसे इस प्रकार कह सकते हैं– किसी काल विशेष का, परिस्थितियों में परिवर्तनशीलता का ज्ञान ही युग बोध है। प्रत्येक देश एवं समाज का अपना बोध होता है और युग परिवर्तन के साथ यह परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार हम किसी विशिष्ट काल–खण्ड में अपने परिवेश में होने वाले राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रति सजगता, उनको महसूस करने की क्षमता एवं उनके प्रति प्रतिक्रिया को युग बोध कह सकते हैं। यह युग चेतना का पर्यायवाची शब्द है। युग बोध ही निर्जीव पदार्थों से जीवधारियों को भिन्न बनाता है। युग बोध का विकास मनुष्य में धीरे–धीरे होता है, बचपन में वह अपने परिवार, पास–पड़ोस के प्रभाव से सीखता है। उम्र के बढ़ने के साथ–साथ वह वातावरण के प्रभाव से औचित्य, नैतिकता एवं व्यवहार कुशलता सीखता है। विकास की चरम सीमा में उसकी स्वतंत्रत चेतना (युग बोध) का विकास होता है। यह स्वतंत्रता बोध ही उसे समाज एवं मानवता के प्रति जागरूक बनाता है।

साहित्यकार एवं युग बोध –

साहित्यकार भी मनुष्य ही होता है, एक साधारण मनुष्य अपने युग बोध को मात्र महसूस करता है, परन्तु साहित्यकार जब अपने साहित्य की रचना करता है, तो उसका प्रथम उद्देश्य अपने युग बोध को साहित्य में उतारना होता है। उसे अपने रचनाकर्म द्वारा युग बोध को सभी के सम्मुख रखना होता है। साधारण मनुष्य की तरह उसका युग बोध व्यक्तिगत न होकर, समाज व समस्त का होता है, जिसे वह अपनी रचनाओं के द्वारा व्यक्त करता है।

मधुकर अष्ठाना द्वारा सम्पादित पुस्तक *'नवगीत के विविध आयाम'* में अपने आलेख 'नवगीत में युगबोध दर्शन' में बृजनाथ श्रीवास्तव इसे, इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

> साहित्य समाज का दर्पण होता है, अगर तत्कालीन युग बोध की व्यापकता रचनाओं में उतर नहीं पाती, तो वह साहित्य मंचीय मनोरंजन भर कर सकता है, अन्य कुछ नहीं। (225)

शायद यही कारण है कि छायावादी काव्यों को आम जन में, वह प्रशंसा नहीं मिल सकी जो निराला के 'भिक्षुक' और 'तोड़ती पत्थर' को प्राप्त है। छायावादी काव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान हैं, रूमानियत व निजी वेदना है, परन्तु वह समग्र का साहित्य नहीं हैं। उसमें अपने युग का बोध नहीं है। उस कालखण्ड के मनुष्य जीवन एवं समाज का वर्णन नहीं है। इसी को लक्ष्य करते हुए, – मधुकर अष्ठाना द्वारा सम्पादित पुस्तक *'नवगीत के विविध आयाम'* में, बृजनाथ श्रीवास्तव अपने आलेख 'नवगीत में युगबोध दर्शन' में वरिष्ठ नवगीतकार दिनेश सिंह के वक्तव्य को उद्धृत करते हुए लिखते हैं–

> जो रचना अपने समय का साक्ष्य बनने की शक्ति नही रखती, जिसमें जीवन की बुनियादी सच्चाइयाँ केन्द्रस्थ नहीं होती, जिनका विजन स्पष्ट और जनधर्मी नहीं होता, वह कलात्मकता के बावजूद अप्रासंगिक रह जाती है। (225)

क्या यह साहित्यकारों पर अवांछनीय दबाव नहीं है ? उसे भी तो स्वतंत्रता है कि वह अपनी कल्पनाओं, भावनाओं के अनुसार साहित्य का सृजन कर सके। निश्चय ही यह उसका अधिकार है, परन्तु वह साहित्य, साहित्यिक दृष्टि से कितना ही उच्च कोटि का हो, आमजन एवं समाज का साहित्य नहीं हो सकता है। साहित्यकार का साहित्य उसका निजी नहीं होता है, वह समाज के लिए होता है। समाज के विभिन्न लोग उसे पढ़ते है, तो उसका यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने समय के युग बोध की वास्तविकता को अपने साहित्य में स्थान प्रदान करे और उसे युग सापेक्ष बनाये, क्योंकि वह स्वयं भी उस युग एवं समाज का अभिन्न अंग है।

1.2 युग बोध के विभिन्न आयाम –

1. **सामाजिक बोध –**

आम बोलचाल की भाषा में हम 'समाज' का साधारण अर्थ व्यक्तियों के समूह के रूप में लेते हैं। किसी भी संगठित या असंगठित समूह को समाज कह दिया जाता है, जैसे हिन्दू समाज, जैन समाज, दलित समाज, मुस्लिम समाज, आर्य समाज आदि। 'समाज' शब्द के अर्थ को विभिन्न लोगों ने अपने ढंग से व्यक्त किया है। किसी ने इसका प्रयोग व्यक्तियों के समूह के रूप में, किसी ने समिति के रूप में, तो किसी ने संस्था के रूप में किया है। इसके अर्थ के सम्बंन्ध में निश्चितता का जो अभाव हमें दिखता है, उसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि विभिन्न मानविकी विषयों में भी इसे अलग–अलग रूप से परिभाषित किया गया है, उदाहरण के रूप में राजनीतिशास्त्री समाज को व्यक्तियों के समूह के रूप में देखता है, मानवशास्त्री आदिम समुदायों को ही समाज मानता है और अर्थशास्त्री समाज को पैसे के आधार पर देखता है। समाजशास्त्र में व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य पाए जाने वाले, सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है।

समाजशास्त्र में मुख्य रूप से समाज को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। इस सन्दर्भ में प्रमुख समाजशास्त्रियों के द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं को देखना भी महत्त्वपूर्ण है।

मैकाइवर और पेज ने अपनी पुस्तक *सोसायटी* में समाज को सामाजिक सम्बन्धों के जाल या ताने–बाने के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने सम्बन्धों की इस सदैव परिवर्तित होती रहने वाली जटिल व्यवस्था को समाज कहा है। (5)

अपनी पुस्तक *प्रिंसिपल्स ऑफ सोश्योलजी* में गिडिंग्स के अनुसार ''समाज स्वयं संघ है, संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक–दूसरे के साथ जुड़े हुए या सम्बद्ध है। (27)

रयूटर ने अपनी पुस्तक *हैंडबुक ऑफ सोशयलॉजी* में समाज को इस प्रकार परिभाषित किया है– ''(समाज) एक अमूर्त धारणा है, जो एक समूह के सदस्यों के मध्य पाए जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों की जटिलता का बोध कराती है। (165)

इसके अतिरिक्त आर्थिक व्यवस्था को एक निर्णायक संस्था मानकर कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक *'दास कैपिटल'* में अपना प्रसिद्ध वर्गीकरण प्रस्तुत किया है – ''व्यापक रूप से हम एशियाई, प्राचीन, सामन्तवादी तथा आधुनिक उत्पादन के तरीकों को समाज के आर्थिक निर्माण की प्रगति में कई अवस्थाएं (युग) मान सकते हैं।'' कार्ल मार्क्स का मानना था कि गरीब–अमीर के मध्य भेद बढ़ने और तीव्र वर्ग चेतना के जाग्रत होने पर, वर्ग–संघर्ष होगा; जिसमें पूंजीपति वर्ग को समाप्त कर वर्ग–विहिन समाज की स्थापना की जाएगी।

उपर्युक्त परिभाषाएँ समाज को परिभाषित करती है। भारतीय समाज के सन्दर्भ में समाज की महत्वपूर्ण विशेषता उसके जीवन मूल्य है। वे जीवन–मूल्य जिनका बोध ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनता है। इसी संदर्भ में महादेवी वर्मा ने कहा था – ''वास्तव में थोड़े से सिद्धान्त जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं उन्हीं को जीवन मूल्य कहते है।''

हमारे चारों ओर के रिश्तों का अदृश्य जाल ही समाज है। इस समाज को चलाने एवं मनुष्य को पशु से अलग बनाने के लिए, कुछ सिद्धान्तों और मान्यताओं का निर्धारण हमारे पूर्वजों ने किया था, जो कि अब सामाजिक मूल्यों के रूप में जाने जाते हैं। प्रत्येक समाज के कुछ विशिष्ट सामाजिक मूल्य होते है और इन मूल्यों के द्वारा ही हम समाजों में अन्तर करते हैं। भारत के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक मूल्यों में आपसी प्रेम, भाईचारा, एक–दूसरे के सुख–दुःख में मदद, बड़ों का सम्मान,

गुरूजनों का आदर आदि महत्त्वपूर्ण है। सामाजिक मूल्य और सामाजिक ढाँचे परिवर्तनशील होते है। समय के साथ यह बदलते रहते हैं, परन्तु सदैव यह बदलाव समाज के लिए हितकर हो, यह आवश्यक नहीं हैं।

वर्तमान समय में सामाजिक मूल्य एक ऐसे राह पर खड़े हैं, जहाँ एक तरफ आधुनिकता का वर्णन करते हुए; लोग पुराने मूल्यों को पुरातनपंथी कहते हैं, वहीं पुराने मूल्यों को मानने वाले वर्तमान समाज के मूल्यों को मनुष्य के लिए घातक मानते हैं। यह वाद–विवाद तो चलता ही रहता हैं। परन्तु आज के सामाजिक मूल्यों ने मनुष्य को समाज से काटकर स्व की ओर मोड़ दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

इन सामाजिक मूल्यों के बोध को ही सामाजिक बोध कह सकते हैं। हम सामाजिक युग–बोध को किसी परिभाषा में नही व्यक्त कर सकते हैं, यह तो सम्पूर्ण समाज को 'स्व' के स्थान पर 'हम' देखने कि प्रक्रिया का नाम है। सामाजिक बोध मनुष्य के चिन्तन एवं विचारो का संग्रह है।

आलोचना पत्रिका के जनवरी–मार्च 1976 के अंक में अपने लेख तुलसी की सामाजिकता में इसको स्पष्ट करते हुए रमेश कुन्तल मेघ ने कहा है –

> चिन्तन इन्सान का चारित्र्य गुण है, जो उसे सामाजिक मनुष्य बनाता है। यह उसकी आत्मा को सर्व में रूपान्तरित करता है। सामाजिक मनुष्य का इतिहास और संस्कृति, समाज और मनुष्य के बारे में किया हुआ चिन्तन उसकी सामाजिक चेतना की आधारशिला है। (21)

साहित्य तो है ही समाज का दर्पण। यदि साहित्य में सामाजिक बोध नहीं है, तो वह साहित्य उस समाज को व्यक्त कर पाने में असमर्थ है। साहित्यकार अपनी कृति में केवल यथार्थ का वर्णन नहीं करता है; वह उस समाज के विभिन्न मूल्यों का बोध समाज को करवाता है और जब समाज में सामाजिक मूल्यों का पतन हो रहा हो, तो ऐसे समय में साहित्यकार का कार्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वहीं समाज को सही राह अपने साहित्य द्वारा दिखा सकता है। वर्तमान दौर में सर्वहित की भावना के स्थान पर जिस स्वहित की भावना का विकास हो रहा है, उससे हमारा सामाजिक परिवेश प्रदूषित हो रहा है। इस प्रदूषण को रोकने हेतु

साहित्यकारों का साहित्य में सजगता से सामाजिक बोध को सम्मिलित करना आवश्यक है।

2. आर्थिक बोध –

जीवन में सबसे पहला एवं महत्त्वपूर्ण स्थान, अर्थ (धन) का हो गया है। इसका पहला उदाहरण, कौटिल्य द्वारा रचित ग्रंथ *अर्थशास्त्र* में मिलता है। जब एक राजनीतिक ग्रंथ को, कौटिल्य जैसे विद्वान ने *अर्थशास्त्र* का नाम दिया, तो उसी समय से यह स्पष्ट हो गया कि समाज, संस्कृति या राजनीति सभी को चलाने में अर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह धन की चाहत ही थी, जिसने विदेशी आक्रमणकारियों को भारत की ओर आकर्षित किया और यह भारत की अकूत धन सम्पदा ही थी, जो सभी को ललचा रही थी। प्रारम्भ में भारत एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाला राष्ट्र था। प्रत्येक गाँव स्वयं में एक पूरा अर्थशास्त्र था। वहाँ का उत्पादन वही बिक जाता था। धीरे–धीरे लोग आजीविका कमाने और अधिक धन की चाहत में नगरों में आने लगे। आधुनिकता ने इस पलायन को और बढ़ाया।

आधुनिकता और अर्थ एक सिक्के के दो पहलू है। आज के वर्तमान युग में धन ही सब कुछ है। यदि गौर से देखे तो अन्य सभी, परिवर्तन चाहे वे सामाजिक हो; सांस्कृतिक हो या राजनीतिक हो, सभी की जड़े अर्थ में ही निहित हैं। धन की चाहत ही मनुष्य को गाँव छोड़कर शहर में पलायन को विवश करती हैं। वह धन ही है, जो मनुष्य को उसके मूल्यों से डिगाता है। वह धन की लालसा ही है जो एक समाजसेवक को 'नेता' बनने पर मजबूर करती हैं।

भारत में आज कहने भर को समाजवादी आर्थिक व्यवस्था है, परन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। आक्सफॉम रिपोर्ट, 2020 के अनुसार भारत के मात्र 01 प्रतिशत व्यक्तियों के पास भारत की सम्पूर्ण सम्पदा का 73 प्रतिशत है। भारत के सबसे अमीर 9 लोगों के पास जितनी संपादा है, वो सबसे गरी 50 प्रतिशत लोगों की कुल संपदा के बराबर है। इस असमान विकास का ही नतीजा है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, भुखमरी जैसी स्थिति उत्पन्न हो रही है। संयुक्त राष्ट्र के विश्व भुखमरी सूचकांक में 94 राष्ट्रों में हमारा स्थान 103 है (2020)। शायद किसी ने सच ही कहा है कि 'भूखे पेट न होए भजन गोपाला', इस भूख को शान्त करने

के लिए मनुष्य दासता करता है। मनुष्य मनुष्य की गुलामी कर रहा है। वैश्विक दासता सूचकांक 2018 में भारत 53वें स्थान पर है, जो की सम्पूर्ण राष्ट्र एवं मानवता के लिए शर्म की बात है। जहाँ एक तरफ बजट भाषणों में, देश को 5 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था बनाने के सपने दिखाये जा रहे हैं, वहीं अमीर एवं गरीब के मध्य की खाई को मिटाने के प्रयासों में हमारा स्थान विश्व के 157 देशों में 147 वाँ है। (Commitment to Reducing Inequality (CRI) Index, Oxfam International's Report. 2018) इस धन के असमान वितरण ने अमीर एवं गरीब के मध्य एक ऐसी खाई उत्पन्न कर दी है; जिसे शायद कार्ल मार्क्स का मार्क्सवाद भी न भर पाये।

आर्थिक बोध का साहित्य में स्थान उपरोक्त कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वर्तमान काल में हमें चारण या भाटों की तरह, अपने राजा एवं पालक कि प्रशंसा एवं स्तुति करने वाला साहित्य नहीं चाहिए। वह साहित्य चाहिए, जो इस असमानता को व्यक्त करे। आर्थिक बोध से युक्त साहित्यकार, अन्तिम कोने में खड़े व्यक्ति की बात करता है। हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों के साथ तो एक दुर्भाग्य (या सौभाग्य कह ले) जुड़ा है कि वे सभी इस असमान अर्थ वितरण का सर्वाधिक शिकार हैं। सभी ने उस को जिया है, इसलिए हिन्दी साहित्य अर्थबोध को अधिक सफलता से व्यक्त कर पाता है। आर्थिक बोध में देश की आर्थिक नीतियाँ, योजनाएँ, संगठन एवं संस्थाये सम्मिलित है एवं उनकी कार्य प्रणाली का समाज व व्यक्ति पर प्रभाव परिलक्षित है। जब साहित्यकार अपने साहित्य में इन सब को स्थान देता है, तभी वह सही अर्थों में आर्थिक बोध को व्यक्त करता है।

3. राजनीतिक बोध –

किसी भी युग के बोध को समझने हेतु, जिस प्रकार उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप को जानना आवश्यक है, उसी प्रकार उसके राजनीतिक रूप को जानना भी आवश्यक है। वहाँ की राजनीतिक व्यवस्था को समझना भी महत्वपूर्ण है। मानव ने जैसे–जैसे विकास की ओर कदम बढ़ाये, सर्वप्रथम उसमें सामाजिक चेतना का उदय हुआ। समाज से वह संस्कृति की ओर बढ़ा, अब और आगे विकास के लिए उसे राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता महसूस हुई। समाज व संस्कृति,

मानव में मानवता के प्रति नैतिकता को जन्म देती है। वहीं राजनीति मानवता को राष्ट्र और देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति जागरूक करती हैं।

आज विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र बनने तक की यात्रा में, भारतवर्ष ने विभिन्न राजनीतिक पड़ाव देखे हैं। सम्राट अशोक से पृथ्वीराज चौहान तक, मुगलों से अंग्रेजो तक और नेहरू से मोदी तक। जब 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ और लोकतंत्र को इसने अपनाया, तो सभी को लगा कि अब समाज का वास्तविक उत्थान होगा, परन्तु राजनेता समाज के स्थान पर जब स्वयं के उत्थान को प्राथमिकता देने लगे, तो यह उम्मीद धुमिल हो गयी। अब्राहम लिंकन ने जब लोकतन्त्र को परिभाषित करते हुए कहा था कि यह – जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए है, तो उन्होंने भी नहीं सोचा होगा कि भारतीय राजनेता इसे स्व का, स्व के लिए में बदल देंगे। भारत में यह प्रवृति आजादी के बाद अधिक बढ़ने लगी हैं। अंग्रेजी शासन के दौरान बने पुल, इमारते आज भी सही स्थिति में है, परन्तु मात्र अपनी एवं अपनी पार्टी की जेब भरने वाले राजनेताओं के समय में, बने पुल व इमारते गिरने लगी हैं, कुछ तो बनने से पहले ही गिर जाते हैं। भारतीय राजनीति व्यवस्था में जो सेवा का भाव था, वह समाप्त हो चुका है और मात्र स्व का स्थान रह गया है। यही कारण है कि आज के समय में चारो ओर भ्रष्टाचार और घोटालों की बाढ़ आ गयी हे। रोज एक नया घोटाला सामने आता है, जो पिछले से बड़ा होता है। महात्मा गाँधी ने कहा था– 'इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता पूर्ति की वस्तुएँ सभी के लिए उपलब्ध है, परन्तु यदि एक भी व्यक्ति के मन में लालच आ जाता है, तो इस पृथ्वी के समस्त संसाधन भी उसके लिए कम है।' राजनीति समाज सेवा से हटकर, अपनों में रेवडियाँ बाँटने का माध्यम बन गयी। आज चारो ओर राजनेताओं के भ्रष्टाचार, कदाचार एवं भाई–भतीजावाद के चर्चे हैं।

स्व से पहले समाज को मानने वाले नेताओं का, वर्तमान में केवल स्व पर ही ध्यान है। ''देश के लोगों से 22 गुना अधिक कमाते है विधायक।'' (ऐसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म, 17 सितम्बर 2018) यह रिपोर्ट किस प्रकार से वर्तमान समय में राजनीति व्यवसाय में बदल गयी है उसकी कहानी कहती है। वही एक

अन्य रिपोर्ट के अनुसार ''देश के एक तिहाई सांसद और विधायक दागदार है।'' (वहीं 25 सितम्बर 2018)। यह रिपोर्ट अपराधियो के लिए राजनीति के एक शरण स्थल में बदल जाने की कहानी है। इन्हीं सभी बातों को देखते हुए देश के माननीय सर्वोच्च न्यायालय को यह कहना पड़ा ''राजनीति का अपराधिकरण कैंसर जैसा है।'' (माननीय सर्वोच्च न्यायालय, 25 सितम्बर, 2018 दागियों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए दायर याचिका पर फैसला सुनाते हुए।)

राजनीतिक बोध से युक्त साहित्यकार, अपने साहित्य में न तो सत्ता का गुणगान करता है और न ही विपक्ष की तरह प्रत्येक बात पर हंगामा खड़ा करता है। वह प्रत्येक राजनीतिक फैसले को, समाज के हित–अहित में रखकर उसका आंकलन करता है और उसके पश्चात ही उसे अपने साहित्य में व्यक्त करता है। राजनीतिक बोध से युक्त साहित्य समाज को सही दिशा में बढ़ाने हेतु आवश्यक है। इस प्रकार का साहित्य ही राजनेताओं पर सही निर्णय लेने का दबाव बनाता हैं और देश एवं समाज की उन्नति में सहायता प्रदान करता है।

4. सांस्कृतिक बोध –

मानव इसलिए मानव है कि उसके पास संस्कृति है। संस्कृति के अभाव में मानव को पशु से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता है। संस्कृति ही मानव की श्रेष्ठतम धरोहर है, जिसकी सहायता से मानव पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ रहा है। यदि हम मानव से उसकी संस्कृति को हटा दे, तो वह मात्र अन्य पशुओं के समान एक प्राणी ही बचेगा। मानव एवं पशु में मुख्य अन्तर, संस्कृति का ही तो है। संस्कृति मानव जीवन की एक ऐसी विशेषता है, जिसके आधार पर हम एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से, एक समूह को दूसरे समूह से और एक समाज को दूसरे समाज से पृथक कर सकते हैं। मात्र मानव ही ऐसा जीव है, जो अपनी शारीरिक एवं बौद्धिक विशेषताओं के कारण संस्कृति का निर्माण कर पाया है। मानव में ही वह अद्भूत शक्ति एवं क्षमता मौजूद है कि वह संस्कृति का निर्माता कहलाने का अधिकारी है। संस्कृति क्या है – अनेक समाजशास्त्रियों ने इसको परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। क्रोबर एवं क्लूखैन ने संस्कृति की परिभाषाओं का संकलन कर बताया है कि इस शब्द की एक–सौ आठ परिभाषाएँ हैं। मजूमदार एवं मदान– 'लोगों के जीने

के ढंग को ही संस्कृति मानते हैं।' संस्कृति की समाजशास्त्रियों द्वारा दी गई कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाऐं निम्न हैं :–

डॉ. दूबे के अनुसार – ''सीखे हुए व्यवहार प्रकारों की उस समग्रता को जो किसी समूह को वैशिष्टय प्रदान करी है, संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है।

टालकॉट पारसन्स ने अपनी पुस्तक *द सोशल सिस्टम* में संस्कृति को एक ऐसे पर्यावरण के रूप में परिभाषित किया है 'जो मानव क्रियाओं के निर्माण में मौलिक है, इसका तात्पर्य है कि संस्कृति मानव के व्यक्तित्व एवं क्रियाओं का निर्धारण करती है।' रॉबर्ट बीर स्टीड लिखते हैं –

> संस्कृति वह सम्पूर्ण जटिलता है जिसमें वे सभी वस्तुएँ सम्मिलित है जिन पर हम विचार करते है, कार्य करते है और समाज के सदस्य होने के नाते अपने पास रखते हैं। (167)

उन्होंने आगे लिखा – ''इसके अन्तर्गत हम जीवन जीने, कार्य करने एवं विचार करने के उन सभी तरीकों को सम्मिलित करते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते है और समाज के स्वीकृत अंग बन चुके हैं।''

उपुर्यक्त परिभाषाओं से संस्कृति के विभिन्न आयामों की जानकारी मिलती है। इसी को स्पष्ट करते हुए राष्ट्र अपनी पुस्तक *संस्कृत के चार अध्याय* में, ''असल में संस्कृति जिन्दगी जीने का एक तरीका है और वह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।'' (33)

संस्कृति से हमारा अभिप्राय, जीवन जीने के कुछ तौर–तरीको से होता है। मानव प्रारम्भ में गाँवों में रहता था, वहाँ की अपनी संस्कृति थी। धीरे–धीरे गाँवों से नगर बने, नगर महानगरों में बदले। इनमें जन्मी संस्कृति को शहरी संस्कृति कहा जाने लगा। विकास व आधुनिक बनने की चाहत, जीवनयापन के साधनों एवं भौतिक सुविधाओं की चाहत ने इस परिवर्तन में मुख्य रूप से योगदान दिया। इन सबके बीच गाँव की संस्कृति कहीं छूट गयी। वहाँ की संस्कृति को भी शहरी संस्कृति ने धीरे–धीरे समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। दूसरे शब्दों में कहे तो यह काल, संस्कृतियों का संक्रमण काल है। भारत ने अनेक संस्कृतियों को देखा है, प्रारम्भ में वैदिक संस्कृति से लेकर आर्य संस्कृति, यूनानी संस्कृति, मुगल संस्कृति,

अंग्रेजी संस्कृति से होती हुई आज के दौर में आधुनिक संस्कृति तक। इस राष्ट्र की यह सांस्कृतिक विरासत अतुलनीय है और इसकी संस्कृति में व्याप्त गुण महानतम है, जिनके कारण यह इन सभी संस्कृतियों को अपने अन्दर समाहित कर लेती है। इस प्रकार के संक्रमण से सांस्कृतिक परिवर्तन आते हैं। सांस्कृतिक संक्रमण भी एक तरह का युद्ध ही है, जिसमें एक संस्कृति दूसरे को पूर्ण या आंशिक रूप से नष्ट करने का प्रयास करती है। यह संक्रमण (युद्ध) हम आज कि शहरी और ग्रामीण संस्कृति के मध्य देख सकते है। शहरी संस्कृति धीरे–धीरे ग्रामीण संस्कृति को नष्ट कर रही है या उसे परिवर्तित करके अपनी तरह बना रही है।

इस सांस्कृतिक संक्रमण को देखने के विद्वानों के दो नजरिये है। एक वर्ग यह मानता है कि इससे हम पतन की ओर बढ़ रहे है। इनके पक्ष में वह गाँवों के आपसी प्यार, भाईचारे व ईमानदारी को बताते हुए कहते है कि शहरों में यह सब नहीं है। इसको हम कुछ उदाहरणों द्वारा समझें तो ग्रामीण संस्कृति का एक प्रमुख स्तम्भ है– आपस में मिल–जुल कर रहना, एक दूसरे के दुःख दर्द को बाँटना, परन्तु शहरों में इंसान अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं। शहरी संस्कृति में आपके पड़ोस में रहने वाले व्यक्ति को आप सिर्फ उसके मकान नं. से जानते हैं, नाम से नहीं। अमेरिका के स्वतंत्र संगठन 'कॉमन सेंस मिडिया' के (सोशल मीडिया के कारण बढ़ता अकेलापन, कॉमनसेंस मीडिया, हिन्दुस्तान 12 सितम्बर, 2018 को प्रकाशित लेख) अनुसार एक तिहाई शहरी युवा अकेलेपन के शिकार हैं। ग्रामीण संस्कृति का एक अन्य महत्वपूर्ण अंग है, शारीरिक श्रम, परन्तु शहरी संस्कृति ने मनुष्य को आलसी बनाकर श्रम से दूर कर दिया है। जब मनुष्य मेहनत करता था तो, शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता था, परन्तु शहरों की आलसी संस्कृति ने उसे आलसी बना दिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 34 प्रतिशत लोग श्रम नहीं करने वाले है, जिसके कारण आज सात करोड़ से भी अधिक व्यक्ति मधुमेह के शिकार है। इन सभी उदाहरणों द्वारा वह, यह सिद्ध करते हैं कि शहरी संस्कृति हमें किस प्रकार से नकारात्मकता से भर रही है।

इसके विपक्ष में विद्वानों का दूसरा वर्ग यह मानता है कि शहरी संस्कृति ही भविष्य है। वह ग्रामीण संस्कृति को पिछड़ा मानते हैं। उनका मानना है कि यदि

शहरी संस्कृति में इतनी ही बुराइयाँ है, तो प्रत्येक व्यक्ति शहर क्यों आना चाहता है, क्योंकि उसे लगता है, गाँवों में वह अपने जीवन स्तर को नहीं सुधार सकता है। मैथलीशरण गुप्त के एक बार 'अहा!' ग्राम्य जीवन' कह देने भर से ग्रामीण संस्कृति सदैव के लिए महान नहीं हो सकती है और यदि हम अपना भविष्य देखते है, तो वह सिर्फ शहरी संस्कृति में है।

इस प्रकार के विरोधाभासी माहौल में, एक साहित्यकार पर बहुत बड़ा दायित्व आ जाता है कि वह किसी भी पक्ष का समर्थन/विरोध न करते हुए आमजन के यथार्थ को अपने साहित्य में व्यक्त करे। सांस्कृतिक टकरावों को रोकने, उसके दुष्परिणामों को रोकने एवं एक बेहतर स्थिति का निर्माण करने हेतु, साहित्य का जागरूक होना बेहद आवश्यक है।

सांस्कृतिक बोध का सरल शाब्दिक रूप से अर्थ, अपनी संस्कृति सम्बंधी ज्ञान है। भारत में तो जीवन के हर पक्ष को, संस्कृति में समाहित किया जाता है। आलोचना पत्रिका के जनवरी–मार्च 1975 के अंक में रामवृक्ष बेनीपुरी अपने आलोचनात्मक लेख 'वर्तमान सांस्कृतिक, साहित्यिक स्थिति' में लिखते हैं–

> संस्कृति किसी समाज के उत्पादन सम्बंधों पर आधारित दर्शन, चिन्तन, कला, साहित्य, विज्ञान आदि की बात करते समय सम्बन्धित देश और काल के ऐतिहासिक विकासक्रम में उपस्थिति सामाजिक सम्बंधों और प्रभुत्वशाली वर्ग की तत्कालीन राजनीति को ध्यान में रखते हुए सांस्कृतिक मूल्यों का विश्लेषण किया जाय। (46–47)।

उपरोक्त परिभाषा साहित्यकारों के लिए, संस्कृति के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करती है और उन्हे अपनी कृतियों में तत्कालीन युग की संस्कृति के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने एवं उन पर लिखने हेतु संकेत करती है।

5. पर्यावरण बोध –

छायावादी काव्य को प्रकृति का काव्य भी कहा जाता है, हिन्दी साहित्य में पूर्व में भी प्रकृति को पुरूष एवं स्त्री के रूप में दिखाकर, अनेक काव्यों की रचना की गई है। विरह के दृश्य, मौसम के अनुसार प्रियसी का अपने प्रियतम के प्रति भाव, भिन्न–भिन्न ऋतुओं का सुन्दर चित्रण, हिन्दी साहित्य की अनमोल धरोहर है।

इस तरह के काव्य को मात्र हम प्रकृति का चित्रण भर कह सकते है, यह उसका यथार्थ नहीं है। आज की आधुनिकतावादी सोच में, मनुष्य ने जिसे सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया है– वह प्रकृति है। विकास की अन्धाधुन्ध दौड़ ने वनों को नष्ट कर दिया, नदियों के जल प्रवाह को बाधित कर दिया और वन्य प्राणियों को वन्यजीव अभ्यारण्यों व चिड़ियाघरों तक समेट दिया। इसके दुष्परिणाम धीरे–धीरे आने लगे हैं। नदियों का पानी अब पीने लायक नहीं रह गया, विश्व में पेड़ पौधों और जानवरों की अनेक प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर है और अनेक विलुप्त हो चुकी हैं। समुद्र प्लास्टिक के कचरे से भर गये हैं। हमने अपने चारों ओर जानवरों व मनुष्यों की जंग के अखाड़े खोल दिये हैं। इसमें जानवरों की गलती नहीं हैं, यदि आप किसी का आवास छिनेंगे, तो वह कहाँ जायेगा, आपके आवास में आ जायेगा। प्रकृति के साथ हो रहे इस अन्याय का ही परिणाम है कि मनुष्य आज बाढ़, भूकम्प, सूखा जैसी स्थितियों को झेलता है। कहीं बारिश से बाढ़ आ रही है, कहीं पीने के लिए पानी नहीं है।

21वीं सदी के साहित्यकारों ने इसे प्राकृतिक बोध कहा है। जब वह प्रकृति से जुड़कर, उसका यथार्थ पक्ष दिखाकर, उसके प्रति हो रहे अन्याय को प्रदर्शित करता है, वही सच्चा प्राकृतिक बोध होता है। सावन की ऋतु अब सुहानी नहीं रही है, या तो वह बाढ़ ला रही है या बादल बरस ही नहीं रहे हैं। आज प्रियसी अपने प्रियतम के इन्तजार में, वनों के पत्तो को नहीं देखती है, वह अपने चारों ओर खड़े कंक्रिट के विशाल जंगलों को देखती है। अब वनों में मोर नहीं नाचते हैं, क्योंकि उनका इतना शिकार हो रहा है कि अब उनका बचना मुश्किल है। प्राकृतिक बोध से युक्त व्यक्ति, जब यह सब देखता है तो उसे क्षोभ होता है। इस क्षोभ को साहित्यकार अपने साहित्य में लिखता है। यह पर्यावरणीय बोध ही है, जो उसे प्रकृति को अपने साहित्य में स्थान देने पर मजबूर करता है। जब वह देखता है कि आज तालाब, कुएँ, बावड़ियों के स्थान पर ऊँची–ऊँची इमारते खड़ी हो रही है, तो वह इन्हें अपने साहित्य में व्यक्त करके समाज को पर्यावरणीय बोध के प्रति जागृत करता है। यदि मनुष्य अभी नहीं चेता, तो उसके सामने भविष्य में और भी कठिनाइयाँ आयेगी। पर्यावरणीय बोध का होना, वर्तमान समय में बहुत आवश्यक है,

क्योंकि सिर्फ सरकार चलाने और नीतियाँ बनाने वाले मुट्ठी भर लोग पर्यावरण को नष्ट तो कर सकते हैं, परन्तु उसे बना नहीं सकते हैं। उसे बनाने के लिए तो हम सब को मिलकर योगदान करना होगा और यह कार्य हम युग बोध में पर्यावरणीय बोध को स्वीकार कर के कर, सकते हैं। अपने साहित्य में पर्यावरण की सही स्थिति को व्यक्त करके कर सकते है और मनुष्य जाति को इसके भयंकर परिणामों से साहित्य के द्वारा अवगत करवाना ही पर्यावरणीय युगबोध है।

साहित्यकार इसके भयंकर परिणामों की जानकारी तो देता हैं, साथ ही पर्यावरणीय युग बोध युक्त साहित्य पर्यावरण के प्रति जन में एक चेतना का विकास भी करता है। वह अपने साहित्य, में इस प्रकार कि रचनाऐं करता है कि समाज पर्यावरण को नष्ट होने से तो बचाता ही है, अपितु उसके विकास हेतु भी प्रयास करता है। यदि हम आज ही पर्यावरण विनाश को रोक दें, तो भी हम अपनी प्राकृतिक सम्पदा को इतने घाव दे चुके हैं कि उन्हें भरने में हमारी पीढ़ियाँ लग जायेगीं। इसलिए आज हमें साहित्य में पर्यावरण को नष्ट होने से बचाने व अधिक से अधिक पेड पौधों को लगाने की आवश्यकता बताने की बाते लिखनी होगी। जिससे हमारी आने वाली पीढ़ियाँ स्वच्छ हवा में साँस ले सके, स्वच्छ जल पी सके और शेर, चीते, बाज, चील जैसे जीवों को सिर्फ चित्रों में न देखकर, साक्षात देख सके।

6. साहित्यिक बोध –

साहित्य में युग बोध होता है। यह एक सर्वमान्य सत्य है और प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग के युगबोधों के विभिन्न आयामों को प्रदर्शित करता है। साहित्यकार भी उसी युग में रहता है, उसी को जीता है। उस युग में हो रहे परिवर्तनों को महसूस करके, वह अपने साहित्य में व्यक्त करता है। यही साहित्यकार अपने साहित्य में युग बोध को प्रदर्शित करने हेतु, जब साहित्य में परिवर्तन करता है तो वहाँ साहित्यिक युग बोध होता है।

साहित्यिक युग बोध रचनाओं की प्रकृति, रचनाशैली, आकार–प्रकार व विधा से स्पष्ट परिलक्षित होता है। साहित्यिक बोध के विभिन्न रूप होते हैं। सर्वप्रथम इसमें साहित्यकार की मनोवृत्ति व चित्तवृत्त का विशेष योगदान होता है। जब

साहित्यकार साहित्य लिखता है, तो वह अपने आस–पास के परिवर्तन से कितना प्रभावित होता है और उसे अपने साहित्य में उसके अनुसार कितना परिवर्तन करता है। यह परिवर्तन अनेक रूपों में परिलक्षित होता है। जिसमें महत्वपूर्ण है– शब्द योजना। समय एवं युग अनुरूप शब्दों का प्रयोग साहित्य में अति आवश्यक है। यह साहित्यकार का अधिकार भी है। वह अपने साहित्य में नये–नये शब्दों का प्रयोग करे। इसको स्पष्ट करते हुए इन्दूकान्त शुक्ल ने *नवगीत अर्द्धशती* कि भूमिका में कहा है–

> निर्मल वर्मा का उपन्यास *एक चिथड़ा सुख* (राजकामल प्रकाशन) पढ़ा इधर। आश्चर्य है, अन्य विदूषणों के साथ एक विचित्र संयोग– जहाँ भी खाने–पीने की बात इस उपन्यास में आयी है, वहाँ चर्चा है केवल सॉसेज, सैडविच, चीजक्यूब, रम, बीयर, सिगरेट की। कहीं भी रोटी– दाल – भात – समोसा – कचौड़ी – तरकारी – परांठा – पूड़ी – रायता – चटनी – मिठाई – हलवा – खीर –पापड़ नहीं। (4)।

इस प्रकार से साहित्य में नये शब्दों का आगमन होता है। यह साहित्यकार के युगबोध को परिलक्षित करता है कि वह अपने समय के अनुसार शब्दों का प्रयोग अपने साहित्य में करें।

बिम्बों का प्रयोग किसी भी साहित्य को उत्कृष्टता प्रदान करता है। अपने युग सापेक्ष कथनों को, बिम्बों के माध्यम से प्रदर्शित करना भी अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, युग बोध को साहित्य में उतारने हेतु साहित्यिक बोध का होना। इसके अतिरिक्त अपने युगीन सन्दर्भों के अनुसार वाक्य विन्यास, छन्दों का प्रयोग, भाषा शैली आदि का सही प्रयोग ही साहित्य का युग बोध है।

1.3 नवगीत उद्‌भव एवं विकास –

गीत जीवन की व्यथा है, दर्द है अनुभूति का।

हर्ष विषाद, आनंद–करूणा, शब्दों का सैलाब है।

'गीत' जिसे विभिन्न साहित्यों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, किसी भी साहित्य का प्राण होता है। वह अपने विभिन्न रूपों में सीधे–सीधे लोकमानस से जुड़ा होता है और उसके जीवन में बसा होता है। व्युत्पत्ति के हिसाब से गीत, गै + क्त के योग से बना है। वह रचना जो गेय हो, गीत कहलाती है। भारतीय साहित्य में गीत सदैव से विद्यमान रहा है। वैदिक साहित्य से लेकर उपनिषद्, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों, जैन एवं बौद्ध साहित्य, कालिदास के संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश से होती हुई, यह गीत परम्परा हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में रचित साहित्य का आश्रय लेती हुई, मध्यकाल और आधुनिक काल के छायावाद काल में तो अपनी कलात्मकता के चरम उत्कर्ष पर थी। परन्तु किसी ने सही कहा है कि जब आप चरम पर पहुँच जाते हैं तो मात्र गिरने का ही विकल्प रह जाता है। यह हिन्दी साहित्य में गीतों के साथ हुआ। छायावादी काव्य श्रेष्ठ तो था, परन्तु वह व्यक्तिगत काव्य था। आमजन के सुख–दुःख से दूर हो गया, परन्तु गीत तो आमजन का होता है। यही से हिन्दी साहित्य में महाप्राण निराला का उदय हुआ, उनके नवलय, ताल छन्द के विचार को कवियों ने पकड़ लिया। उन्होंने छन्दों से मुक्तता की बात की थी और मुक्त छन्द में रचना के लिए उसे ही योग्य माना था, जो छन्दों पर विजय प्राप्त कर चुका हो, परन्तु आगे के कवियों ने कविता को मुक्त छन्द में लिखने के स्थान पर, छन्द मुक्त कर दिया और उसे गद्य में बदल दिया।

निराला के गीतों से ही हमें गीतों में नई विचारधारा के उदय के संकेत मिलने लगे थे। चन्द्रदेव सिंह ने गीत व नवगीत के भेद एवं नवगीत के उदय के कारणों को स्पष्ट कर दिया है। वह अपनी पुस्तक *पाँच जोड़ बाँसुरी* में लिखते हैं–

> जब कविवर श्री सुमित्रानन्दन पंत ने 'वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलंकार' के द्वारा कथ्य की प्रेषणीयता के लिए अलंकारों की निरर्थकता प्रकट की थी। उसी अवधि में महाकवि 'निराला' ने छोड़ छन्दों की छोटी राह।' अनुभूतियों के स्वाभाविक अभिव्यंजन की ओर संकेत किया था। 'नवगीत' इसी दूसरे प्रयोग– प्रयास की परम्परा का एक मोड़ है। (9)

इसी को स्पष्ट करते हुए आगे वह लिखते हैं–

> छायावाद की प्रचलित लीक को अनुपयोगी, अनावश्यक और भावाभियक्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध करते हुए 'निराला' ने अपने परवर्ती गीतों में अनेक ऐसे प्रयोग किये हैं, जो शिल्प और छन्द की ही दृष्टि से नहीं, अनुभूति, भाषा और प्रतीक के रूप में भी उन्हीं के पूर्ववर्ती गीतों की तुलना में एकदम अलग, नये एवं विशेष प्रभावशाली लगते हैं। छायावादोतर गीतकारो ने 'निराला' के परवर्ती गीतों से प्रेरणा लेकर हिन्दी गीत–विद्या को एक नये आकार, एक नये रूप में प्रस्तुत किया। युगीन परिवर्तन और बदले हुए राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश ने इस पीढ़ी के गीतकारों की भाषा तथा शिल्प को भी अप्रभावित नहीं छोड़ा। छायावाद की कल्पना बहुलता से अलग परवर्ती गीत जीवन के सुख–दू:ख, हर्ष विषाद के अधिक निकट है और इसलिए विशेष स्वाभाविक तथा प्रेरक सिद्ध हुए। (9–10)

नवगीत संज्ञा के प्रयोग के सम्बंध में विद्वानों में एकमत नहीं है। कुछ विद्वानों का मानना है कि इसका प्रथम बार प्रयोग राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने किया। वरिष्ठ नवगीतकार नचिकेता अपनी पुस्तक *समकालीन गीतकोश* में लिखते हैं कि– "राजेन्द्र प्रसाद सिंह (मुजफ्फरपुर, बिहार) के द्वारा संपादित *गीतांगनी* के संपादकीय को ही एक नई गीतविधा के रूप में 'नवगीत' शब्द के प्रथम प्रयोक्ता होने का ऐतिहासिक प्रमाण माना जाना सर्वथा उचित जान पड़ता है।" (37)

दूसरे पक्ष के विद्वानों का मानना है कि डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने 'नवगीत' शब्द का प्रयोग प्रथम बार किया था, परन्तु नचिकेता ने इसका खण्डन करते हुए अपनी पुस्तक *समकालीन गीतकोश* में कहा है कि –

> इस सिलसिले में शंभुनाथ सिंह के इस मनोगतवादी अभिकथन को कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं माना जा सकता है कि उन्होंने वाराणसी की गंगा में बाजरे पर हुई कवि–गोष्ठी में अपने गीत–पाठ के क्रम में

> 'नवगीत' शब्द का प्रयोग पहली बार किया था। इसका उनके अभिकथन के अलावा दूसरा साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। (37)

इसके प्रति उत्तर में डॉ. इन्दीवर अपनी पुस्तक *नवगीत का दस्तावेज* में लिखते हैं कि–

> नचिकेता जिसे शम्भुनाथ का मनोगतवादी अभिकथन और उसका ऐतिहासिक प्रमाण होने की बात कहते हैं, उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि कवि सम्मेलनों के मंच पर नारेबाजी कर के वाहवाही लूटना एक बात है और किसी विषय पर रिसर्च करना गम्भीर कार्य है।

वह साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–

> डॉ. श्री पाल सिंह 'क्षेम' के गीत का 'नया परिवेश' आलेख जो *समय* 1973 में प्रकाशित है– 'हम लोगों के साथ रेडियो की काव्य गोष्ठियों तथा अन्य सभी आयोजनों में डॉ. शंभुनाथ सिंह नये ढंग के गीतों के लिए नवगीत शब्द का प्रयोग करते है। एक अन्य साक्ष्य के रूप में वह कहते है – दूसरा साक्ष्य डॉ. इन्दीवर की समीक्षा पुस्तक नवगीत में लोक चेतना है जिसके पृ. 69 पर डॉ. जगदीश गुप्त के प्रकाशित साक्षात्कार के उद्धरण द्वारा उक्त कथन को इस तरह प्रस्तुत किया गया है– परिमल' द्वारा आयोजित नयी कविता के कवियों एवं समीक्षकों का प्रथम इलाहाबाद सम्मेलन इस बात का साक्षी है। सर्वप्रथम वही बारम्बार नयी कविता शब्द का प्रयोग हुआ था। इस अवसर पर एक काव्य गोष्ठी भी आयोजित थी। शम्भुनाथ सिंह ने 'पुरवैया धीरे बहो' नामक गीत सुनाया था। गीत सुनाने के पूर्व उन्होंने कहा था – 'अन्य साथियों ने नयी कविताएँ सुनाई है मैं एक 'नवगीत' सुनाने जा रहा हूँ।' इस तरह बिना किसी विचार–विमर्श और प्रस्ताव घोषणा के नई कविता के मंच पर ही प्रथम बार नवगीत शब्द का सहज प्रयोग प्रारम्भ हो गया। (295)

उपर्युक्त मतों से यह स्पष्ट होता है कि भले ही इस विवाद में नवगीत शब्द का मौखिक प्रयोग शंभुनाथ सिंह ने किया हो, परन्तु उसका लिखित एवं सही अर्थों में प्रयोग राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने ही किया था। 'नवगीत' शब्द के प्रयोग में चाहे कितने ही विवाद, हो परन्तु अधिकांश नवगीतकार गीतों में से नवगीत के उदय के लक्षण, महाप्राण निराला के गीतों में ही देखते हैं। उनका गीत 'बाँधों न नाव इस ठाँव, बन्धु/पूछंगा सारा गाँव, बन्धु। को इसका प्रस्थान बिन्दु कहा जा सकता है। इस पर लगभग सभी विद्वान सहमत है।

'नवगीत' शब्द की भावना या यह गीत से किस प्रकार अलग है इस पर विद्वानों ने प्रकाश डाला है। डॉ. शंभुनाथ सिंह ने नवगीत के लिए *नवगीत अर्द्धशती* के संपादकीय में कहा था–

> नवगीत एक आपेक्षिक शब्द है। नवगीत की नवीनता युग सापेक्ष्य होती है। किसी भी युग में नवगीत की रचना हो सकती है। गीत–रचना की परम्परा, पद्धति और भाव बोध को छोड़कर नवीन पद्धति और विचारों के नवीन आयामों तथा नवीन भाव–सरजियों को अभिव्यक्त करने वाले गीत जब भी और जिस युग में भी लिखे जायेंगे, नवगीत कहलायेगें। (5)

इसकी पहचान को स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने *गीतांगनी* के संपादकीय में पांचसुत्री निकाय (प्रतिमान)– आत्मनिष्ठा, व्यक्तिबोध, जीवनदर्शन और परिसंचय बताया है। वरिष्ठ नवगीतकार मधुकर अष्ठाना अपनी पुस्तक *नवगीत : नई दस्तकें* में विचार व्यक्त करते हैं कि–

> नवगीत लोकसंवेदना का ही काव्य है। जन साधारण की पीड़ा की सम्प्रेषणीयता हेतु नवगीत में आंचलिक संस्पर्श की रंगिमा एवं मिथकों की भंगिमा ने इसे नई ऊँचाई प्रदान की। (12)

नवगीत एवं नई कविता का उदय समकालीन ही है। इसलिए अनेक विद्वान नवगीत को नई कविता से ही सम्बन्धित मानते हैं। यह थोड़ा विचारणीय है, 1960 ई. तक गीतकार एवं कवियों में कोई स्पष्ट भेद नहीं था। सभी श्रेष्ठ एवं महान माने

जाने वाले कवियों ने, गीत भी लिखे, परन्तु प्रयोगवाद के दौरान यह भेद उभरकर आया, जब कवियों ने सिर्फ 'कविता' लिखना प्रारम्भ किया और उन्होंने गीतों को हाशिया पर डाल दिया। इसको स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक *नवगीत : इतिहास और उपलब्धि* में डॉ. सुरेश गौतम का कहना है–

> यह मान लिया गया कि 'नवगीत' का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, बल्कि यह तो नयी कविता का ही एक अंश है। वस्तुतः साहित्यिक सम्मेलनों व गोष्ठियों में नवगीत पर चर्चा करना व्यर्थ समझा गया। लेकिन नई कविता द्वारा उपेक्षित नवगीत स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगा। (35)।

अनेक आलोचकों ने बाद में इस भ्रम को दूर किया और नवगीत एवं नयी कविता को अलग–अलग बताया। डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं– "मेरे ख्याल में गीतों की सार्थकता सच्चे अर्थों में गीत होने में है। नयी कविता की होड में बेडोल मुक्त–छंद होने और बिम्ब आदि की जटिलता की ओर दौड़ने में नहीं।" (38)

यहाँ पर कुछ अन्य विद्वानों के विचारों को देखने से नवगीत क्या है, को स्पष्ट किया जा सकता है। मधुकर अष्ठाना द्वारा संपादित पुस्तक *नवगीत के विविध आयाम* में डॉ. इसाक अश्क के अनुसार–

> गद्यात्मक नयी कविता की कड़ी धूप में 'नवगीत' छाया पैदा करने की छांदसिक कोशिश है, जो अपने रूपायन में स्वयं पूर्ण और समर्थ है, आधुनिक होते हुए भी परम्परा के पुण्य जल से पोषित है। (82)

कुमार रवीन्द्र ने अपने लेख 'समकालीन हिन्दी गीतः नई दस्तके' में लिखा है–

> समग्रतः हम कह सकते है कि नया गीत रागात्मक अन्तश्चेतना से उपजा एक ऐसा काव्य है, जिसमें विचार और भाव–संज्ञाएं एकात्मक होकर अनुस्थूत होती है और उसमें वैचारिकता गहन अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त होती है। (19)

इन सभी विचारकों के विचारो के विश्लेषण से, हमें नवगीत के प्रमुख गुण, नई कविता से उसके प्रस्थान बिन्दु एवं गीत से नवगीत का भेद स्पष्ट होता है। नवगीत एक मात्र 'नव' विशेषण जोड़ देने से, गीत से अलग नहीं हो गया है, अपितु यह आमजन के, उसकी परिस्थितियों, युगीन परिस्थितियों के एवं यथार्थ के अधिक नजदीक आने के कारण नवगीत है।

नवगीत को भी एक काव्य आंदोलन माना जा सकता है, जिस प्रकार कविता में छायावाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद जैसे आन्दोलन है और क्या यह भी नई कविता की भांति ही, नव विशेषण जोड़कर अपने को अलग दिखान कि कसरत है, इस सम्बंध में निर्मल शुक्ल द्वारा सम्पादित पुस्तक *शब्दपदी* में देवेन्द्र कुमार का कथन है –

> नवगीत कोई काव्यान्दोलन नहीं, नवगीत वह है जिसमें छानसिकता और लयात्मकता जो गोयता से समन्वित हो, जिसमें संवेदनधर्मिता या संस्पर्शशक्ति, ग्राह्यता और रमणीयता, संम्प्रेषणीयता और बिम्बधर्मिता या चित्रात्मकता हो जिसमें अनलंकृत और सादगी, खुलापन अर्थात स्वायत्तता और प्रतिबद्धता, लोक सम्पृक्ति और जन के प्रति सार्थक हो जिसमें भारतीयता की चेतना और जातीयता बोध, यथार्थ प्रसंग, विसंगतियों के दर्द और सामाजिक पीड़ा की अभिव्यक्ति और जवीन के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा हो, जिसमें भारतीय ढंग का आत्मीयता बोध हो, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना हो, परम्परा के भीतर से जन्मी नवता हो, सौन्दर्य प्रेम और मानवीय भावास्थितियों की जीवनी शक्ति के रूप में स्वीकृत हो जिसमें जीवंतता और गत्यात्मकता हो, और जो आदमी की कविता हो। (11)

इसी पुस्तक में नवगीत एवं नई कविता के भेद को स्पष्ट करती अमरनाथ श्रीवास्तव की टिप्पणी है–

> नवगीत नई कविता की प्रतिक्रिया नहीं है, नवगीत और नई कविता में विधागत भेद तो है ही, शिल्पगत और कथ्यगत भी है।

> गद्यात्मकता, दुरूहता आधुनिकता के नाम पर समसामयिक बल्कि क्षणिकता, छंदहीनता या छान्दिक अज्ञान के कारण छंदमुक्ति, विदेश, अन्धानुकरण, आरोपित नवीनता जाली और घिसे हुए बिम्ब प्रतीक नकली अनुभूति, और अतिप्रचलित भाषा जो नई कविता में है, नवगीत में नहीं, बल्कि है लय। एक बदली हुई काव्योचित लय.... नवगीत की दृष्टि में जीवन की सम्पूर्णता है। (12)

नवगीत किसी काव्यांदोलन के समान खड़ा नहीं हुआ है। यदि ऐसा होता, तो शायद यह समाप्त हो चुका होता। नवगीत की नई कविता के साथ मात्र नव विशेषण की समानता है, इसके अतिरिक्त इनकी उत्पत्ति के कारण निहायत ही भिन्न है। जहाँ एक और नई कविता छन्द मुक्ति का प्रयास है, वही दूसरी और नवगीत अपने रूप विधान शिल्प में 'स्व' से 'हम' की परिणति है।

यहि यह मान लिया जाये कि नवगीत, गीतों से भिन्न है, तो भी 'नव' शब्द कालसापेक्ष प्रतीत होता है। शंभुनाथ सिंह की यह बात भी गौरतलब है कि 'नवगीत' एक सापेक्षिक शब्द है और जिन गीतों में परम्परागत गीत पद्धति का बहुत कुछ नवीनीकरण हो जाता है, ऐसे गीतों को चाहे वे किसी भी युग के हो, हम नवगीत की संज्ञा दे सकते है। यह कथन भ्रामक स्थिति पैदा कर देता है और गीत एवं नवगीत का स्पष्ट विभाजन नहीं कर पाता है। शायद यही कारण है कि बाद में प्रत्येक विद्वान ने इसे अपने अनुसार समझा और नवीनीकरण के मानक के रूप में कुछ भी स्थापित करके अपने गीतों को नवगीत कहलाने लगे।

इसके कारण नवगीत में एक खेमेबाजी का उभार हुआ और गीतों के आगे अनेक विशेषणों का प्रयोग कर नयी–नयी धाराओं को चलाया गया। कहीं पर इसे अगीत (माहेश्वर प्रसाद) एंटीगीत (राजीव सक्सेना), नयी कविता के गीत (विद्यानिवास मिश्र), नया गीत (उदयभानु मिश्र), अनुगीत (मोहन अवस्थी) कहा गया। मधुकर गौड़ ने इसे गीत नवांतर एवं नचिकेता ने जनगीत कहा। विनय मिश्र ने अपने गीतों के लिए, समकालीन गीत शब्द का प्रयोग किया।

यहाँ पर शेष सभी नामकरणों ने सभी गीतों को अपने अन्दर समाहित किया और धीरे–धीरे समय के गर्भ में खो गये, परन्तु जिस एक नामकरण ने गीतों का विभाजन किया वह है, जनगीत। जनगीत को नवगीत से अलग मानकर गीतों का विभाजन किया गया। इसके अन्तर को बताते हुए *समकालीन गीतकोश* में अजय तिवारी ने लिखा है –

> नवगीत का कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूति और तन्मयता को अधिक महत्वपूर्ण मानता है। सामाजिक वास्तविकताएँ भी उसके निजी संदर्भ में अर्थ पाती है। जनगीत का कवि अपनी निजता को सामाजिक जीवन और आंदोलनों से जोड़ने में ही सार्थकता अनुभव करता है। इसलिए जनगीत में व्यक्तिगत अनुभूतियाँ सामुहिक अनुभव का अंश बनकर चरितार्थ होती है। (49)

इस को स्पष्ट करते हुए आगे नचिकेता ने अपनी पुस्तक *समकालीन गीतकोश* में कहा है– ''नवगीत यथा स्थितिवाद की कविता है और जनगीत प्रतिरोध और संघर्ष की।'' (49)

अपनी–अपनी सद्इच्छा के विशेषणों के प्रयोग और गीतों के विभाजन ने सर्वाधिक नुकसान गीतों का ही किया। यदि गीत विधा के आलोचना जगत एवं साहित्य स्थलों में पिछड़ने की वजह कोई है, तो यह मत विभाजन ही है।

> इसी से प्रेरित होकर सुरेन्द्र काले का कथन है – आज गीत जिस मुकाम पर पहुँच गया है वहाँ से कल इसे फिर नया रूप लेना होगा। तब इस नवगीत को किस संज्ञा से जाना जायेगा, यह प्रश्न मेरे मन में बार–बार उठता रहा है, इसलिए मैं नवता को वन्दनीय मानते हुए भी इसके नवगीत नामकरण के प्रति बहुत आग्रही कभी नहीं रहा गीत अंततः गीत है। वह युगानुरूप अपने को बदलते हुए अपनी यात्रा पर अविराम अग्रसर रहेगा।

नवगीत का काल विभाजन –

निराला द्वारा रचित गीत; 'बाँधों न नाव इस ठाँव, बन्धु। पुछेगा सारा गाँव, बन्धु।' से शुरू हुई नवगीत यात्रा आज अनेक पड़ावों का पार करते हुए, 21वीं सदी में आ चुकी है। अनेक विद्वानों ने समय–समय पर अनेक संकलनों के माध्यम से इसे कालखण्ड में विभक्त किया है। किसी भी साहित्य के लिए उसका इतिहास एवं काल विभाजन तर्क संगत और निष्पक्ष होना बहुत आवश्यक है। इस क्रम में मुख्यतः यह प्रक्रिया चन्द्रदेव सिंह द्वारा सम्पादित *पाँच जोड़ बाँसुरी* से प्रारम्भ होती है। स्पष्टतया यह एक गीत संकलन है, परन्तु फिर भी उन्होंने इसमें संकलित कवियों को पाँच पीढ़ियों में विभक्त किया है। इसके पश्चात डॉ. शम्भुनाथ सिंह, डॉ. राजेन्द्र गौतम, डॉ. ओमप्रकाश सिंह एवं नचिकेता ने भी अपने ग्रंथों में यह विभाजन किया है। विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया विभाजन निम्नलिखित है–

पाँच जोड़ बाँसुरी **, (सं) चन्द्रदेव सिंह** –

प्रस्तुत संकलन में, सर्वप्रथम गीतों को कालखण्ड में विभाजित करने का प्रयास किया। इसको स्पष्ट करते हुए सम्पादक ने लिखा है–

> प्रस्तुत संकलन *पाँच जोड़ बाँसुरी* सन् 1947 से 1967 के बीच लिखित –प्रकाशित ऐसे गीतों का समूह है जिससे सम्बन्धित अवधि के व्यक्ति मन का, मनः स्थिति का एक सहज परिचय मिल जाए। महाप्राण 'निराला' से साठोतरी कवि नरेश सक्सेना तक चालीस ऐसे गीतकार संकलित हैं, जिन्हें पाँच पीढ़ियों का प्रतिनिधि माना जा सकता है। (8)

उपरोक्त पाँच पीढ़ियों को, उन्होंने उसके प्रतिनिधि कवि के नाम से निम्न प्रकार विभक्त किया है।

1. निराला (सम्मिलित कवि – 03)
2. बच्चन (सम्मिलित कवि – 09)
3. ठाकुर प्रसार सिंह (सम्मिलित कवि – 08)
4. केदारनाथ सिंह (सम्मिलित कवि – 12)
5. ओम प्रभाकर (सम्मिलित कवि – 08)

किसी भी प्रकार के मानक पर आधारित न होकर भी, यह विभाजन पहले प्रयास के रूप में स्थान पाने का अधिकारी है। इसे नवगीत के साहित्य में, काल विभाजन की पूर्वपीठिका माना जा सकता है।

***नवगीत–अर्द्धशती,* (डॉ. शंभुनाथ सिंह) –**

इस ग्रंथ में इसके प्रकाशन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. शंभुनाथ सिंह ने लिखा है–

> प्रस्तुत संकलन नवगीत की विकास–यात्रा का एक सम्पूर्ण दस्तोवज है, जिसमें निराला की गीतिका (1935) से लेकर 1985 ई. तक के उन सभी कवियों के ऐसे गीतों का चयन किया गया है, जिनमें नवगीत के तत्व किसी न किसी रूप में दृष्टिगत होते है। इस तरह इस संकलन में इस शताब्दी के चौथे दशक से लेकर 9वें दशक के मध्य तक के पचास वर्षों में नवगीत की विकास–यात्रा में योगदान देने वाले ऐसे सभी कवियों के तीन–तीन (कुल 81 कवियों के 243) गीत संकलित है, जिन्होंने जाने–अनजाने नवगीत का बीजारोपण किया। उसको अंकुरित और पल्लवित किया, तथा पुष्पित और फलित बनाकर पूर्णता की ओर ले जाने का अंशतः या पूर्णतः प्रयास किया। (35)।

इस वाक्य से साफ निर्देशित है कि यह इतिहास ग्रंथ न होकर समवेत संकलन अधिक है। इससे पूर्व सम्पादक ने नवगीत दशकों – 1, 2, 3 का भी सम्पादन किया था। वहाँ पर भी उन्होंने दशकवार कवियों का चयन किया था। कुछ आलोचकों एवं कुछ समग्र को समाहित करने की इच्छा की परणिति था– नवगीत अर्द्धशतक। इसे भी उन्होंने कुछ–कुछ दशकों के आधार पर ही काल विभाजन किया है, जो निम्न प्रकार है :–

(1) 1935 से 1950

(2) 1951 से 1960

(3) 1961 से 1970

(4) 1971 से 1985

नवगीत उद्‌भव व विकास **, (डॉ. राजेन्द्र गौतम) –**

डॉ. राजेन्द्र गौतम ने सन् 1984 ई. तक के नवगीतों को, अपनी पुस्तक में प्रवृत्यात्मक आधार पर तीन भागों में विभक्त किया है, जो निम्न प्रकार से है :–

1. *कविता चौसठ* (1964) तक का नवगीत जिसमें आंचलिकता का तत्व ही प्रमुख है और जिसमें नवगीत एक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है।
2. *पाँच जोड़ बाँसुरी* तक का (1969) नवगीत जिसमें गीत की आंचलिक संवेदनाओं एवं आधुनिकता बोध का संश्लेषणात्मक रूप उपलब्ध है।
3. 1970 के बाद नवगीत जो अधिकाधिक यथार्थपरक, व्यंग्यात्मक एवं आधुनिक बोध से सम्पन्न है।

इस विभाजन पर कुमार रवीन्द्र का अपनी पुस्तक *नवगीत के विविध आयाम* में कहना है कि :–

> डॉ. शम्भुनाथ कि अपेक्षा मेरी राय में, डॉ. राजेन्द्र गौतम का 1984 तक की नवगीत विकास–यात्रा के संदर्भ में किया हुआ तीन सोपानी विभाजन अधिक वैज्ञानिक एवं सटीक है, क्योंकि इसमें प्रवृत्यात्मक बदलाव को रेखांकित किया गया है। (35)

डॉ. राजेन्द्र गौतम का यह विभाजन, 1984 तक के नवगीतों की प्रवृतियों का विभाजन अधिक है, न की उसके सम्पूर्ण इतिहास क्रम को विभाजित करने का प्रयास। इसी कारण से यह अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है।

नयी सदी के नवगीत, **(स. डॉ. ओम प्रकाश सिंह)** –

नयी सदी के नवगीत पाँच खण्डों में लिखा गया है। इसके प्रथम खण्ड की भूमिका में डॉ. ओम प्रकाश सिंह ने, नवगीत की सम्पूर्ण विकास–यात्रा को चार काल खण्डों में विभक्त किया है। इन्होंने अपने काल विभाजन का नामकरण भी किया है। इनका काल–विभाजन निम्न प्रकार है ।

(1) अभ्युदय काल (सन् 1955 से 1975)

(2) संघर्ष काल (सन् 1976 से 1990)

(3) उत्कर्ष काल (सन् 1991 से 2006)

(4) नवोत्कर्ष काल (सन् 2006 से आज तक)

***समकालीन गीतकोश,* (सं. नचिकेता) –**

नचिकेता द्वारा सम्पादित यह पुस्तक 2017 में प्रकाशित हुई, इसमें अपने 82 पृष्ठों के विस्तृत सम्पादकीय में उन्होंने नवगीत के विभिन्न आयामों को दर्शाया है। इसमें से एक खण्ड 'नवगीत के विकास के विविध सोपान' (50–51), में उन्होंने नवगीत विकास यात्रा को विभाजित किया है। मुख्यतः उनका यह प्रयास डॉ. ओम प्रकाश सिंह द्वारा पूर्व में किये गये काल विभाजन का आलोचनात्मक विश्लेषण है। इस विश्लेषण द्वारा उनके द्वारा किया गया, काल विभाजन निम्न प्रकार है।

(1) अभ्युदय काल (सन् 1940 से 1964)

(2) संघर्ष काल (सन् 1965 से 1975)

(3) उत्कर्ष काल (सन् 1976 से 190)

(4) नवोत्कर्ष काल (1990 से आज तक)

उन्होंने उत्कर्ष काल खण्ड की अवधि (1976 से 1990) को नवगीत का स्वर्णकाल भी कहा है।

किसी भी विधा को काल खण्डों में बाँटने का प्रयास उसके विभिन्न चरणों को पाठकों एवं समीक्षकों के मध्य रखना होता है। यह आवश्यक होता है, जिससे उसकी जीवन यात्रा को समझने में आसानी होती है। ऊपर वर्णित सभी काल विभाजन अपने आप में पूर्णता लिये न हो, परन्तु सभी का योगदान अमूल्य है। जो की एक नये इतिहास विभाजन की नींव बन सकते हैं।

1.4 21वीं सदी का नवगीत –

प्रस्तुत शोध कार्य 21वीं सदी के नवगीतों पर आधारित है अतः 21वीं सदी में नवगीत के विभिन्न आयामों को जानना आवश्यक है।

1.4.1 परिचय –

20वीं सदी के समाप्त होते –होते नवगीत अपनी पहचान बनाने में कामयाब हो गया था और साहित्य जगत में इसकी पहचान बन गयी थी। 20वीं सदी के कुछ मुख्य नवगीत संग्रह एवं समवेत संकलन, जिन्होंने नवगीत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया वह निम्न है–

1. **समवेत संकलन**

(1) *गीतांगिनि* (1958) – स. राजेन्द्र प्रसाद सिंह)

(2) *कविता चौसठ* (1964) – स. ओम प्रभाकर भगीरथ भार्गव

(3) *पाँच जोड़ बाँसुरी* (1969) – सं. चन्द्रदेव सिंह

(4) *नवगीत : सर्जन एवं समीक्षा* (1980) – सं. माहेश्वर तिवारी/देवेन्द्र शर्मा इन्द्र/डॉ. भगवान शरण भारद्वाज

(5) *नवगीत दशक* 1, (1982) स. शम्भुनाथ सिंह
नवगीत दशक 2, (1983) स. शम्भुनाथ सिंह
नवगीत दशक 3, (1984) स. शम्भुनाथ सिंह

(6) *नवगीत अर्द्धशती* (1985) स. शम्भुनाथ सिंह

(7) *गीत और गीत* – 1 से 5 (1968, 69, 91, 94, 96)– सं मधुकर गौड

(8) *धार पर हम एक* (1998) स. वीरेन्द्र आस्तिक

इसके अतिरिक्त दो और समवेत संकलनों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है, जो प्रकाशित तो 21 वीं सदी में हुए है, परन्तु जिनमें 20वीं सदी कि हिन्दी गीत विधा का प्रतिनिधित्व और प्रामाणिक परिदृश्य प्रस्तुत हो रहा है।

(1) *श्रेष्ठ हिन्दी गीत संचयन* (2001) स. कन्हैया लाल नन्दन

(2) *बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत* (2003) स. मधुकर गौड

यह सभी समवेत संकलन नवगीत की विकास यात्रा में मील के पत्थर है। जिन्होंने समय–समय पर इस विधा का उत्थान ही नहीं किया है, अपितु अपनी आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन भी किया है।

2. नवगीत संग्रह

(i) *बंशी और मादल* (1959) ठाकुर प्रसाद सिंह

(ii) *आओ खुली बयार* (1962) राजेन्द्र प्रसाद सिंह

(iii) *रवीन्द्र भ्रमर के गीत* (1963) रवीन्द्र भ्रमर

(iv) *मेंहदी और महावर* (1963) उमाकांत मालवीय

(v) *अविराम चल मधुवंती* (1967) वीरेन्द्र मिश्र

(vi) *जलते शहर में* (1968) उमाकान्त तिवारी

(vii) *गीत विहग उतरा है* (1969) रमेश रंजक

(viii) *पथरीले शोर में* (1972) देवेन्द्र शर्मा इन्द्र

(ix) *पिन बहुत सारे* (1972) कुंअर बेचैन

(x) *परछाई टूटती* (1978) शांति सुमन

(xi) *पंखकटी महराब* (1978) देवेन्द्र शर्मा इन्द्र

(xii) *हर सिंगार कोई तो हो* (1981) माहेश्वर तिवारी

(xiii) *एक चावल नेह रींधा* (1983) उमाकान्त मालवीय

(xiv) *गीत पर्व आया है* (1983) डॉ. राजेन्द्र गौतम

(xv) *आहत है वन* (1984) कुमार रवीन्द्र

(xvi) *मौसम खुले विकल्पों का* (1984) माधव कौशिक

(xvii) *कहो सदाशिव* (1994) यश मालवीय

(xviii) *एक बादल मन* (1996) राधेश्याम शुक्ल

इन सभी समवेत संकलनों एवं नवगीत संग्रहों ने नवगीत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

20 वीं सदी आधुनिकता के साथ समाप्त हो रही थी। 1990 के उदारीकरण 1991 में सोवियत संघ के विभाजन, शीत युद्ध की समाप्ति, 1993–99 तक की राजनीतिक अस्थिरता एवं 1999 के कारगील युद्ध को अपने अन्दर समाहित करते हुए 20वीं सदी का अवसान हुआ। 21 वीं सदी के उदय के समय देश ने राजनीतिक स्थिरता (भले ही गठबंधन सरकारों के रूप में) को प्राप्त किया। आधुनिकता का खुमार चढ़कर उतरने लगा था और विश्व एवं भारत में, उत्तर आधुनिकता का उदय हो रहा था। सीमा पर बाह्य आक्रमण न हो रहे हो, परन्तु अब समय छद्म युद्धों का आ गया था और पाकिस्तान ने इसमें आतंकवाद को प्रमुख हथियार के रूप में प्रयुक्त किया, जिसकी प्रणीति 26/11 के मुम्बई हमले के रूप में हुई।

21वीं सदी के दूसरे दशक में भारत में आर्थिक वृद्धि दर दोहरे अंकों में पहुंचने लगी और विश्व में अब शीत युद्ध, छद्म युद्ध एवं परोक्ष युद्ध जैसे शब्दों के स्थान पर ट्रेड वॉर (आर्थिक युद्ध) शब्द का उदय हुआ। अब किसी भी राष्ट्र को झुकाने के लिए उसकी अर्थव्यवस्था को निशाना बनाया जाने लगा, इस सम्बंध में रूस के राष्ट्रपति पुतिन का 2019 के जी 20 शिखर सम्मेलन से पूर्व दिया गया साक्षात्कार बहुत ही महत्वपूर्ण है– ''उन्होंने कहा कि अब हम वैश्वीकरण के स्थान पर राष्ट्रवाद की और लौट रहे हैं। यह सम्मेलन कोई ठोस नतीजे लायेगा (ट्रेड वॉर के सन्दर्भ) इसकी उन्हें उम्मीद नहीं है।'' इस राष्ट्रवाद कि एक और निशानी डोनाल्ड ट्रम्प का 'अमेरिका फर्स्ट' नारा है।

भारत भले ही 1990 के उदारीकरण के पश्चात आर्थिक रूप से आगे बढ़ रहा था, परन्तु सामाजिक संकेतों में (यथा जीवन प्रत्याशा, प्रति व्यक्ति आय में अन्तर, शिक्षा, भुखमरी, आवास, रोजगार) उसका प्रदर्शन गिर रहा था। कुछ मानकों में तो वह अपने पड़ौसी देशों श्रीलंका, नेपाल, भूटान व बांग्लादेश से भी पीछे हैं। इसको उजागर करती अर्थशास्त्री अर्मत्य सेन व ज्या द्रंये की पुस्तक *भारत व उसके विरोधाभास* बहुत ही महत्वपूर्ण कृति है। इन सभी आर्थिक सामाजिक परिवर्तन का असर नवगीत रचना पर भी आया। 20वीं सदी के नवगीत एवं 21वीं सदी के नवगीतों की रचना की पृष्ठभूमि के कारकों में यह परिवर्तन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

1.4.2 प्रमुख प्रवृतियाँ –

21वीं सदी का नवगीत, अपनी लम्बी विकास यात्रा के पश्चात एक सुदृढ़ ढाँचे को प्राप्त कर चुका था। उसका कथ्य अब समाज के अधिक नजदीक आ चुका है। इसे व्यक्त करते हुए अपनी पुस्तक *नवगीत के विविध आयाम* में कुमार रवीन्द्र का कहना है–

> आज के सामाजिक यथार्थ के सन्दर्भ में ग्राम–बोध, नगर–बोध, आधुनिकता–बोध, जाति–बोध, लोक संपृक्ति जैसी सोच बेमानी पड़ गयी है। वैश्विक अर्थतंत्र के दबावों के तहत पूरी मानवीय अस्मिता ही खतरे में पड़ गयी है। वर्तमान सभ्यता की विसंगतियाँ विश्व की आर्थिक शक्तियों के नव–उपनिवेशवादी छल–छन्द, मशीनीकरण और कम्प्यूटरीकृत होती विश्व व्यवस्था के अन्तर्गत मानव के संवेदन शून्य हो जाने का जो संकट आज है, वह पहले नहीं था। (18)

आज का नवगीतकार मात्र यथार्थवादी नहीं है, वह समस्या को समाप्त करना चाहता है उसके कारणों की खोज करता है। इसको स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक *नवगीत की विकास यात्रा* में माधव कौशिक का कहना है–

> आज के गीतकार के सामने महज शहरी मन की ऊब, खीझ तथा उदासी ही नहीं है। उसका मन्तव्य केवल अनास्था तथा औपचारिकता को ही सामने लाना नहीं है, वह तो युगीन समस्याओं की जड़ तक पहुँचने का यत्न कर रहा है। महज सतही चित्रण के स्थान पर अर्थव्यवस्था तथा अनाचार के मूल कारणों का खुलास करना, उसके लिए अति आवश्यक हो गया है। (84)

आधुनिकता से अब उत्तर आधुनिकता का समय आ गया है। इसने साहित्य को भी नये द्वार दिये है और 21वीं सदी का नवगीत भी इससे प्रभावित है। इसको बताते हुए अपनी पुस्तक *नवगीत का दस्तावेज* में डॉ. इन्दीवर ने लिखा है–

> नई सदी में जिस तरह साहित्य की अन्य विधाओं पर उत्तर आधुनिकता का प्रभाव पड़ा, वैसे ही नवगीत पर भी। 21वीं सदी के नवगीत में इसकी अभिव्यक्ति समूची समग्रता और सफलता के

> विकास की व्यवस्थाओं और कल्याण के नाम पर बनी समस्त संस्थाओं की कमियों, कमजोरियों और विसंगतियों के प्रति सचेत करती हुई दिखाई पड़ती है। नवगीतकार अपनी रचनाओं में एक ऐसा बिम्ब बनाता है, जो केवल यथार्थ की अभिव्यक्ति ही नहीं करता अपितु उसे चुनौती भी देता है। (299)

यही चुनौती आज के नवगीतों की पूँजी है। जो उन्हें छायावादी काल से, 20 वीं सदी के अन्त तक के नवगीतों/गीतों से अलग करती है। इसी को स्पष्ट करते हुए नचिकेता ने *समकालीन गीतकोश* के सम्पादकिय में लिखा है–

> यह एक अच्छी बात है कि समकालीन गीतकारों की नयी पीढ़ी केवल सामाजिक समस्याओं से साक्षात्कार करके ही संतुष्ट नहीं हो जाती, वरन उसकी जड़ तक पहुँचने का प्रयास करती है। समस्याओं की उत्पत्ति के मूलभूत कारणों की तलाश करती है और समाधान खोजने की चेष्टा भी। (83)

इस प्रकार आज के नवगीत की प्रमुख प्रवृतियों में यथार्थ का समग्र चित्रण, सच्चाई, सामाजिक सरोकार तथा मानवीय संवेदनाएं प्रमुख रूप से उभर कर आयी है। इस प्रकार 21वीं सदी का नवगीतकार विभिन्न भाव बोधों पर आधारित नवगीतों की रचना कर रहे हैं, जिसमें कहीं पर उन्होंने लोक जीवन कि विवशताओं को दर्शाया है, तो कहीं पर आज के दौर में आ रहे पारिवारिक विघटनों को दर्शाया है। इन नवगीतकारों ने राजनैतिक गिरावट तथा व्यापक धरातल पर पनप रहे भ्रष्टाचार, के शिकन्जों में कसे नागरिकों की पीड़ा, को महसूस करके उसे अपनी रचनाओं में जगह दी है। इस प्रकार से विभिन्न भावों पर आधारित नवगीतों का प्रकाशन 21वीं सदी के साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है।

21वी सदी के नवगीत के प्रमुख समवेत संकलन –

गीतांगनी से प्रारम्भ होती हुई, नवगीतों के समवेत संकलनों का परम्परा ने, 21वीं सदी में भी अपना योगदान नवगीत को स्थापित करने में जारी रखा है। 21वी सदी नवगीत के समवेत संकलनों के लिए बहुत अनुकूल रही है। इस सदी के प्रारम्भिक दो दशकों में ही, अनेक उच्च कोटि के समवेत संकलनों का प्रकाशन हो

चुका है, जिनके द्वारा नवगीतों एवं नवगीतकारों को एक विशेष पहचान मिल रही है। इसमें प्रमुख संकलन निम्नलिखित है :–

- *नवगीत और उसका युग बोध* (2004) सं. राधेश्याम बन्धु
- *शब्दपदी* (2006) सं. निर्मल शुक्ल
- *नवगीत : नयी दस्तके* (2009) सं. निर्मल शुक्ल
- *धार पर हम* (दो) (2010) सं. वीरेन्द्र आस्तिक
- *नवगीत के नये प्रतिमान* (2012) सं. राधेश्याम बन्धु
- *शब्दायन* (2012) सं. निर्मल शुक्ल
- *गीत वसुधा* (2013) सं. नचिकेता
- *नवगीत का लोकधर्मी सौन्दर्य बोध* (2015) सं. राधेश्याम बन्धु
- *सहयात्री समय के* (2016) सं. रंजीत पटेल
- *गीत सिंदूरी : गंध कपूरी* (2016) सं. योगेन्द्र दत्त शर्मा (दो खण्ड)
- *नयी सदी के नवगीत* (5 खण्ड) (2016 से 2018 तक) सं. डॉ. ओम प्रकाश सिंह
- *समकालीन गीतकोश* (2017) सं. नचिकेता
- *शंभुनाथ सिंह साहित्य समग्र* (2018) सं. इन्दीवर

उपरोक्त समवेत संकलन स्वयं में एक नवगीत की यात्रा है। भले ही आलोचकों की दृष्टि से इनमें कमियाँ हो तथा सम्पादकीय सीमाओं व विशेषताओं के कारण कोई भी समवेत संकलन पूर्ण नहीं दिखता हो, फिर भी इनका प्रभाव नवगीत की विकास यात्रा तथा साहित्य में नवगीत की पहचान बनाने में अतुलनीय है।

1.4.3 21वी सदी में नवगीत के प्रमुख हस्ताक्षर –

माहेश्वर तिवारी –

जन्म – 22 जुलाई 1939 (तलौली, जनपद–बस्ती उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ :– *हर सिंगार कोई तो है, सच की कोई शर्त नहीं, नदी का अकेलापन, फूल आये है कनेरों में*

माहेश्वर तिवारी नवगीत में काव्यत्व और कलात्मकता को उसकी पहली शर्त मानते है। इनका मानना है कि नवगीत अकविता, स्वीकृत कविता, सहज कविता आदि की तरह कभी भी केवल एक नारा नहीं रहा। इनका प्रथम नवगीत संग्रह *हर सिंगार कोई तो हो* वर्ष 1981 में प्रकाशित हुआ। डॉ. राजेन्द्र गौतम अपनी पुस्तक *हिन्दी नवगीत : उद्भव व विकास* में इस संग्रह हेतु लिखते हैं–

> हर सिंगार कोई तो हो के अधिकांश गीत इस उदासी की तरलता लिए है। यह उदासी किसी एकान्त प्रिय विरही की उदासी नहीं वरन् असहाय व्यक्ति की उदासी है, जो हर विश्वास को अत्यन्त व्यवस्थित रूप से तोड़े जाते देख रहा है। वह एक त्रासद स्थिति से खुद ही नहीं गुजर रहा, बल्कि एक पूरे युग के उससे गुजरने का साक्षी भी है। (86)

इसी प्रकार माधव कौशिक ने अपनी पुस्तक *नवगीत की विकास यात्रा* में लिखा है – "भाषा, तथा अभिव्यक्ति में नवता, भाव प्रवणता तथा आधुनिकता युगबोध माहेश्वर तिवारी के काव्य को समकालीन रचनाकारों की भीड़ से अलग करने में समर्थ है।" (46) नवगीतों पर लगने वाले आक्षेप की वह आज के जटिल समय के यथार्थ को अपने पारम्परिक छन्दों में व्यक्त नहीं कर सकता है, का प्रतिउत्तर व खण्डन करते हुए माहेश्वर तिवारी का *शब्दायन* अभिकथन है–

> यह एक अत्यन्त अतिवादी सोच है कि पारम्परिक छन्दों में आज का जटिल यथार्थ अभिव्यक्त नहीं हो सकता। छन्दों के माध्यम से भी अभिव्यक्ति के तेवर को धारदार और आधुनिक बनाए रखना समर्थ रचनाकार के लिए असंभव नहीं है, केवल कमजोर लोग ही ज्यादा छूट की तलाश करते है। (29)।

अनेक स्वतंत्र रचनाओं के अतिरिक्त संदर्भ काव्य–संग्रह, शोध स्वर और साहित्य भारती के नवगीत अंक का सम्पादन भी किया है। अध्यापन से सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

मधुकर अष्ठाना –

जन्म – 29 अक्टूबर 1939 (मझगाँवा, पोस्ट रानी की सराय, आजमगढ़,उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *न जाने क्या हुआ मन को, वक्त आदमखोर, दर्द जोगिया ठहर गया, और कितनी देर, मुट्ठी भर अस्थियाँ, कुछ तो करो, बचे नहीं मानस के हंस, कुछ तो कीजिए, हाशिए समय के, समय की होलिका में*

मधुकर अष्ठाना नवगीत में एक महत्वपूर्ण नाम है। नवगीत की सतत् साधना करने वाला साधक इन्हें कहा जा सकता है। इनके द्वारा सम्पादित *नवगीत के विविध आयाम* पुस्तक शोधार्थियों के लिए मार्गदर्शक के समान है। अपनी इस पुस्तक में गीत की सम्प्रेषणता के विषय में इनका मानना है कि–

> पश्चिमी देशों में गीत की आयु कुछ वर्षों तक सीमित है, किन्तु भारत में इसकी उपस्थिति वेदों के पूर्व से ही लोक–मानस की जड़ता को तोड़कर संवेदना के नये–नये रूपों से रस प्लवित करती रही है। भारतीय संस्कृति मानवीय चेतना के जागृति काल से ही गीतात्मक रही है। (7)

इसी पुस्तक में नवगीत के एक अन्य पहलू गेयता के विषय में वे लिखते हैं–

> कतिपय नवगीतकार, नवगीत को गेयता के स्थान पर लयात्मकता की ओर ले जाने की कोशिश कर रहे हैं, जो नवगीत की आत्मा के विरूद्ध है। छन्दों में हजारो प्रयोग किये जा चुके है, किन्तु उसकी गेयता को हानि नहीं पहुँचाई गयी। गेयता शुद्ध छन्द से ही आती है जो नयी कविता/गद्य कविता में उपस्थित नहीं है, जिसके कारण आम आदमी की नयी कविता/गद्य कविता में रूचि नहीं रह गई हैं। इन परिस्थितियों में नवगीत में छान्दसिक गयेता, सम्प्रेषणीयता बनाने के लिए आवश्यक है। यदि उपर्युक्त तथ्यों को नवगीतकार ध्यान में

> रखेंगे, तो नवगीत सम्प्रेषणीयता की प्रवृति के साथ समय–संवाद में सक्षम बना रहेगा। (22)

हिन्दी नवगीतों के अतिरिक्त एक भोजपुरी नवगीत संग्रह *सिकहर से भिनसहरा* भी लिखा है। अपरिहार्य (अनियतकालीन पत्रिका) के दो भागों में नवगीत विशेषांक का संपादन भी किया है। इनके व्यक्तित्व व कृतित्व पर अवधेश नारायण मिश्र द्वारा *समसामयिक संवेदना के शब्द शिल्पी* का संपादन किया गया है। वही डॉ. आर.पी.शर्मा ने *कालजयी नवगीतकार : मधुकर अष्ठाना* नामक ग्रंथ संपादित किया है। सरकारी सेवा से सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

गुलाब सिंह

जन्म – 5, जनवरी 1940 (बिगहनी, इलाहाबाद, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *धूल भरे पाँव, बाँस वन और बाँसुरी, जड़ो से जुड़े हुए, कभी मिटती नहीं संभावना*

गुलाब सिंह के गीतों में समकालीन सामयिक परिस्थितियों, खंडित हो रहे ग्रामीण जीवन का यथार्थ निरूपण दिखाई पड़ता है, जो विभिन्न त्रासद स्थितियों को और भी प्रभावपूर्ण ढंग से हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है। इनके नवगीतों में ग्रामीण जीवन में अंतर्विरोधो का भी सुन्दर वर्णन है। इसी का वर्णन करते हुए डॉ. ओमप्रकाश सिंह अपनी पुस्तक *नयी सदी के नवगीत भाग–5* में ने लिखा है –

> अनेक अंतर्विरोधों के मध्य ग्रामीण जीवन की करवट लेती पीढ़ियों को जाँचना–परखना और उनके भीतर उभरते नये मानव की संवेदना को नवगीतों द्वारा अभिव्यक्ति देना कोई गुलाब सिंह से सीखे। 'शब्दों के हाथी पर ऊँघता महावत है, गाँव मेरा लाठी और भैंस की कहावत है।' ऐसी तीक्ष्ण और मुहावरेदार संवेदना गाँवों के लिए सचमुच चरितार्थ होती है। उन्होंने गाँव की सांस्कृतिक विरासत को, घुसपैठ करते बाजार और राजनीति की ओर जातीय–साम्प्रदायिक विद्वेष को अपने नवगीतों का विषय बनाया है। (17)

साहित्य एवं गीत के उद्देश्यों के प्रति उन्होंने कहा है – साहित्य के उद्देश्य से भिन्न गीत के उद्देश्य अलग नहीं है। आज के गीत को स्पष्ट करते हुए गुलाब सिंह ने *शब्दायन* में लिखा है –

> आज के गीत ने अपनी कोमलता, रसात्मकता और वर्णनात्मकता को घटाकर अभिव्यक्ति की नई भंगिमाये अपनाते हुए जो खतरे उठाये है, उसके समर्थन में और विरोध दोनों के स्वर सुनाई पड़ते हैं। (43)

गुलाब सिंह का सदैव यह मानना रहा है कि संस्कार और परिवेश दोनों का प्रभाव रचनाकार पर होता है। एक रचनाकार इनसे अलग होकर साहित्य निर्माण तो कर सकता है, परन्तु वह मात्र तुकबंदी हो सकती है, कविता नहीं।

नवगीत के अतिरिक्त अनेक उपन्यासों का भी लेखन किया है – *अपने समय के सामने, जमीन से ही निकलेगा जीवन, पानी के घेरे* आदि प्रमुख है। अध्यापन कार्य से सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

कुमार रवीन्द्र –

जन्म – 10 जून 1940 (लखनऊ, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *आहत है वन, चेहरो के अंतरीप, पंख बिखरे रेत पर, सुनो तथागत, हमने संधियाँ की*

नवगीत को ऊँचाईयों पर पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले नवगीतकारों में कुमार रवीन्द्र एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। इनके गीत *'नवगीत दशक– 2', 'नवगीत अर्द्धशती', 'यात्रा के साथ–साथ' व 'सप्तपदी–1'* आदि अनेक महत्वपूर्ण नवगीत संकलनों में संकलित है। 1994 में प्रकाशित *आहत है वन* से ही इन्होंने नवगीत के क्षेत्र में विशेष पहचान बना ली थी। इनके विषय में माधव कौशिक ने *नवगीत की विकास यात्रा* में लिखा है–

> कुमार रवीन्द्र के गीतों में आज के युग की तमाम विसंगतियों तथा मानव– समाज की सारी की सारी विद्रूपताएं बहुत ही कलात्मक ढंग

> से अभिव्यक्ति हुई है। वे अपने परिवेश की तमाम जटिलताओं से पूर्णतया परिचित है। (154)।

डॉ. सुरेश गौतम ने कुमार रवीन्द्र के बारे में अपने विस्तृत विवेचन में उन्हें नवगीत का मेघधारी सुरभित झरोखा कहा है। उन्हीं के शब्दों में– रवीन्द्र के गीत वैज्ञानिक भौतिक कुहासे को चीरकर मनुष्य को उसकी अस्मिता का व्याकरण समझाते हैं। लय–ताल की ठुनक प्रतितियाँ रवीन्द्र के गीतों में भाव–विचार का सेतु–संतुलन निर्मित कर जीवन की समरस व्यवस्था का गायन करती है। (157) डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने इन्हें अपनी पुस्तक *नयी सदी के नवगीत के भाग–1* में संकलित किया है। वे लिखते हैं–

> कुमार रवीन्द्र के नवगीतकार की सोच बहुआयामी है। अनेक जटिलताओं, विसंगतियों और द्वंद्व भरी अनुभूतियों के दायरे में नवगीत अक्सर आक्रामक हो उठता है। मगर रवीन्द्र ऐसे नवगीत–समुद्र के हृदयग्राही रचनाकार है जो अपने अंतिम क्षणों तक बिगड़ी स्थितियों को सुधारने के पक्षधर है। उनके सृजनशील विचारों की कोमलता और निर्पेक्षता एवं तटस्थता समाज को संजीवनी प्रदान करने वाली है। वे प्रकृति एवं दर्शन के ही गीतकार नही, बल्कि भारतीय समाज की विद्रूपताओं एवं विसंगतियों के प्रति चिंता रखने वाले शुभेच्छु कवि भी है। लोक–पीड़ा ही उनके नवगीतों की पीड़ा बनकर अभिव्यंजित होती है। (45)

मधुसूदन साहा –

जन्म – 15 जुलाई 1940 (धनसाई, पोस्ट चपरा, गोड़ा, झारखण्ड)

प्रमुख कृतियाँ – *महुआ – महावर, तप रहे कचनार, शब्दों की पीड़ा*

इनके विषयों में डॉ. ओमप्रकाश सिंह का अपनी पुस्तक *नयी सदी के नवगीत भाग–5* में कहना है– ''साहा के नवगीतों में परिवार, समाज, राष्ट्र की संवेदनाएँ

सहज अभिव्यक्ति पाती है। इनके नवगीतों में लय छंद और बिम्ब शिखर पर मिलते हैं। ये अपने समय के लोक रंग नवगीतों के सारथी है। (21)

मधुसूदन साहा साहित्य को समाज से परे नहीं मानते हैं, उनका कहना है – "साहित्य कभी भी समाज से परे नहीं हो सकता और यह सर्व विदित है कि यह विभिन्न मानवीय क्रिया–कलापों का ही रंगमंच है।'' गीत व नवगीत के अन्तर को भी इन्होंने बहुत ही सरल शब्दों में *नवगीत के विविध आयाम* व्यक्त करते हुए लिखा है :– ''गेयता, छान्दसिकता लयात्मकता और भावान्विति यदि गीतों की अस्मिता है तो नवगीतों में भी नई शब्दशक्ति, नवीन अभिव्यक्ति–कौशल, नये शिल्प–विधान, अद्यतन भाषा सौष्ठव, प्राकृतिक प्रतीकों एवं बिम्बों के अछूते प्रयोगों के माध्यम से गीत के इन्हीं तत्त्वों को सम्प्रेषित किया जा रहा है।'' (198)

शांति सुमन –

जन्म 15 सितंबर 1942 (कासिमपुर, सहरसा, बिहार)

प्रमुख कृतियां – *ओ प्रतीक्षित, परछाई टूटती, पसीने के रिश्ते, मौसम हुआ कबीर, तप रहे कचनार, भीतर–भीतर आग, पंख–पंख आसमान, एक सूर्य रोटी पर, धूप रंगे दिन*

नवगीत/गीत की जनवादी धारा और गीत विधा की महिला शक्ति के स्तम्भ का नाम है – शांति सुमन। अपने प्रथम नवगीत संग्रह *मौसम हुआ कबीर* में वह स्वयं को जनवादी गीतकार घोषित करते हुए लिखती है–

> कला का सामूहिक संसार यथार्थ सामाजिक जीवन के सामूहिक संसार द्वारा पोषित होता है। सही जनवादी गीत की रचना तभी सम्भव है, जब युगानुरूप संघर्षशील क्रांतिकारी वैचारिक अन्तर्वस्तु के साथ रूप और शिल्प का सहज तारात्म्य हो।(2)

माधव कौशिक ने इन्हे जनगीत की धारा में भवानी प्रसाद मिश्र, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रमेश रंजक और हरीश भदानी जैसे नवगीतकारों कि पंक्ति में स्थान दिया है।

हाल ही में प्रकाशित इनके नवगीत संग्रह *पंख–पंख आसमान* (जो कि इनके नवगीतों के अभी तक प्रकाशित सभी संग्रहों में चुनिंदा गीतों का संकलन है) के संपादकीय में नचिकेता लिखते हैं– ''शांति सुमन के गीतों में मैथिली संस्कृति और लोक भाषा की मिठास और माधुरी है तो कमला, बागमती और कोसी की वेगवती धारा और उत्तल तरंगों की क्षिप्रता और आवेगी भी है। (फ्लैप) डॉ. ओमप्रकाश सिंह का अपनी पुस्तक *नयी सदी के नवगीत भाग–5* में कहना है–

> शांति सुमन के नवगीतों में लोकधुनों और रागबोध की संस्तुति दिखाई देती है। अपने आसपास के बिम्बों और प्रतीकों को लेकर नवगीतों की रचना करने में शांति सुमन माहिर है। जहाँ इनके नवगीतों में व्यक्ति पीडा समाई हुई है, वहाँ रचनाकार ने उसे भी समष्टि की पीड़ा बनाने में कामयाबी हासिल की है। उनके गीतों की सामाजिक चिंता जन–जन की पीड़ा से उद्भूत है। (18)

अनेक गीत संग्रहों की रचना के अतिरिक्त सर्जना, अन्यथा एवं बीज आदि पत्र–पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। इनके जीवन व कृतित्व पर दिनेश्वर प्रसाद दिनेश के संपादन में *शांति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि* तथा चेतना वर्मा के संपादन में *शांति सुमन की गीत रचना : सौन्दर्य और शिल्प* नामक ग्रंथ भी प्रकाशित हुए है। वर्तमान में जमशेदपुर में सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

राधेश्याम शुक्ल –

जन्म – 26 अक्टूबर, 1942 (समेरा, वाराणस, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *पँखुरी – पँखुरी झरता गुलाब, त्रिविधा, एक बादल मन, त्रिकाल के गीत,*

राधेश्याम शुक्ल को गाँवों का नवगीतकार भी कहा जाता है। इस पर सहमति व्यक्त करते हुए माधव कौशिक ने अपनी पुस्तक *नवगीत की विकास यात्रा* में लिखा है–

> राधेश्याम शुक्ल के नवगीतों में गांवों की सही, सच्ची तथा खरी तस्वीर देखी जा सकती है। यह गाँव छायावादी गाँव की तरह रोमानी नहीं है। वहाँ सियासत की दुरभि–संधियां हैं, पंचो–सरपंचों के प्रपंच है, बदहाली तथा कंगाली के साथ शोषण व दमन की पीड़ा भी है। .... राधेश्याम शुक्ल सम्भवतः अकेले ऐसे रचनाकार है, जिनको काव्य संवेदना में ग्रामीण समाज अपनी सम्पूर्णता के साथ उपस्थित हुआ है। उनके गीतों की भाषा में जन–सामान्य की मुहाबरेदारी तथा लोच पर्याप्त मात्रा में है, अछूते बिम्ब तथा अप्रस्तुत विधानों की योजना ने इन नवगीतों को अत्यन्त मार्मिक तथा आत्मीय बना दिया है। (132)

इसी प्रकार अपनी पुस्तक *नयी सदी के नवगीत भाग–1* में डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने लिखा है– शुक्ल जी नवगीत के आचार्य है। वे लिखते हैं –

> भारतीय परम्परा, जीवन और जगत को सत्य, शिव और सौन्दर्य की समन्वित भूमि पर पल्लवित, पुष्पित और फलित करती आ रही है। इसका सत्य युग–सत्य और शाश्वत सत्य से जुड़ा है। इसका शिवत्व समष्टिगत है, और सौन्दर्य मानसी आनन्द का उपकारक है। ऊपरी चकाचौंध का नहीं। ग्रामीण परिवेश के शोषण और विवशता को शब्द–रूपाकार करने में आप की लेखनी अद्वितीय है। लोक शब्दों, मुहावरो और लोकोक्तियों की भाषा देकर समाज के यथार्थ का खुलासा करना तथा मूल्यों की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करना इनके ही बलबूते की बात है।

राधेश्याम शुक्ल पर एक आलोचनात्मक निबंध ग्रंथ *बेपीर सदी के साक्षी रचनाकार : डॉ. राधेश्याम शुक्ल* रामसजन पाण्डेय एवं कुसुम चुघ के संपादन में निकला है। वर्तमान में हिसार में सेवानिवृति के बाद स्वतंत्र लेखन।

बुद्धिनाथ मिश्र –

जन्म – 01 मई 1949 (देवधा, समस्तीपुर, बिहार)

प्रमुख कृतियाँ – *जाल फेंक रे मछेरे, जाडे में पहाड़, शिखरणी, ऋतुराज एक पल का*

बुद्धिनाथ मिश्र गाँवों के नवगीतकार हैं, उनके गीतों में गाँव बसे हैं। वह आज भी गाँव से दूर होने की पीडा का अनुभव करते हैं। वह अपने गीतों में सामाजिक, नैतिक व सांस्कृति पतन को भी उजागर करते हैं। उनके नवगीत संग्रह *शिखरणी* पर टिप्पणी करते हुए माधव कौशिक अपनी पुस्तक *नवगीत की विकास यात्रा* लिखते हैं –

> शिखरणी' में जीवन के अनगिनत सन्दर्भ, उत्कृष्ट बिम्ब विधान व भाषायी लालित्य के माध्यम से अमर हो गये है। सविता मिश्र के शब्दों में – गहन अनुभूति, भावात्मक आवेग, ध्वनि विन्यास की सहजता के साथ–साथ इन गीतों में अद्भूत संस्कृति निष्ठा है। व्यापक जीवन सन्दर्भों और परिवेशगत जटिल यथार्थ की सांगीतिक अभिव्यक्ति पाठक की अन्तश्चेतना को आनन्द की अनुभूति कराती ही है, उसकी सामाजिक चेतना को भी झकझोर कर रख देती है। (16)

डॉ. ओमप्रकाश सिंह, बुद्धिनाथ मिश्र को आशा और उल्लास का कवि मानते हैं। वे लिखते हैं– वे सौंदर्य चेतना और मानवीय रागबोध के नवगीतकार है। यह भी नहीं है कि उन्हें जीवन के खुरदुरे यथार्थ आन्दोलित नहीं करते, समय की सीमा में कवि का भावुक मन जीवन के हर संघर्ष के प्रति जागरूक है, किन्तु गीत–राग के साथ। अनेक नये पुराने बिम्बों को लेकर कभी प्राकृतिक तो कभी वैज्ञानिक बिम्बों के प्रयोग ने मिश्र जी के गीतों की विविधता में चार चांद लगाये हैं। भाषा की सपाट

बयानी और शब्दों के चयन के समय वे नवगीतों में संप्रेषण को विशेष महत्व देते है।

डॉ. ओमप्रकाश सिंह –

जन्म – 8 दिसम्बर 1950 (उत्तरागौरी, रायबरेली)

प्रमुख कृतियाँ – *सर्जना के पंख, एक नदी है गीत, गीत मेरे मीत, इन्द्रधनुषी गीत मेरे, जंजीरों को तोड़ो, ये समय के गीत है, दीप जलने दो, चंदन पर नागो का पहरा, शब्द है प्रतिबिम्ब मेरे, यायावर नवगीत हमारे, बनजारे गीतों के गाँव*

नवगीत के प्रति समर्पित डॉ. ओमप्रकाश सिंह का कहना है कि – नवगीत विधा के प्रति समर्पित मन अपनी लेखनी से जड़–चेतन जगत को लयबद्ध एवं छंदबद्ध करने में कही पीछे नहीं लौटता। बहुआयामी रचनाकार है, नवगीतों के अतिरिक्त नाटक, कहानी, हाइकु व दोहा में भी लेखन है। अपने रचना बोध के दायित्व को वह सही प्रकार से समझते है। इसलिए *एक नदी है गीत* नवगीत संग्रह की भूमिका में कहा है – "21वीं सदी में नवगीत के दरवाजे पर युगीन संवेदना छटपटाहट लेकर सर्जना की चमकीली परते उकेरने के लिए बेताब है। सांस लेना और उसके सच को खंगालकर मूल्यों की तलाश करना जरूरी है।"(14)

माधव कौशिक इन्हें मात्र अपने व्यक्तिगत कष्टों की अपेक्षा पूरे समाज के दर्द को अभिव्यक्ति देने वाला कहा है। उनका कथन है – ''मानव–मूल्यों का निरन्तर ह्रास उसे उद्वेलित करता रहता है। राजनीतिक पाखण्ड तथा सामाजिक अन्याय के बेहद प्रामाणिक चित्र उनके गीतों में देखे जा सकते है।''(16)

डॉ. इन्दीवर ने इनके रचना वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए अपनी पुस्तक *नवगीत का दस्तावेज* में लिखा है– ओमप्रकाश सिंह के प्रारम्भिक गीत प्रणय और रूमानी भावबोध के है, किन्तु उनमें मांसलता अथवा यौन कुण्ठा न होकर स्वस्थ गार्हस्थ जीवन की मधुरता है। बाद के उनके गीतों में आंचलिक बोध और लोक

तत्व का गहराई से समावेश हुआ है। कवि के ऐसे गीतों में ताजगी और आकर्षण है।

नवगीत के क्षेत्र में अनेक संग्रहों के अतिरिक्त दो समीक्षा ग्रंथों *समकालीन कविता और नवगीत का तुलनात्मक आकलन* व *नयी सदी के नवगीत* (पाँच भागों में), के द्वारा इन्होंने नवगीत के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया है। वर्तमान में बैसवारा स्नातकोत्तर महाविद्यालय लालगंज, रायबरेली के हिन्दी विभागाध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त कर, यही पर बैसवारा शोध संस्थान की स्थापना और संचालन कर रहे हैं।

बृजनाथ श्रीवास्तव –

जन्म – 15 अप्रैल 1953 (भैनगाँव, जनपद, हरदोई, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *दस्तखत पलाश के, रथ इधर मोडिये*

बृजनाथ श्रीवास्तव को इनके पहले नवगीत संग्रह *दस्तखत पलाश के* (2004), से ही उनकी नवगीत के क्षेत्र में विशेष पहचान बन गई। अपने नवगीत के लिए वह कहते हैं– ''मैं जिन्दगी की जिस भी गली से गुजरता हूँ अथवा गुजरने का उपक्रम करता हूँ, वही–2 सभी दिशाओं से विचार घेर लेते हैं।'' यही कारण है कि उनके गीत आम आदमी से जुड़े हैं।

बृजनाथ श्रीवास्तव साहित्य व समाज को एक मानते है। कुमार रविन्द्र द्वारा सम्पादित पुस्तक *नवगीत के विविध आयाम* में अपने एक लेख में उनका है कि–

> साहित्य समाज का दर्पण होता है, अगर तत्कालीन युगबोध की व्यापकता रचनाओं में उतर नहीं पाती तो वह साहित्य मंचीय मनोरंजन भर कर सकता है, अन्य कुछ नहीं। वह कालजयी साहित्य नहीं होता और न ही उसे पीढ़ियाँ संजोकर रखती है। (225)

बृजनाथ श्रीवास्तव का मानना है कि साहित्य की प्रत्येक विधा के जीवन काल में ऐसा समय आता है, जब उसे वर्तमान से रूबरू होना पड़ता है। वर्तमान समाज में आ रहे परिवर्तनों को उन्होंने सांस्कृतिक विडम्बना की स्थिति कहाँ है।

जहाँ पर समाज का भौतिक पक्ष विकास और विघटन की राहों पर बड़ी तेजी से दौड़ रहा है। जबकि सांस्कृतिक पक्ष पीछे कही छुट गया है।

डॉ. ओमप्रकाश सिंह इन्हें आम आदमी का नवगीतकार कहते है। अपनी पुस्तक *नयी सदी के नवगीत* में उनका कथन है–

> बृजनाथ के नवगीतों में आम आदमी कक रोजमर्रा जीवन को बांचने की दक्षता है। उनके नवगीत प्रतिक्षण होते सामाजिक बदलाव को लिपिबद्ध कर यथार्थ को रेखांकित करते है। उनकी दृष्टि में 'नवगीत सामयिक विसंगतियों से आहत होती लोक संवेदना की कथा है। नवगीत हिन्दी काव्य कला का त्रिकालदर्शी, कामरूपी अनुपम रत्न है, जो दृश्य, अदृश्य, अनुभूत मानवीय चिंतन के आयामों, अवयवों की छंदबद्ध समकालीन अभिव्यक्ति करता है। अतः नवगीत ही समकालीन गीत है।

इसी नयी दृष्टि से नवगीतकार बृजनाथ श्रीवास्तव ने नवगीत की अंतर्वेदना का स्पर्श किया है।

बृजनाथ श्रीवास्तव वर्तमान में बैंक की सेवा से अवकाश प्राप्त करके, स्वतंत्र लेखन कार्य कर रहे है। कानपुर में निवास है।

माधव कौशिक –

जन्म – 1 नवम्बर 1954 (भिवानी, हरियाणा)

प्रमुख कृतियाँ – *मौसम खुले विकल्पों का, शिखर संभावना के, जोखिम भरा समय है*

साहित्य की लगभग सभी विधाओं में सृजनरत माधव कौशिक एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार है। जो अपने वर्तमान समय एवं समाज को अच्छी तरह से पहचानते हैं।

माधव कौशिक ने अपनी पुस्तक *जोखिम भरा समय है* में आज के वर्तमान समय पर सार्थक टिप्पणी करते हुए लिखा है–

> भूण्डलीकरण–उदारीकरण और वैश्वीकरण –बाजारीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न अपसंस्कृति के सामने मानव मूल्यों को संरक्षित करने वाली सारी शक्तियाँ स्वयं को असहाय–निरूपाय अनुभव कर रही है। फलस्वरूप नैसर्गिक एवं शाश्वत जीवन मूल्यों के स्थान पर अराजकता और अमानवीयता का अन्धकार फैलता जा रहा है। (11)

वह नवगीत के महत्व को दर्शाते हुए लिखते हैं – गद्य के इस नीरस युग में नवगीत एक भरे–पूरे तथा हरे–भरे उद्यान की तरह लहलहाता प्रतीत होता है। जहाँ पहुँच कर हर कविता प्रेमी राहत की साँस लेता है।''

डॉ. इन्दीवर ने अपनी पुस्तक *नवगीत का दस्तावेज* में इन्हें परम्परा और परिवेश से विकसित वर्तमान का रचनाकार मानते हैं, उनका कहना है–

> माधव कौशिक युग जीवन को बड़ी सुक्ष्मता से परखते हैं। इसलिए अतीत के गौरव से वह जितनी प्रेरणा लेते हैं, युग सापेक्ष संवेदना से उतना ही प्रभावित होते हैं। परिणामतः वे समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं को नवगीतों में अनुस्युत करने के साथ ही आदमी के मानस की गुह्मता के सूत्रों को खोलते हुए, समस्त संवेगों, मानसिक जटिलताओं, वेदना ओर टीस को उद्भासित करते हैं। उनकी रचना धर्मिता उत्तर आधुनिकता के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण तथा बाजारवाद की समस्या मूलकता के साथ प्रश्न और प्रति प्रश्न करती है। और आदमी के उसकी फाँस में होने की विवशता और छटपटाहट का पर्दाफाश करती है। (303)

माधव कौशिक ने *नवगीत की विकास यात्रा* नामक आलोचनात्मक ग्रंथ भी लिखा है। इसके अतिरिक्त दस गजल संग्रह भी लिखे हैं। वर्तमान में चण्डीगढ़ साहित्य अकादमी के उपाध्यक्ष है।

गणेश गम्भीर –

जन्म – 07 सितम्बर 1954

प्रमुख कृतियाँ :– *तुम्हारे नाम के अक्ष, फैंसला दो टूक, संवत बदले*

गणेश गम्भीर सामाजिक सरोकारों के प्रगतिशील गीतकार है। उनके गीतों में आज के वर्तमान समाज में आ रही विडम्बनाओं तथा कुरूतियों पर बात करने और चोट करने की अद्भूत कला है। उनका मानना है कि आज का समय पंजीवाद का है। बाकि सब उसके मनसबदार हैं। ऐसे संकट भरे समय में नवगीत की जिम्मेदारी और अधिक बढ़ गयी है। हिन्दी साहित्य के आलोचकों द्वारा नवगीत को खारिज किये जाने व उसकी उपेक्षा करने के विषय को उनका मत है कि आज कि आलोचना यांत्रिक हे। परन्तु नवगीत तो मानवीय संवेदना का काव्य है। और उसको यांत्रिक आलोचना नहीं समझ सकती है। उनका मानना है कि नवगीत में भारतीयता के प्रति आग्रह को भी आलोचकों द्वारा नापसंद किया जाता है।

आज के वर्तमान समय में नवगीत कि उपेक्षा पर वह कहते हैं कि इसका एक प्रमुख कारण नवगीतकार स्वयं भी है। वे स्वयं नवगीत को कभी किसी खाँचे में बैठाते है, कभी किसी अन्य खाँचे में कोई जनगीत कह रहा है, कोई समकालीन गीत, तो कोई अगीत के नारे लगा रहा है। इन सब बातों ने नवगीत का सर्वाधिक नुकसान किया है।

अवनीश त्रिपाठी –

जन्म : 27 दिसम्बर 1980

प्रमुख कृतियां :– *शब्द पानी हो गए, दिन कटे हैं धूप चुनते*

अवनीश त्रिपाठी के नवगीतों में परम्परा व बिम्ब का सुन्दर मिश्रण है। इनके नवगीत अपने रूप और गंध दोनों को समाहित किए हुए हैं और गीत व नवगीत की देहरी पर खड़े है। इनके नवगीत आधुनिक जनजीवन के अत्यंत करीब है। इनके

विषय में वरिष्ठ नवगीतकार मधुकर अष्ठाना का अपनी पुस्तक *दिन कटे हैं धूप चुनते* में कहना है :–

> नवगीत का भविष्य सुदृढ़ सम्भावनाओं के कारण उज्ज्वल है, जिसके भविष्य के कर्णधार अवनीश त्रिपाठी जैसे नवगीतकार ही बनेगें और तब अवनीश जी मार्गदर्शन बनेंगे। उनकी दृष्टि में नवगीत एक आस्था है, एक विश्वास है, एक जीवनान्द है, एक स्वतः अनुशासन है एक सच्ची देशभक्ति से पूर्ण नागरिकता है, एक संयम है, एक चिरन्तन सत्य है ओर एक ऐसी अस्मिता है जो समाज दर्शन का सुगठित स्वरूप है और भारतीय संस्कृति, संस्कार और मूल्य की प्रतिष्ठा जन चेतना में स्थापित करने के लिए कटिबद्ध है। (16)

इनके नवगीत समाज, संस्कृति व मानवीय गुणों में आ रहे परिवर्तन को दर्शाते हैं। महानगरीय चकाचौंध से आकर्षित युवा किस प्रकार मानवीय मूल्यों से विरक्त हो रहे हैं, इसका सुन्दर वर्णन अवनीश त्रिपाठी के गीतों में है।

अजय पाठक –

जन्म – 14 जनवरी, 1960 (बलिया उ.प्र.)

प्रमुख कृतियां – *यादों के सावन, जीवन एक जुएँ का बादल, आँखों का तारा नहीं हूँ, जंगल एक गीत है, महुए की डाल उतरा वसंत, गीत गाना चाहता हूँ, सुधियो के आर–पार, देहरी पर दीप रख दो, यक्ष–प्रश्न, बोधिवृक्ष पर, मन–बंजारा, किस नगर तक आ गए हम*

अजय पाठक प्रकृति के नवगीतकार है, परन्तु वह छायावादी कवियों की भांति मात्र उसके रोमानी पक्ष को अपने गीतों में स्थान नहीं देते हैं। वह आज के दौर के पर्यावरण का यथार्थ बताते हैं। उनके नवगीतों में आज प्रकृति के अवैज्ञानिक दोहन, अपने जंगलों व जमीन से दूर किये जा रहे आदिवासियों का दर्द, आधुनिकता के नाम पर वनो कि खनिज सम्पदा की बेतहाशा लूट और इससे

उत्पन्न होने वाले दुष्परिणाम है। नवगीत के लिए उनका कहना है – ''मैं नवगीत को हिन्दी कविता के आधुनिक स्वरूप के तौर पर देखता हूँ, जिसमें वैचारिकता और शिल्प विधान की ताजातरीन प्रविष्टियाँ हैं ही, आम आदमी के जीवन से जुडी गहरी अनुभूतियों को छन्दों में अभिव्यक्त करने का भरपूर सामर्थ्य भी है।''

डॉ. इन्दीवर ने इन्हें 21वीं सदी के प्रतिनिधि नवगीतकारों में से एक माना है। अपनी पुस्तक *नवगीत का दस्तावेज* में उनका मानना है कि – समय के बदलाव, विसंगति, विद्रूप, अजनबियत, आत्मनिर्वासन, घुटन, टूटन, पारिवारिक विघटन और व्यक्ति की स्वच्छन्दता तथा मूल्यों के निषेध की चिन्ता अजय पाठक में बखूबी अभिव्यक्त होती है। वही डॉ. ओमप्रकाश सिंह का अपनी पुस्तक *नयी सदी के नवगीत भाग–5* में कहना है– "अजय के नवगीत विचार–प्रधान और प्रयोगधर्मी है। वे अपने समय के यथार्थ को समाज के आईने में देखकर जो चित्र प्रस्तुत करते है, उनमें जीवन–मूल्यों के प्रति आस्था है, संघर्ष और युगबोध है।"(14)

अजय पाठक ने अपने गीत संग्रहों के द्वारा नवगीत साहित्य के भण्डार को बढ़ाया है। इनके 17 नवगीत संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त 'नये पाठक' नामक पत्रिका के सम्पादक भी है। वर्तमान में विधिक माप विज्ञान छत्तीसगढ़ में निदेशक पद पर कार्यरत हैं।

यश मालवीय –

जन्म – 10 जुलाई, 1962 (कानपुर, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *सुनो सदाशिव, उडान से पहले, एक चिडिया अलगानी पर एक मन में, बुद्ध मुस्कुराए, एक आग आदिम, कुछ बोलों चिड़िया, रोशनी देती बीडियाँ, नींद कागज की तरह, समय लकडहारा*

यश मालवीय को नवगीत/गीत का संस्कार, अपने पिता उमाकान्त मालवीय से मिला। घर में ही साहित्य का साथ मिल गया। इनके प्रथम संग्रह *सूनो सदाशिव* (1994), के सभी 80 गीतों ने इनकी काव्य प्रतिभा को साहित्य के पटल पर रखा।

इनके गीत जीवन की अंतरंगता के साथ ही, समाज में व्याप्त विसंगतियों का यथार्थ चित्रण है। इनकी भाषा के लिए माधव कौशिक ने अपनी पुस्तक *नवगीत की विकास यात्रा* में लिखा है –

> यश मालवीय की कुछ कविताओं में व्यंग्य की धार बहुत तीखी है। भरपुर खुरदरी भाषा किन्तु गहरी आत्मीयता तथा तरला से भरपूर इसी भाषा के दम पर यश मालवीय ने समय के तमाम संकटों को बखूबी बयान किया है। (55)

डॉ. इन्दीवर इन्हें शम्भुनाथ सिंह और उमाकान्त मालवीय की परम्परा और नैरन्तर्य का नवगीतकार मानते हैं। इनके रचना वैशिष्ट्य पर वह अपनी पुस्तक *नवगीत का दस्तावेज* में लिखते हैं –

> यश मालवीय की निर्मिति जिस परिवेश में हुई, स्वाभाविक है कि उसका असर उनके नवगीतों पर पड़ा। यश नवगीत की लोक संवेदना, लोक संस्कृति, जातीय बोध, भारतीयता, वैज्ञानिकता यांत्रिकता, नगरीकरण आदि से जितना प्रभावित होते हैं, उससे अधिक वे समकालीन बोध, युग सापेक्षता और आधुनिकता और अस्तित्ववाद को कभी चुनौती देती और कभी उससे सामजस्य बैठाती उत्तर आधुनिकता के परिणामों से। ..... इस प्रकार उनकी रचनाएँ यथार्थ से भी आगे 'अति यथार्थ' की समझ उत्पन्न करती है। अति यथार्थ (हाइपीरियल) की यह संस्कृति उदारवादी, वैश्विक बाजारवाद में विकसित होती है। (324)

डॉ. ओमप्रकाश सिंह इन्हें नये प्रतीकों एवं बिम्बों के शिल्पी नवगीतकार मानते हैं।

गीत/नवगीत के एक महत्वपूर्ण पहलु, क्या मंचीय गीत एवं साहित्यिक गीत अलग–अलग है पर यश मालवीय का स्पष्ट कथन है कि जब उत्कृष्ट गीतकारो ने मंच पर जाना छोड़ दिया, तो उस जगह को भरने के लिए किसी को तो आना था,

फिर हम उनके गीतों के स्तर को दोष क्यों दे। वर्तमान में ए.जी.यू.पी. इलाहाबाद में कार्यरत है।

विनय मिश्र –

जन्म – 12 अगस्त 1966 (देवरिया, उ.प्र.)

प्रमुख कृति – *समय की आँख नम है।*

हिन्दी साहित्य की छांदसिक विधा में लिखने वाले व उसके लिए संघर्ष करने वाले साहित्यकार का नाम है– विनय मिश्र। यही कारण है कि उन्होंने गीत के अतिरिक्त गजल (*सच और है, तेरा होना तलाशु),* दोहा (*पानी में आग)* व कविता (*सूरज तो अपने हिसाब से निकलेगा*) जैसी अन्य विधाओं में भी उत्कृष्ट साहित्य की रचना की है।

इनके विषय में इनके नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* की भूमिका में नचिकेता ने लिखा है कि ''आज के बेहद मुश्किल समय में कोई रचनाकार अगर गीत लिखने और उसे पुस्तकाकार प्रकाशित करवाने की जहमत उठाता है तो यह उसकी अपूर्व गीत निष्ठा का परिचायक और साहस का काम होगा।'' (19) इनका गीत संग्रह *समय की आँख नम है* (2014) इन शब्दों पर खरा उतरता है। इनके गीतों में सच्चाई है और उस सच को व्यक्त करने का साहस भी। यही कारण है कि अभी तक मात्र एक गीत संग्रह प्रकाशित होने के पश्चात भी इनका नाम अग्रणी गीतकारों में लिया जाता है।

डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने इनके विषय में *नयी सदी के नवगीत भाग–5* में लिखा है– "विनय मिश्र शोषित समाज की पीड़ा, अभाव और आक्रोश की धरती पर नवगीतकार होकर खडे हैं।" वे नवगीत को गीत का नया संस्करण मानते है। वे उन्हें समय की भूमिका पर हरापन बोने के नये संकल्पों के साथ अवतरित करते है। इस विषय में स्वयं विनय मिश्र का कहना है – ये गीत सामाजिक हलचलों, उसकी बेचैनियों, उसकी आंतरिक टकराहटों, संघर्षों और सपनों की उपज थे। दरअसल

नवगीत गीत की शाश्वत यात्रा का वह पडाव है जहां कवि स्वयं को मौसम के अनुरूप नये परिधानों में सुसज्जित करता है।

अनेक ग्रंथों के अतिरिक्त *जहीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन* (आलोचना), अलाव का गजल विशेषांक व *पलाश बन दहकते है* (मंजु अरूण की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन) का संपादन भी किया है। वर्तमान में अलवर (राजस्थान) में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत व वहीं पर निवास।

1.4.4 नवगीत आलोचना –

साहित्य जगत यदि साहित्यकारों की लेखनी का ऋणी है, तो वह आलोचकों एवं समीक्षकों की समीक्षा का भी उतना ही ऋणी है। किसी कृति को साहित्य के विभिन्न मापदण्डों पर कसने का कार्य, आलोचक ही करता है। हिन्दी साहित्य में आलोचना का समृद्ध संसार रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह, गणपतिचन्द्र गुप्त, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा आदि विभुतियों ने हिन्दी साहित्य की आलोचना को समृद्ध किया है। 1950 के आसपास तक साहित्य की समस्त विधाओं को आलोचक समान रूप से देखते थे और उन पर अपनी टिप्पणी करते थे। परन्तु निराला के द्वारा दिये गये 'मुक्त छंद' को जब कवियों ने, कविता को छन्द मुक्त करने के लिए प्रयोग में लाना शुरू कर दिया, तो आलोचना भी उस राह पर ही चल पड़ी। मूलतः इसके कारण में प्रथम तो हैं, उस समय के श्रेष्ठ कहे जाने वाले और वास्तविक रूप से श्रेष्ठ सभी कवियों ने मुक्त छन्द को पकड़ लिया। मुक्त छन्द श्रेष्ठता का पैमाना बन गया। तो आलोचक भी श्रेष्ठ की ओर ही मुड़ गया। दूसरा कारण शायद छन्द युक्त कविता, गीत, दोहो, गजल को दोयम दर्जे का मानना रहा है। आलोचकों ने यह मान लिया कि आज के आधुनिक जीवन की जटिलताओं को इसमें व्यक्त नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार का साहित्य मात्र मनोरंजन व आमजन के मन बहलाव का साधन मात्र है। इसलिए इस साहित्य को आलोचना के मापदण्डों पर तोलना बेकार है। तीसरा कारण थोड़ा विवादास्पद है। छन्द युक्त साहित्य के साहित्यकार आलोचकों पर यह तोहमत लगाते है कि आज के आलोचक छन्द, लय, ताल की कठिनाई से बचना चाहते हैं।

वह सीधी सपाट भाषा में लिखी कविताओं में अर्थ के नाम पर, आलोचना करके अपने कार्य की इति श्री कर लेते हैं। यह आरोप पूर्णतः सही न हो, परन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है।

नवगीत का यह दुर्भाग्य रहा है कि जब हिन्दी साहित्य में मुक्त छन्द की बहार आयी तभी इसका जन्म हुआ। यह नई कविता के विरोध में नहीं था, परन्तु नई कविता ने इसे अपना विरोधी माना और हाशिये पर डालने का प्रयत्न किया। नवगीत व आलोचकों के सम्बन्धों में आई दरारों का सर्वप्रथम दर्शन चन्द्र देव सिंह द्वारा सम्पादित 'पाँच जोड़ बाँसुरी' मिलते हैं। इसकी भूमिका मे वह लिखते हैं– इस संकलन की भूमिका लिखने का दायित्व अपने ऊपर लेते हुए नामवर जी ने सम्पादन का भार मुझ पर छोड़ दिया था।'' (7) परन्तु इसके पाँच–छ वर्ष के बाद भी उन्होंने इस कार्य को नहीं किया। जबकि मूलतः यह योजना उनकी ही थी। उन्होंने लिखा है–

> मैं आज भी यह समझ पाने में असमर्थ हूँ कि आखिर योजना बनाते हुए जो ललक, जो सजगता नामवर जी में थी, वह क्यों और कैसे गायब हो गयी। यदि नयी कविता से अलग हटकर गीत जैसी 'नॉन–सीरियस' विधा के विषय में कुछ लिखने में उन्हें झिझक है, तो आखिर योजना तो उन्हीं के द्वारा प्रस्तुत की गयी थी और क्या तब उनका मूड कुछ और था ? (8)

इसी को स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है – ''नामवर जी की एक धारणा का पता मुझे अच्छी तरह है कि 'कहने से जबान नहीं कट जाती लेकिन लिखने से हाथ कट जाता है।'' (8) और आगे के आलोचकों ने भी इस 'नॉन सीरियस' विधा के लिए कुछ लिखकर अपने हाथ नहीं कटवायें।

नवगीत और आलोचकों के सम्बन्धों को व्यक्त करता गुलाब सिंह का यह व्यक्तव्य अनुकरणीय है। उन्होंने कुमार रविन्द्र द्वारा सम्पादित *नवगीत के विविध आयाम* में अपने आलेख में लिखा है –

> छायावाद के बाद की हिन्दी कविता के वैविध्य को साहित्य इतिहास की दृष्टि से सँजोना, परखना और बिना किसी लगा–लपेट कुछ कहना अभी तक नहीं हो पाया है। यद्यपि कम कहा लिखा नहीं गया है, पर निरपेक्ष न होने से निर्विवाद नहीं है। डॉ. नगेन्द्र ने कहा – 'छायावाद के बाद की हिन्दी कविता में रूचि ने रमण नही किया है। (उन्ही की अध्यक्षता में दिल्ली की नवगीत गोष्ठी में व्यक्त विचार) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रायः चुप रहे, नन्द दुलारे वाजपेयी एक सीमा तक ही बोले, डॉ. राम विलास शर्मा ने भी कोई खास महत्व नहीं दिया। लक्ष्मीकान्त वर्मा, डॉ. नामवर सिंह, अशोक वाजपेयी, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे समीक्षकों या कवि–समीक्षकों ने छान्दसिक कविता के प्रति उदासीनता ही दिखाई। अधिकांश समीक्षकों को मधुमेह में चीनी की तरह साहित्य में गीत से परहेज है, जिन्हें गीत से दुःख नहीं है, वे नवगीत नाम से दुखी है। दिल्ली की उसी गोष्ठी में विजयेन्द्र स्नातक ने कहा– गीत की ही बात होनी चाहिए। नाम का विशेष महत्व नहीं है। (142–143)

इस विवेचन में गुलाब सिंह ने आलोचकों की समस्त मनोदशा का सुन्दर वर्णन कर दिया है। कमावेश हिन्दी साहित्य में वर्तमान में भी यही स्थिति है। परन्तु जैसा कि कहा जाता है, 'जहाँ एक रास्ता बंद होता है, वहीं से दूसरा खुलता है।' इसको आधार बनाकर, स्वयं नवगीतकार आलोचना के क्षेत्र में उतर गये। भले ही यह कार्य विरोधाभास लगे, परन्तु नवगीत को इससे बहुत फायदा मिला और आलोचना के क्षेत्र में जो एक शून्य उभर गया था, उसको भरने का कार्य इस प्रवृत्ति ने किया आज इन्हीं कि देन है कि नवगीत में अनेक सार्थक आलोचना की पुस्तकें लिखी जा रही है। वर्तमान में नवगीत के कुछ प्रमुख आलोचकों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।

राधेश्याम बंधु –

जन्म – 10 जुलाई, 1940 (पडरौना, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *नवगीत और उसका युगबोध, नवगीत के नए प्रतिमान, नवगीत का लोकधर्मी सौंदर्य बोध*

राधेश्याम बंधु नवगीत के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है, जो यह मानते है कि नवगीत मानव की बेहतरी और मुक्तिकामी चेतना के कारण ही संघर्षशील आम आदमी का हमसफर बन पाया है। उनका निर्मल शुक्ल द्वारा सम्पादित *शब्दायन* में कथन है–

> नवगीत ने विशेष रूप से आजादी के बाद भारतीयों में आयी नैराश्य की भावना को अपनी अन्तर्वस्तु के रूप में आत्मसात करके उसको अभिव्यक्त करने के लिए मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के पारिवारिक बिखराब, टूटन, बेकारी, गरीबी, भूखमरी को भी अपना विषय बनाया और भ्रष्ट व्यवस्था तथा राजनीति द्वारा पैदा की गयी अराजकता एवं शोषण के युगीन संदर्भों को अपने गीतों में व्यक्त करने की सार्थक भूमिका निभाई। (62)

आलोचकों द्वारा नवगीत से दोगले व्यवहार के साथ ही वह नवगीत में ही उत्पन्न हो गयी, अनेक विचारधाराओं को भी वह नवगीत के भविष्य के लिए खतरनाक मानते हैं। साहित्य के क्षेत्र में उनके कार्य के रूप में उनके नवगीत संग्रह *बरसो रे घन, प्यास के हिरन, एक गुमसुम धूप, नदियाँ क्यों चुप हैं* आदि महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त एक अनियतकालीन साहित्यिक पत्रिका 'समग्र चेतना' का सम्पादन भी करते हैं। महाप्रबंधक दूरसंचार के पद से सेवानिवृत्ति के पश्चात स्वतंत्र लेखन। वर्तमान में यमुना विहार दिल्ली में निवास।

नचिकेता –

जन्म – 23 अगस्त 1945 (केउर, जहानाबाद, बिहार)

प्रमुख कृतियाँ – *गीत वसुधा, समकालीन गीत–कोश, गीत रचना की नयी जमीन*

नवगीत को जनगीत कहने में विश्वास रखने वाले व्यक्तित्व है – नचिकेता। माधव कौशिक ने इन्हें –'नवगीत का प्रखर जनवादी स्वर' कहा है। इनके गीतों पर राजेन्द्र प्रसाद सिंह, ओम प्रभाकर, रमेश रंजक एवं नईम जैसे गीतकारों का प्रभाव है। इन पर मार्क्सवादी चिन्तन का भी प्रभाव है। डॉ. मनोज सोनकर का कथन है– "नचिकेता ने अपने आपको 'जनवादी गीतकार' के रूप में स्थापित कर लिया है। उन्होंने इस भ्रम को भी तोड़ दिया है कि गीत केवल क्षणवादी संवेदना और वैयक्तिक चेतना का ही वाहक हो सकता है।" अनेक गीत–संग्रहों का प्रकाशन हो चुका है।

गीत के क्षेत्र में इनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान है, *गीत वसुधा* एवं *समकालीन गीतकोश* का सम्पादन। समकालीन गीतकोश की 83 पृष्ठों की भूमिका में नवगीत के समग्र को समाहित किया गया है। इसमें उन्होंने गीत की पहचान, गीत का रचना–विधान, गीत व कविता का अंतसंबंध, ऐतिहासिक विकास यात्रा, नवगीत की पदचाप, नवगीत का उदय, नवगीत की रचना–दृष्टि व नवगीत के विकास के विविध सोपान नामक अनेक अध्यायों के माध्यम सम्पूर्ण नवगीत यात्रा को समाहित किया है।

आलोचक इन्हें नवगीत व जनगीत के बिना मतलब विभाजक के रूप में मानते है तथा इस आधार पर इनके कार्य की निदा करते हैं। इसके बावजूद नवगीत के आलोचकों में, नचिकेता का नाम सबसे महत्वपूर्ण आलोचकों में लिया जायेगा। वर्तमान में यांत्रिक अभियंता के पद से सेवानिवृत होकर, कृषि कार्य के साथ ही स्वतंत्र लेखन करते हुए पटना (बिहार) में निवास।

वीरेन्द्र आस्तिक

जन्म – 15 अगस्त, 1947 (रूरवाहार, कानपुर, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *धार पर हम–एक (संपादन), धार पर हम–दो (संपादन)*

वीरेन्द्र आस्तिक विगत आधी सदी से काव्य साधना में संलग्न है। प्रारम्भ में इनकी रचनाएँ वीरेन्द्र बाबू और वीरेन्द्र ठाकुर के नामों से भी छपती रही है। अनेक

नवगीत–संग्रहों का प्रकाशन हो चुका है। जिनमें महत्वपूर्ण है– *परछाई के पाँव, वीरेन्द्र आस्तिक के गीत, आकाश तो जीने नहीं देता, दिन क्या बुरे थे* आदि वीरेन्द्र आस्तिक के रचनाकर्म में परम्परा और आधुनिकता का अद्भूत समाहार मिलता है। उनके व्यक्तित्व की सादगी में सूक्ष्मता का आकर्षण है। वीरेन्द्र आस्तिक एक मौन साधक की तरह कार्य करते हैं।

काव्य समीक्षा के क्षेत्र में उनकी एक विशिष्ट पहचान है। धार पर हम (एक व दो) का संपादन कार्य, इनकी आलोचना के क्षेत्र में पहचान का आधार है। नवगीत को परिभाषित करते हुए *धार पर हम भाग–2* में वह कहते हैं–

> नवगीत केवल यथार्थ चेतना ही नहीं होता, उसमें त्रिकाल का वाग्यमन चलते रहना आवश्यक होता है। एक सहज नवगीत गीत बुनावट में आवश्यकतानुसार बिम्ब–प्रतीक और सपाट–बयानी का संतुलन अपेक्षित है किन्तु लय–छन्द और प्रास उसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। (38)

रचनाकार एवं आलोचक के एक ही होने को आगे वह स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– ''प्रत्येक रचनाकार में एक आलोचक भी होता है। एक आलोचक पहले एक रचनाकार ही होता है। (46)

डॉ. ओमप्रकाश सिंह इन्हें गीतकारों में गीतकार तथा नवगीतकारों में नवगीत कवि मानते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन कार्य करते हुए, कानपुर में निवास।

डॉ. निर्मल शुक्ल –

जन्म – 3 फरवरी 1948 (पूरब गाँव, बक्शी का तालाब, लखनऊ, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ– शब्दपदी, *नवगीत : नयी दस्तके, शब्दायन, नवगीत : एक परिसंवाद*

नवगीत के क्षेत्र में आलोचकों की कमी तथा कथाकथित आलोचकों द्वारा इसे अछूत करार देने के विरोध में, एक रचनाकार के आलोचक बनने का साक्षात उदाहरण है – डॉ. निर्मल शुक्ल। शायद वह विरेन्द्र आस्तिक के इस कथन से बहुत अधिक प्रभावित है कि – प्रत्येक रचनाकार में एक आलोचक भी होता है। एक आलोचक, पहले एक रचनाकार होता है। इसलिए पहले उन्होंने – *अब तक रही क्वाँरी धूप, अब है सुर्ख कनेर, एक और अरण्यकाल, नील वनों के पार, भोजपत्र के घाव* जैसे उत्कृष्ट नवगीत संग्रहों को लिखा। वह साहित्य में रसात्मकता और संवेदनशीलता ही को कविता के आधार मानते हैं। नवगीत के मूल्यांकन के लिए वह *शब्दायन : दृष्टिकोण एवं प्रतिनिधि* में कहते हैं–

> नवगीत का मूल्यांकन उसकी कालबद्ध सम्प्रेषणीयता अथवा समकालीन होती हुई रचनाधर्मिता में समन्वित होती है। नवगीत, समय एवं काल की स्थिति का दर्पण है, समाज के यथार्थ को उद्घाटित करता है। आधुनिक नवगीत में बौद्धिक रचनात्मकता है, बिखराब नहीं, सार्थकता है, भटकन नहीं, नवगीत सोद्देश्य है, तिलस्मी नहीं, नवगीत गतानुगतिक एवं निरापद है, आकस्मिक एवं दिशाहीन नहीं, नवगीत क्रमागत समकालीन होते हुए सार्वजनिक घटनाक्रम है, तर्कसम्मत तथा तर्कसंगत भी। (13)

निर्मल शुक्ल को डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने भाषा–संस्कृति का चितेरा कहा है। इसी भाषा संस्कृति की सेवा करते हुए, सेवानिवृति के पश्चात स्वतंत्र लेखन और उत्तरायण पत्रिका के सम्पादन का कार्य कर रहे हैं।

रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' –

जन्म – 5 जुलाई 1949 (तिलोकपुर, फिरोजाबाद, उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *संस्कृति और साहित्य, समकालीन हिंदी गीतिकाव्य : संवेदना और शिल्प*

रामसनेही लालशर्मा के कृतित्व को बयान करता, डॉ. ओमप्रकाश सिंह की पुस्तक *नयी सदी के नवगीत भाग–5* यह कथन दृष्टव्य है –

> यायावर मानव–मूल्यों के पारखी नवगीतकार है, जो नागरीय संस्कृति का कोना–कोना झांक आये है परन्तु इन्हें अपने गांवों की भूख, गरीबी और सुरक्षा की चिंता कम नहीं रहती। उनके नवगीत अभाव भरी जिंदगी के सत्य को उजागर कर शोषको तथा व्यवस्थाओं को फटकार लगाते नजर आते हैं।'' (22)

यायावर के नवगीत संग्रहों *गलियारे गंध के, मेले में टिटहरी* व *हाँफता अलाव* को पढ़ने के बाद उनका यह कथन शत–प्रतिशत सही नजर आता है। परन्तु यह कथन रामसनेही लाल शर्मा के मात्र एक साहित्यिक पक्ष को उजागर करता है। उनका एक और महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्य क्षेत्र है– आलोचना। नवगीत संग्रहों की भांति ही उनका आलोचना का कार्य भी उत्कृष्ट है। साहित्य एवं साहित्यकारों के लिए यह महत्वपूर्ण होता है कि उनकी कृतियों का सही मूल्यांकन हो। इस प्रकार की दृष्टि रामसनेही लाल में मौजूद है। डॉ. ओमप्रकाश सिंह का *नयी सदी के नवगीत भाग–5* में पुनः मानना है कि –

> अब नवगीतों में लोक जीवन की त्रासदियाँ, चुनावी रणनीतियों से उत्पन्न सामाजिक विघटन, गुम होती पगडंडियाँ, सर्वग्रासी सड़के, हरियाली निगलते धुएँ और दैत्याकार बाजारीकरण तथा वैश्वीकरण की दुःखद परिणतियों के चित्र उभरने लगे हैं। (23)

वर्तमान समय की कविता पर वह करारा प्रहार करते हुए *नवगीत के विविध आयाम* में वह लिखते हैं–

> नई कविता में सारे पुराने प्रतिमान भावात्मकता, छंदोबद्धता, लय, तुक, सम्प्रेषणीयता आदि बदल गये, उनके स्थान पर वैचारिक प्रखरता छन्दमुक्तता, गद्यात्मकता, लयविहीनता आदि ने ले ली और कविता

> 'जन–जन' के स्थान पर एक खास बुद्धि सम्पन्न वर्ग के 'आस्वाद' की चीज बन गई। (218)

अपने गीतों एवं आलोचना को आज भी जन–जन का बनाने का प्रयास करते हुए, प्राध्यापक के पद से सेवानिवृति के बाद स्वतंत्र लेखन कार्य कर रहे हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद –

जन्म – 6 सितम्बर 1952 (बराह कलाँ, जींद हरियाणा)

प्रमुख कृतियाँ – *हिन्दी नवगीत : उद्‌भव और विकास*

समकालीन कविता के समग्र मूल्यांकन में हो रहे पक्षपात व भेदभाव से क्षुब्ध होकर राजेन्द्र गौतम ने *नवगीत के विविध आयाम* में अपने लेख में लिखा है –

> पिछले दो दशकों से भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा जिस प्रकार साम्प्रदायिक कठमुल्लेपन की जकड़न में आया है, कुछ वैसी ही साम्प्रदायिकता हिन्दी आलोचना–कर्म में–एक दूसरे अर्थ में ही सही–क्रमशः घुसती चली आई है। छान्दसिक विधाओं के साथ हो रहे अन्याय पर वह लिखते हैं – गत तीन–चार दशकों में नवगीत, गजल एवं अन्य छांदसिक रूपों में जो काव्य–रचना हुई है, उसे बहुत खोखले तर्कों के आधार पर नकारा गया है। यह आदर्श वाक्य गोष्ठी शूर आलोचकों के मुख से अक्सर सुनते हैं कि छंदहीन और छांदसिक कविता में कोई अलगाव नहीं है, दोनों का समान महत्व है पर जब मूल्यांकन एवं सन्दर्भित करने की बात आती है तो यह आदर्श पीछे छुट जाता है। (130)

हिन्दी नवगीत : उद्‌भव व विकास नवगीत की आलोचना क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण है, इसमें उन्होंने जहाँ प्रवृतिमूलक इतिहास विभाजन किया है, वहीं नवगीत के उद्‌भव का भी विश्लेषण किया है। इस पुस्तक के महत्व को रेखांकित

करने हेतु माधव कौशिक का यह कथन ही पर्याप्त है– ''आलोचना पुस्तक *हिन्दी नवगीत : उद्भव व विकास* आज भी इस विधा की दशा व दिशा को समझने के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ की तरह मानी जाती है।"

डॉ. राजेन्द्र गौतम ने अनेक नवगीत संग्रह भी लिखे हैं। *बरगद जलते हैं, पंख होते हैं, समय के, गीत पर्व आया है* आदि इनके प्रमुख नवगीत संग्रह है, वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्यरत है।

डॉ. इन्दीवर –

जन्म – 20 मार्च 1953 (हरिहरपुर, जौनपुर उ.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ – *नवगीत में लोक चेतना, नवगीत का दस्तावेज, गीत, नवगीत और शंभुनाथ सिंह, शंभुनाथ सिंह साहित्य समग्र*

डॉ. इन्दीवर की आलोचना व समीक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त पैनी दृष्टि है। छठे दशक में नवगीत के उदय के साथ ही छांदसिक विधा के साथ हो रहे अन्याय को रेखांकित करते हुए वह अपनी पुस्तक *नवगीत का दस्तावेज* में लिखते हैं–

> हिन्दी कविता के इतिहास में, बीसवीं सदी के छठे दशक की एक कुग्राहिता के प्रति प्रबुद्ध मानस सदैव चौंकता रहेगा। यह प्रश्न उसके मन में बार–बार कौंधेगा, क्यों आखिर क्यों भारतीय काव्य परम्परा के छान्दस नैरन्तर्य को नकार दिया गया ? क्यो गीत लिखना पिछडेपन की निशानी मान ली गई ? क्यों आयातीत आधुनिकता की भित्ती पर कविता को पाठ्य और केवल पाठ्य होने का नारा दिया जाने लगा ? इस भेदभाव का कारण बताते हुए वह आगे लिखते हैं– शायद 'तारसप्तक' से लेकर आज तक के अधिकांश कवि जो इस राह के राही है या रहे है, उनमें जीवन के जटिल यथार्थ को, आधुनिक वैज्ञानिक बौद्धिकता को छन्दों में बाँधने की या उसके बन्धन को

> ढीला कर अभिव्यक्ति में लयात्मक 'कण्टेण्ट' लाने की क्षमता ही नहीं थी। (फ्लैप से)

इस प्रकार उनका मानना है कि छान्दसिक विधाओं के प्रति दुराग्रह, मुक्त छन्द के आलोचकों का अल्प ज्ञान है। जिसके कारण से उन्होंने अपने आलोचना ग्रंन्थों में इनकों स्थान नहीं दिया। इससे पैदा हुए शून्य की भरपाई, डॉ. इन्दीवर की आलोचना शक्ति करती है। आलोचना शक्ति नवगीत के प्रति हो रहे अन्याय को, समाप्त करने का प्रयास करती है। प्राचार्य पद से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात, स्वतंत्र लेखक के रूप में, वह इस शून्य को भरने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि युगबोध, किसी भी काल खण्ड के साहित्य का महत्वपूर्ण अंग होता है। 21वीं सदी का नवगीत अपनी लम्बी यात्रा के पश्चात, साहित्य की मुख्यधारा में अपना स्थान बनाने में सफल हो रहा है। 21वीं सदी में आलोचना के क्षेत्र में भी नवगीत अपना स्थान बनाने में कामयाब रहा है। नवगीत का 21वीं सदी में जो रूप निकलकर आ रहा है, उसने आलोचको को विवश किया है कि वह, अपने आलोचना क्रम में नवगीत को भी स्थान दे।

अध्याय 2

21वीं सदी के नवगीतों में सामाजिक बोध

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के जन्म के साथ ही, उसके जीवन पर सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। वह सामाजिक ताने–बाने का एक अंग बनकर, उस व्यवस्था में अपना स्थान बना लेता है। समाज में व्याप्त सामाजिक प्रतिमान, समय के साथ बदलते रहते हैं। इन बदलावों के कारण समाज पर, अच्छे एवं बुरे दोनों प्रकार के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। साहित्यकार भी समाज का एक अंग होता है, वह भी इन परिवर्तनों से होने वाले प्रभाव को अपने साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा, समाज के विभिन्न आयामों पर अपने विचार व्यक्त करता है। समाज के एक अंग के रूप में, वह सामाजिक बोध को अपने साहित्य में परिलक्षित करता है।

2.1 नवगीतों में सामाजिक यथार्थ का बोध–

हमारे आसपास के समाज में जो घटित हो रहा है, वह ही उसका यथार्थ है। उसे ही हम सामाजिक यथार्थ कह सकते हैं। यहाँ यह महत्वपूर्ण नहीं है कि वह घटना या क्रिया समाज के लिए लाभदायक है; अथवा हानिकारक। किसी भी प्रकार की क्रिया या घटना का होना आवश्यक है, अच्छे व बुरे का विश्लेषण उसके पश्चात किया जा सकता है।

सामाजिक यथार्थ ही मनुष्य को समाज में भागीदारी प्रदान करता है। लेखक भी समाज का अंग होता है। वह समाज के एक सदस्य के रूप सामाजिक क्रियाओं में हिस्सा लेता है और उसमें अपना योगदान देता है, परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण कार्य वह उस समय कर रहा होता है, जब वह समाज में हो रहे क्रियाकलापों को एक पर्यवेक्षक की भाँति देखता है और फिर उसे अपने साहित्य में उतारता है। वह समाज के यथार्थ को अपने नवगीतों के माध्यम से व्यक्त करता है। यहाँ वह समाज के हित और अहित को भी व्यक्त करता है। वह मात्र एक पर्यवेक्षक न होकर, एक सचेतक का कार्य भी कर रहा होता है। सामाजिक यथार्थ को साहित्य में व्यक्त करने के अनेक प्रकार होते हैं, परन्तु नवगीतकार महत्वपूर्ण रूप से दो प्रकारों का प्रयोग करते है। प्रथम तो सीधी–सपाट भाषा में उसको व्यक्त करना, दुसरा बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से उसको व्यक्त करना।

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में अनेक समस्याएँ है। इनको व्यक्त करते हुए, सभी नवगीतकार अलग–अलग प्रकार से इसे व्यक्त करते हैं। इसके उदाहरण हेतु देखे तो वर्तमान समाज में अकेलेपन की समस्या बहुत विकराल है। संयुक्त परिवारों का अब अस्तित्व समाप्त सा हो गया है। इस भाग–दौड़ से भरी जिन्दगी मे मनुष्य अपने लिए समय नहीं निकाल पा रहा है, वह दूसरों को समय कहाँ से दे।

नवगीतकारों की दृष्टि भी इस ओर गई है और उन्होंने अपने नवगीतों में इसको स्थान दिया है। वरिष्ठ नवगीतकार माहेश्वर तिवारी अपने नवगीत संग्रह *'नदी का अकेलापन'* में इस प्रकार लिखते हैं –

साथ... साथ

बढ़ता है उम्र के

अकेलापन । (13)

इस काव्य संग्रह के नाम में ही 'अकेलापन' शब्द वर्तमान समय के संकट को व्यक्त कर रहा है। माहेश्वर तिवारी इस नवगीत में लिखते हैं कि मनुष्य की उम्र के साथ–साथ उसका अकेलापन भी बढ़ जाता है। उसके अंदर, बाहर बैठे हुए लोग उसे छोड़कर जा रहे हैं। उनके जाने से जो सुनापन या रिक्त स्थान पैदा होता है, वह ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य की उम्र के साथ–साथ उसके अकेलेपन को भी बढ़ा रहा है।

इसी अकेलेपन को एक दूसरे आयाम के साथ गणेश गम्भीर ने अपने नवगीत संग्रह *'संवत बदले'* में इस प्रकार से लिखा है –

साथ–साथ चल रहे हैं लेकिन

सबकी अलग–अलग यात्राएँ (30)

यहाँ पर उन्होंने अकेलेपन को जिस प्रकार से व्यक्त किया है, वह और भी पिड़ादायक स्थिति है। यहाँ पर सब साथ–साथ तो हैं, परन्तु फिर भी अकेले हैं। आपके चारों ओर मनुष्यों की भीड़ है, परन्तु फिर भी आप अकेले है। सब साथ–साथ चल रहे है, फिर भी यह यात्रा अकेले की है। यहाँ पर समाज के

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'एकला चालो रे' कि अवधारणा का वर्णन है। इस को अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह दिनकटे हैं धूप चुनते में इस प्रकार लिखते हैं –

'कर्मयोग निष्काम नहीं है

कलयुग की अपनी परिभाषा,

स्वस्य हेतवे जीवन दर्शन

स्वर असर सबकी यह भाषा (103)

सामाजिक यथार्थ कोई निश्चित या ठोस वस्तु नहीं हैं। यह सदैव परिवर्तनशील है। जैसे–जैसे समाज अपने अन्दर परिवर्तन लाता है, उसी अनुपात में समाज का यथार्थ भी परिवर्तित हो जाता है। कवि इस सब से जुड़ा रहता है, वह अपने आप को सदैव समाज के यथार्थ से जोड़कर, अपने काव्य का सृजन करता है। यह दोनों ओर होने वाली क्रिया है। अनेक बार ऐसा होता है कि साहित्य सामाजिक यथार्थ में परिवर्तन कर देता है। विश्व की अनेक क्रान्तियों में साहित्य का अमूल्य योगदान रहा है। भारतवर्ष में भी अंग्रेजी शासन से मुक्ति के संग्राम में साहित्य का अमूल्य योगदान रहा है।

2.2 नवगीतों में सामाजिक व्यवस्था की संकीर्णता का वर्णन–

भारतीय समाज के मूल आधार 'वसुधैवकुटुम्बकं', 'सर्वजन हिताय', 'आपसी प्रेम' और 'सभी को सम्मान प्रदान करने' आदि गुण रहे हैं। जैसा कि पूर्व में कहा गया है 'समाज परिवर्तनशील होते है। परिवर्तन सदैव लाभकारी हो ऐसा भी नहीं है, यही कारण है कि वर्तमान समाज में एक संकीर्णता का भाव उत्पन्न हो गया है। यह संकीर्णता हमें प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त नजर आती है। इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं, परन्तु यह अब धीरे–धीरे समाज का एक अभिन्न अंग बन गयी है।

यदि हम समाज के मूल तत्त्वों को समझने का प्रयास करें तो, 'आपसी सम्बन्ध' ही वह तत्त्व बनकर उभरता है, जिस पर समाज नामक इकाई विद्यमान है। इसी कारण से अनेक विद्वान यह मानते हैं कि "समाज सम्बंधों का जाल है।"

आपसी सम्बंध मिलकर ही एक समाज का निर्माण करते हैं। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ने इन सम्बंधों को ही सर्वप्रथम नष्ट करने का कार्य किया है।

समाज में रिश्ते समाप्त हो रहे हैं, इस पीड़ा को माहेश्वर तिवारी अपने नवगीत संग्रह '*नदी का अकेलापन* में लिखते हैं –

है नहीं, महसूस होती

हवाओं में गंध

बिना आहट

टूटते ही

जा रहे सम्बंध (30)

वर्तमान युग में आ रहे बदलावों ने, हमारे रिश्ते–नातों को वास्तव में बिना आहट के ही समाप्त कर दिया है। समाज की सबसे छोटी इकाई या प्रथम इकाई हम परिवार को मानते हैं, परन्तु वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ने सबसे ज्यादा चोट इसी व्यवस्था/अंग पर पहुँचाई है।

सम्बंधों की समाप्ति घरों से ही प्रारम्भ हुई है, जो घर कभी मन्दिर हुआ करते थे, उसका वर्णन करते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव अपने संग्रह *रथ इधर मोड़िए* में लिखते हैं–

सच कहें

घर हमेशा मुझे एक मंदिर लगा (27)

वह घर अब घर भी नही रहे हैं। इसको विभिन्न नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में व्यक्त किया है। *नदी का अकेलापन* शीर्षक वाले अपने नवगीत संग्रह में माहेश्वर तिवारी लिखते हैं–

घर न रह गए

अब, घर जैसे

जीवन के हरियालेपन पर

उग आए हों

बंजर जैसे। (11)

वर्तमान समय की यह कठोर सच्चाई है। अब घर नामक संस्था टुट रही है। इसमें जहाँ एक ओर आपसी पारिवारिक मनमुटाव है, वहीं दूसरी ओर रिश्तों को अपमानित करने की प्रथा भी बढ़ रही है। आज के मनुष्य को घर, परिवार एक बंधन के समान लगता है। वह अपनी आजादी के नाम पर घर से दूर होना चाहता है। इसके लिए वह सभी प्रकार के कुकृत्य करता है। लड़ाई–झगडे, परिवार का बँटवारा, आपसी वैमनस्य को बढ़ावा, घर के बड़े–बुजुर्गों को अपमानित करता है। इस सामाजिक दुर्दशा को नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। विनय मिश्र अपने नवगीत संग्रह *'समय की आँख नम हैं* में लिखते हैं–

आम रहा या खास

रहा हो जो भी कारण

इन गीतों में मूक सदी औ

विपदाओं का साखो चारन

रिश्ते तो है रीत गया

केवल अपनापन (18)

इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए, डॉ. ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं –

संदेही के रिश्ते–नाते

अवसादों के द्वार मिलें (32)

वर्तमान समाज में माता–पिता के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जा रहा है उसको अविनाश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में लिखते हैं –

पडे हुए

घर के कोने में

टूटे फूटे बर्तन जैसे

'अम्मा बाबू'

x x x x x

सही नही जाती है घर को

आँगन की बूढ़ी खाँसी (54–55)

भाई–भाई का आपसी प्रेम वर्तमान में मात्र जमीन, जायदाद तक सिमट कर रह गया है, इसको अवध बिहारी श्रीवास्तव, अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

पाँच भाइयों में बँटवारा

पुरूखों की दी हुई धरोहर

उत्तर–दक्षिण, पूरब–पश्चिम

फैले हुए खेत ये सारे

कब्जा करने के झगड़े में

दो भाई रस्ते में मारे (46)

उपुर्यक्त नवगीत जहाँ एक और नवगीतकारों की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं, वही दूसरी ओर वर्तमान समाज में परिवार के ध्वंस की कहानी भी कहते हैं। इस संस्था के बिखराब पर यदि हम दृष्टिपात करे, तो यह पाते हैं कि वर्तमान में मनुष्य एक प्रकार से विचार शून्य सा हो गया है। वह अपने से आगे देख ही नहीं पा रहा है, उसे मात्र मनुष्य के रूप केवल अपना हित दिख रहा है। यह एक प्रकार की जड़ता है, जो वर्तमान समय के मनुष्य में व्याप्त हो रही है।

2.3 सामाजिक असमानता का बोध–

समाज में सदैव से ही एक विभाजन स्तर रहा है। आदिकालीन समाजों में सभी को समान अधिकार थे। वहाँ पर स्त्री–पुरुष, रंग–जाति आदि के नाम पर किसी प्रकार का कोई वैमनस्य नहीं था, परन्तु मनुष्य जैसे–जैसे अपने आप को

तथाकथित रूप से विकसित करने लगा, उसमें असमानतायें आने लगी। मानवशास्त्री मानते हैं कि यह असमानता कृषि के शुरू होने के साथ आने लगी। जब मनुष्य ने खेती करना प्रारम्भ किया, तो पुरुष खेतों में कार्य करने जाने लगे और स्त्रीयाँ घर पर रहकर घर का कार्य करने लगी। मानव समाज में आने वाली असमानताओं के यह प्रारम्भिक लक्षण थे। इसके पश्चात भारतीय उपमहाद्वीप में पहले वर्ण के नाम पर, फिर जाति के नाम पर, एक भेदभाव की व्यवस्था को जन्म देकर उसका पालन–पोषण किया गया। उसके पश्चात आर्यो व द्रविड़ों के मध्य नस्ल की श्रेष्ठता की होड़ लगी, जिसका परिणाम हिटलर जैसे तानाशाह का जन्म व द्वितीय विश्व युद्ध है। उसके पश्चात दूसरी तरफ, अपने–अपने धर्म को श्रेष्ठ बताने की होड़ शुरू हो गयी। मुगलों ने भारत पर आक्रमण करके हिन्दुओं का नरसंहार किया, दूसरी ओर मिशनरियों ने ईसाई धर्म के प्रचार के नाम पर खुब धर्म परिवर्तन किया। इस धार्मिक कट्टरता ने ही आतंकवाद को जन्म दिया। भारतीय समाज के अन्दर असमानता की बेल को खाद–बीज, अंग्रेजों के शासन में मिला। यूरोपिय देशों ने रंगभेद के नाम पर अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के साथ जो किया, वह इतिहास के सबसे बड़े कुकृत्यों में से एक है। यह रंगभेद आज के समय में किसी 'जार्ज फ्लायड़' की मौत का कारण बन सकता है। इसको समाप्त करने के लिए 'ब्लैक लाइव मैटर' नामक अभियान चलाया जा रहा है। यह घटना कोई 1200 ई. की नहीं है, बल्कि 21 सदी के तथाकथित सभ्य व विकसित समाज की है। जो हमारी वर्तमान आधुनिक सोच की पोल खोलती है।

समाज के अन्दर व्याप्त इन असमानताओं और इनके कारण उत्पन्न होने वाली घटनाओं और परिस्थितियों पर विभिन्न नवगीतकारों ने खूब लिखा है। भारत को वर्षों की गलामी से जो विरासत मिली है, उसका एक महत्वपूर्ण अंग है– साम्प्रदायिकता। वरिष्ठ नवगीतकार माहेश्वर तिवारी अपने नवगीत संग्रह *नदी का अकेलापन* में लिखते हैं –

फिर आई

एक और रात

धरती का

काँपना/पहाड़ टुटना

अपनों का/अपनों से

साथ छुटना (23)

साम्प्रदायिक दंगों की एक रात, हजारो जीवनों को समाप्त कर देती हैं, परन्तु उससे भी भयानक परिस्थिति उनके लिए होती है, जो अपनो को खो देते हैं। एक ही रात में कोई स्त्री विधवा हो जाती है, सन्ताने अनाथ हो जाती है, बुढे माँ–बाप के बुढ़ापे की लाठी टूट जाती है। जीवन भर की कमाई लूट ली जाती है। घरों से लोग सड़कों पर आ जाते हैं और यह सब किसलिए, मात्र अपने को श्रेष्ठ बताने के अहम में। इसको व्यक्त करते हुए ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* संग्रह में लिखते हैं –

आतंकी मन

जाति–धर्म की

सीमा पर है विस्फोटक

जीवित मानवता के

अंतस का

मर गया आज सर्जक (40)

जाति और धर्म के नाम पर हमें लड़वाने का कार्य करने वालों के लिए, अवध बिहारी श्रीवास्तव भी अपने संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं –

मरवा कर मुआवजा बाँटे

मस्जिद में मंदिर में (58)

यह दो पंक्तियाँ सम्पूर्ण साम्प्रदायिकता के गणितशास्त्र को खोलकर रख देने में समर्थ है। इसके लाभ को ग्रहण करने वाले नेता ही इसे शुरू करवाते हैं और जब इस लड़ाई में मनुष्य और उनके मध्य का सामाजिक ताना–बाना बिखर जाता

है, तो वह आपके हमदर्द बनकर आते हैं। आपसे अपनत्व जताते हैं। बड़े–बड़े मुआवजों की घोषणा करते हैं और आपसी प्रेम के नारे लगाते हैं। इस सारे घटनाक्रम पर जश्न मनाते हैं। उसके बाद आपके मुआवजे को भी खा जाते हैं। इस प्रकार के दोगली प्रवृति के नेता ही, समाज में इस जहर को बनाये रखते हैं, क्योंकि उनकी रोजी–रोटी इसी से चलती है।

पुराने समय में कुछ महत्वपूर्ण कहावते प्रचलित थी– 'बोलने से पहले तोलना चाहिए', 'बाणों के घाव भर जाते हैं, परन्तु शब्दों के घाव नहीं भरते', 'मीठा बोलना चाहिए', 'मौन सर्वोत्तम है।' यह सभी कहावते मनुष्य को वाणी के प्रयोग में सावधानी बरतने की सलाह देती है, परन्तु जैसा कि प्रत्येक पुरानी अच्छी आदतों को वर्तमान समय में दकियानुसी, रूढ़िवादी माना जाता है, उसी प्रकार का व्यवहार इन कहावतों के साथ किया जा रहा हैं। अब मनुष्य बोलने से पहले सोचता नहीं है। यदि समाज में साम्प्रदायिकता का जहर घोलने का सबसे सुलभ माध्यम कोई है, तो वह हमारे नेताओं की वाणी और उनके वक्तव्य है। द्रौपदी ने दुर्योधन को 'अंधे का पुत्र अंधा' कहा था, समस्त महाभारत का युद्ध मात्र इन्हीं शब्दों की उपज है। वर्तमान समय में प्रयुक्त होने वाली भाषा की स्थिति को व्यक्त करते हुए यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं –

विष बुझी अमृतमय वाणी है

आँखों से आग बरसती है। (69)

हमारे नेताओं के भाषण देखिये, कोई किसी को पाकिस्तान जाने की सलाह दे रहा है, तो दुसरा पक्ष 10 मिनट पुलिस हटाने की बाते कर रहा है। कोई मंच से पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे लगा रहा है, तो कहीं से भारत के टुकड़े करने की आवाजे आ रही हैं। इन सब भाषणों ने समाज में साम्प्रदायिकता का जहर घोल दिया है। प्रत्येक मनुष्य को अपना धर्म खतरे में लग रहा है। हिन्दु सोचता है कि यहाँ फिर से मुस्लिमों का शासन हो जायेगा। मुस्लिमों को लगता है कि इस्लाम खतरे में है। इन्हीं विचारों ने आतंकवाद को जन्म दिया है। यदि मनुष्य अपनी भाषा को संयमित रखे तो इस साम्प्रदायिकता को बढ़ने से रोका जा सकता है।

इन जातियों और धर्म के सौदागरों ने समाज को जिस प्रकार तोड़ा है, उसको देखते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव को अपने संग्रह *रथ इधर मोड़िए* में यह लिखने को विवश होना पड़ा –

जातियाँ, धर्म तोड़ा किये देश को

मत अधिक तोड़िए

रथ इधर मोड़िए (70)

देश एवं समाज को तोड़ने वाले कारकों को अच्छी तरह व्यक्त किया गया है, इन पंक्तियों के माध्यम से। साथ ही अब इसे बन्द करने की आवाज भी आ रही है।

सामाजिक असमानता के प्रारम्भिक अंकुर हमें जहाँ से प्राप्त होते है, वह है स्त्री को पुरुष से कमतर आँकना। इस स्त्री–पुरुष विभाजन ने बढ़ते–बढ़ते इतना विकराल रूप ले लिया है कि अब तो जन्म से पूर्व ही कन्याओं की हत्यायें होने लगती हैं। माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय* में कहते हैं –

देखते ही देखते

सब नग्न

संज्ञाएं हुई हैं

यहाँ पर

भ्रूण–हत्याएं हुई है। (31)

माधव कौशिक का जन्म उस राज्य में हुआ है, जो इस कृत्य के लिए सबसे अधिक कुख्यात है– हरियाणा। हरियाणा में स्त्री–पुरुष अनुपात, देश में सबसे कम है। यहाँ पर 1000 पुरुषों पर, 850 से भी कम स्त्रीयाँ है। जब समाज उन्हें जन्म ही नहीं लेने देगा, तो यह अनुपात तो घटेगा ही। स्त्री की इसी पीड़ा को आवाज देते हुए ओमप्रकाश सिंह भी अपने संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं –

भ्रूंण की

हिंसा होती जो

खोल नहीं पाई आँखे (88)

जन्म से पूर्व ही उन नन्हीं जानों को मार दिया जाता है। यदि वह भ्रूण हत्या से बच भी जाती है, तो आजीवन उसे अभिशाप, बोझ की तरह माना जाता है। अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर,* एक नवगीत 'तीसरी बेटी' में स्त्री की पीड़ा को उसके द्वारा ही व्यक्त करवाते हुए लिखते हैं –

सबने माना अभिशाप मुझे,

भोगा बेटी होने का फल

x x x x

मैं, सबका भार उठाती थी,

पर सबने मुझे बोझ माना (60)

एक स्त्री जन्म से ही सर्वगुण सम्पन्न होती है। वह अपने भाइयों का ध्यान रखती है, पिता की सेवा करती है, माता का कार्यों में हाथ बँटाती हैं, वर्तमान समय में वह ऊँचे–ऊँचे पदों पर कार्यरत होकर, आर्थिक रूप से भी घर को सुदृढ़ करती है, परन्तु माना सदैव उसे बोझ ही जाता है। माँ–बाप सोचते हैं कि यह बोझ जीतना जल्दी उतर जाये, वह अच्छा है।

स्त्री के संघर्ष का शादी अन्त नहीं है। यह तो मात्र एक नये संघर्ष का उदयकाल है। समाज में स्त्री की दुर्दशा का कोई एक मुख्य कारण है, तो वह है–दहेज। भारतीय समाज को इस प्रथा ने जितना नुकसान पहुँचाया है, उतना किसी ने भी नहीं। यह प्रथा किस स्तर तक स्त्री के शोषण को पहुँचा सकती है, उसको व्यक्त करते हुए ओमप्रकाश सिंह अपने संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* लिखते हैं –

घर की ड्योढी पर लटकी है

नई दुल्हन की खाल (130)

पुरुष समाज मात्र दहेज के लोभ में स्त्री को मृत्यु के द्वार पहुँचा देता हैं, दहेज के लोभी स्त्री को जीवित जलाने, घर से निकालने एवं मायके वालों को प्रताड़ित करने में भी नहीं हिचकते है। यह हमारे समाज का वह धब्बा है, जिसे जितना जल्दी समाप्त किया जाये उतना ही अच्छा है।

यदि हम समाज को बारिक नजरों से देखे तो पायेंगे कि यहाँ पर विराजमान असमानता बहुत से कारकों के कारण है। यहाँ पर भेदभाव के लिए कोई भी कारक उत्पन्न किया जा सकता है और आपको किसी भी कारण से प्रताड़ित किया जा सकता है। इन कारकों पर भी नवगीतों के माध्यम से नवगीतकारों ने आवाज उठायी है। यश मालवीय अपने संग्रह *समय लकड़हारा* में आदिवासियों की पीड़ा पर लिखते हैं –

एक 'मेटाफर' रचा

और फिर भूल गए

शब्द आदिवासी

न कभी स्कूल गए (39)

जल, जंगल और जमीन को अपना घर मानने वालों को असभ्य व जंगली कहने वाला एवं अपने को सभ्य कहने वाला समाज किस प्रकार इनका शोषण करता है, यह सर्वविदित है। औद्योगिकरण और विकास के नाम पर उनसे उनके जंगल छीने जाते हैं। उन्हें बेघर किया जाता है, फिर उनकी जमीनों पर कारखाने खड़े करके, उनमें उन्हें नौकरी देने के नाम पर, उनका शारीरिक शोषण किया जाता है।

भारत के संविधान निर्माताओं ने भले ही संविधान में लिख दिया हो, भारत में छुआछुत को समाप्त घोषित किया जाता है, परन्तु क्या वास्तविकता में ऐसा हो पाया है ? क्या समाज का वह तबका जिसे तथाकथित सर्वण समाज दलित, पतित, नीच जैसे शब्दों से महिमामंडित करता है, उसे उसका हक मिल पाया है।

उस समाज की पीड़ को एक आक्रोश व चुनौती की आवाज में अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने संग्रह *बस्ती के भीतर* में आवाज देते हुए लिखते हैं –

पानी लेने जब जाती हो

माँ

तुम इतना डरती क्यों हो

कुआँ, किसी का भी हो

माँ क्यों,

घंटों इंतजार करती हो (23)

हमारे समाज में असमानता के कई पहलू है, वह कई स्तरों पर व्याप्त है। उसके अनेक कारक है। इन सभी आयामों पर नवगीतकार, अपने नवगीतों के माध्यम से समाज को अवगत करवा रहे हैं। वह समाज को वह सच दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे वह भागता है। साहित्य की नवगीत विधा मनुष्य को समाज में व्याप्त असमानता की स्थिति का वास्तविक चेहरा दिखाती है।

2.4 सामाजिक समरसता के बिंदुओं का बोध–

वर्तमान दौर की सामाजिक परिस्थितियों में सबसे कठिन है, समरसता के भावों की खोज करना। आज सामाजिक व्यवस्थाये विघटित हो रही है। जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उनका गठन किया गया था, वह उनमें नाकाम होकर मात्र शोषण कि परिचायक है। मानव क्रमशः हम से, स्व की ओर अग्रसर हो चुका है। आज के इस भाग–दौड़ भरे जीवन रिश्ते–नातों के लिए समय नहीं है और मनुष्य इन सबसे छुटकारा पाना चाहता है, वहाँ पर सामाजिक समरसता को ढूँढना बहुत मुश्किल है। सामाजिक समरसता को कायम करने हेतु कोई प्रयत्न किया जाता है तो, उसे रूढ़िवादिता के नाम पर खारिज कर दिया जाता है। उन्हें पुराने ख्यालों व विचारों का कहकर, खारिज कर दिया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन हमे समाज में व्याप्त माहौल को लेकर निराशावादी बना देता है, परन्तु क्या सचमुच सब कुछ समाप्त हो गया है, अब कुछ शेष नहीं है।

नही, ऐसा नहीं है, जहाँ अन्धियारा है, वहाँ प्रकाश की किरण भी है। अभी भी समाज में ऐसा माहौल, ऐसे व्यक्तित्व है, जो व्यक्तिगत लाभ–हानि से ऊपर उठकर, सामाजिक भाईचारे को कायम रखने हेतु प्रयासरत है। इन्हीं बिन्दुओं पर नवगीतकारों ने भी पर्याप्त लिखा है। यही तो नवगीत की विशेषता है, वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने में कभी नहीं हिचकता है। यदि वह समाज के दोषों को उजागर करता है, तो उसकी अच्छाईयों का भी वर्णन करता है।

वर्तमान समय में सर्वाधिक पतन एवं ओछापन, रिश्तों को निभाने में आया है, परन्तु आज भी पति–पत्नि के रिश्ते में व्याप्त प्यार हमें आशा की किरण के समान लगता है। इसको *खाली हाथ कबीर* में मधुकर अष्ठाना इस प्रकार से व्यक्त करते हैं–

जब से अम्मा गई

पिता जी

गुम सुम रहते हैं

भीतर ही भीतर

सारी पीड़ाये सहते हैं (64)

आज के वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में, जहाँ शादी से पूर्व तलाक की बाते होती है, वहाँ पर इसका प्रकार का अभूतपूर्व प्रेम, एक उम्मीद कि किरण है। यह रिश्तों को आजीवन निभाने का प्रयत्न है, उन्हे सहजने का प्रयास है, परन्तु इससे भी मार्मिक है, इस नवगीत की यह पंक्तियाँ –

दरवाजे की ओर

देखकर

गाय रंभाती है (64)

वर्तमान सभ्य समाज की व्यवस्था पर, यह पंक्तियाँ सीधे चोट पहुंचाकर, उसे यह बताती है कि तुम भले ही अपने माँ–बाप को वृद्धाश्रमों में छोड़ आओ, परन्तु

पशु, जिन्हें हम निरिह प्राणी समझते हैं, वह आज भी आपसी प्रेम और सम्बंधों की पीड़ा को समझते हैं। ये बेजुबान, जो हमारी तरह सभ्य नहीं हुए है, शायद मनुष्य को प्रेम के मायने समझा रहे हैं।

भारतीय साहित्य में लिखा गया है, 'कुपुत्रों जायते कवचिदपि कुमाता न भवित', अर्थात पुत्र कुपुत्र हो सकता है, परन्तु माता कभी भी कुमाता नहीं हो सकती है। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में, यह पंक्तियाँ अक्षरशः सटीक बठती है। पुत्र कितना ही खराब व्यवहार कर ले, परन्तु जब भी वह संकट में होता है, उसे माँ कि याद आती है, इसी दृश्य को व्यक्त करते हुए मधुकर अष्ठाना अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं –

माँ की आई याद

घुल गयी मन में

चन्दन गंध

धूप की

——————————

मिला न कोई

माँ के जैसा (74–75)

इन्हीं परिस्थितियों में, हम माँ को स्मरण करते हैं, माँ की यह कमी हमें उसके अचानक चले जाने पर और अधिक खलती है। इसको व्यक्त करते हुए अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं –

आज अचानक सिर से मेरे

सरक गया है माँ का आँचल

——————————————

कड़ी धूप पीड़ा तनाव में,

माँ बन जाती शीतल बादल

जो भी हुए मनोरथ पूरे,

सब हैं उसकी पूजा के फल (61)

माँ के जाने की पिड़ा को व्यक्त करता नवगीत, उसके रहते हुए हमें उसके जो कार्य दिखलाई नहीं पड़ते हैं, उसके जाने के बाद हमें उनका भी स्मरण हो आता है, परन्तु यह एक कटु सत्य भी है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में, जीते–जी, माँ–बाप की सेवा उनके बच्चे नहीं करते हैं।

प्राचीन समय में व्यक्ति के, व्यक्तित्व विकास में उसकी दादी–नानी का महत्वपूर्ण योगदान होता था। आज भले ही मजाक में कहा जाता हो कि 'पहले बच्चे दादा–नाना के घर जन्म लेते थे, तो वहाँ जाते थे, अब अस्पताल में जन्म लेते हैं, तो बार–बार वहाँ जाते है।' परन्तु यह व्यंग्य है, हमारी सामाजिक व्यवस्था पर, जहाँ हमने अपने रिश्तों को छोड़ दिया है। बच्चे अब दादी–नानी का प्यार नहीं पाते हैं और न ही दादी–नानी उनमें अपना बचपन देख पाती हैं, परन्तु यह स्थिति हर जगह नहीं है। इसी को व्यक्त करते हुए अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं –

दादी ढूँढ रही है पोती में

अपना बचपन

फेंक रही है बस्ता, जूते

लौटी है पढ़कर (31)

दादी–पोती के निस्वार्थ प्रेम और अपनत्व को व्यक्त करता है, यह नवगीत। बृजनाथ श्रीवास्तव अपने संग्रह *रथ इधर मोड़िए* के एक नवगीत में बाबा की बातों को याद करते हुए लिखते हैं –

बाबा कहते जियो प्यार से

गले मिलो तुम सबके

आपस के सब भेद मिटाकर

चलो साथ हिल–मिल के (100)

बाबा कि यह बातें सिर्फ पुत्रों के लिए नहीं है, यह तो सम्पूर्ण समाज के लिए है। यदि हम आपस के भेद मिटाकर, साथ चले तो सामाजिक समरसता को कौन खण्डित कर सकता हैं ? जीवन की भाग–दौड़ में हमने किस प्रकार से सम्बंधों को खोया है, वह जग–जाहिर है, परन्तु अब हम अपनी भूल पर पछता रहे हैं और वापस आना चाहते हैं। जीवन की भाग–दौड़ ने हमसे क्या कुछ नहीं छिन लिया है, इसको अपने संग्रह *खाली हाथ कबीर* में मधुकर अष्ठाना इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

जीवन की इस

भाग–दौड़ में

सब कुछ छूट गया। (130)

यही सही समय है, हम जो भी, जितना भी अपने रिश्तों में समेट सकते हैं, समेट ले।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में रिश्तों–नातों के साथ ही, हमने स्त्री को भी कमतर आँकने की भूल की है, उसे हर स्तर पर प्रताड़ित किया है, परन्तु अब स्त्री भी अपने अन्दर परिवर्तन ला रही है और समाज को उनका हक, उन्हें देना पड़ रहा है। अब उसने अपनी भूमिका को किस प्रकार बदला है, इस पर यशोधरा राठौर अपने नवगीत संग्रह *'जैसे धूप हँसती है'* में लिखती हैं –

भूमिका मैंने

बदल ली है जनाब

आज तक मैं

स्वप्न में खोई रही

खुली आंखे रही, पर

सोई रही (50)

वह अपने सम्बन्धों को, अपनी भूमिकाओं को बदल रही है, अपने हक की आवाज उठा रही है। अब वह अपनी पीड़ा व दुःख को चुपचाप सहती नहीं है। इस पर यशोधरा राठौर एक अन्य नवगीत में लिखती हैं –

आ रहे दुख याद

कैसे चुप रहूं

अभी कल की

बात कहकर छोड़ दूं

मसायल से, यातना से

होड लूं

झेलकर अवसाद

कैसे चुप रहूं। (59)

नारी ने जो पीड़ा सही है, उसको व्यक्त नहीं किया जा सकता है, परन्तु जहाँ एक ओर वह अपने सम्मान के लिए लड़ रही है, वही दूसरी ओर वह भेदभाव के खिलाफ भी आवाज उठा रही है। उसके इन्हीं प्रयासों से धीरे–धीरे ही सही, परन्तु अब समाज में उनका हक मिलने लगा है। चाहे वह भारतीय सेना द्वारा उन्हें स्थायी कमीशन देने के रूप में हो या वायुसेना द्वारा लड़ाकु विमान चलाने की अनुमति देना हो। धीरे–धीरे ही सही, राजनीतिक मंचो पर भी उसकी उपस्थिति बढ़ रही है। वर्तमान लोकसभा में सर्वाधिक महिलायें चुनकर आई है। यह कदम; स्त्री–पुरुष के मध्य के भेदभाव को समाप्त करते हुए, क्रमशः सामाजिक समरसता में भी अपना योगदान प्रदान कर रहे हैं।

उपर्युक्त अध्याय से यह स्पष्ट होता है कि नवगीतकार अपने नवगीतों में वर्तमान सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करने में सफल रहे हैं। सामाजिक परिस्थितियों में, होने वाले परिवर्तन से, होने वाले सामाजिक मूल्यों के पतन को, उन्होंने अपने नवगीतों में पर्याप्त रूप से व्यक्त किया है। नवगीतकारों की सफलता है कि इन विपरीत परिस्थितियों में भी वह समाज में व्याप्त सामाजिक समरसता, प्रेम, सौहार्द्र

आदि को भी अपने नवगीतों में व्यक्त करने में सफल रहे हैं। इस प्रकार के नवगीतों की रचना मनुष्य को, 'सब कुछ समाप्त हो गया है' वाली सोच से बचाती है। यही नवगीतकारों की सफलता है।

अध्याय 3

21वीं सदी के नवगीतों में आर्थिक युगबोध

आधुनिक समय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण, यदि कुछ है, तो वह धन है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने इसके महत्व को सर्वोपरी कर दिया है। मानव जीवन के अन्य सभी अवयव, धन के सामने गौण हो गये हैं। धन संग्रहण की प्रवृत्ति मानव समाज में बढ़ रही है। किसी भी प्रकार के आर्थिक घटनाक्रम से मानव जीवन परोक्ष रूप से प्रभावित होता है। आर्थिक परिवर्तनों से होने वाले प्रभाव, आम आदमी को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। इसी कारण से नवगीतकार अपने साहित्य की रचना करते समय, वर्तमान युगबोध के महत्वपूर्ण अवयव के रूप में, आर्थिक बोध को सम्मिलित करते हैं।

3.1 कर्म संघर्ष के विभिन्न पक्षों का वर्णन–

मानव ने अपने जीवन में धीरे–धीरे क्रमगत विकास किया है। प्रारम्भ में वह जंगलों में रहकर, शिकार के माध्यम से अपना जीवनयापन करता था। धीरे–धीरे वह कृषि करने लगा। प्रारम्भ में वह खाने की सामग्री के साथ, अन्य वस्तुओं का विनिमय करने लगा। साथ ही कृषि की आवश्यकता हेतु अन्य सामग्रियों का एवं अन्य सेवाओं की पूर्ति हेतु, व्यवसायों का उदय होने लगा। अनेक विद्वानों का मानना है कि जाति प्रथा का उदयकाल भी यही है। साथ ही जजमानी प्रथा का भी, यही से प्रारम्भ माना जाता है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण समस्त गांव के कार्य करता था, उसके बदले ग्रामीण उसे खाद्य व अन्य वस्तुये प्रदान करते थें। यह वस्तु विनिमय का सिद्धान्त था। आप गेहूँ के बदले, फल प्राप्त कर सकते थे। आप चारपाई आदि लडकी का सामना प्राप्त कर सकते थे या नाई के द्वारा अपने केश कटवाने की सेवा प्राप्त कर सकते थे। धीरे–धीरे जनसंख्या बढ़ने से एवं मुद्रा के आगमन से स्थिति में परिवर्तन आने लगा। जनसंख्या बढ़ने से संसाधनों पर दबाव बढने लगा, तो मानव मजदूरी करने लगा, वही अब मुद्रा के आगमन से वह मजदूरी के बदले मुद्रायें प्राप्त करने लगा। सामाजिक तन्त्र में, अर्थ का यह प्रारम्भिक हस्तक्षेप था। इसने जन्म दिया, अधिक से अधिक धन संग्रहित करने की प्रवृत्ति को और इसी लालसा ने शोषण को बढ़ावा दिया। औद्योगिक क्रान्ति ने, इस आग में घी का काम किया। यूरोपिय देशों के द्वारा, अपने उपनिवेशों के नागरिकों पर, किये गये

जुल्मों को यदि न ही कहा जाए; तो अच्छा है। कारखानों में उन्हें गुलाम बनाकर, उनका शोषण किया गया। धीरे–धीरे यही से वर्ग–विभाजन होना प्रारम्भ हुआ। अब समाज जाति एवं आप क्या कार्य करते हैं, से आगे बढ़कर अमीर–गरीब के मध्य विभाजित हो गया। आधुनिक काल में आते–आते, अर्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया। सरकारें समाजवाद से पूँजीवाद की ओर मुडने लगी। इसने सत्ता और व्यापारियों के मध्य भ्रष्टाचार को पनपाया। वर्तमान काल में, इसने उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति को बढ़ाकर, एक नये वर्ग मध्यम वर्ग का निर्माण किया है। वर्तमान समय में, अर्थ की शक्ति को व्यक्त करता हुआ यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है – 'खुदा की कसम, पैसा खुदा नहीं है, तो खुदा से कम भी नहीं है।'

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था, जिसे हम मुख्यतः पूंजीवाद आधारित कह सकते हैं, में कर्म–संघर्ष के मायने भी बदल गये हैं। अब यहाँ आपका सामना होता है– बेरोजगारी, मँहगाई, बाजारबाद से। बेरोजगारी के कारण, आप रोजगार हेतु दर–दर भटकते हो। मँहगाई के प्रभाव तो इतने भयानक है कि जो कमाते हैं, उन पर भी दृष्टिगोचर होते है और जो नहीं कमाते उनका तो काल है मंहगाई। कहीं ये आपसे आपका बचपन छिन लेती है, तो कहीं जवानी इसमें घुल जाती है। रही सही कसर बाजारवाद की भावना पूर्ण कर देती है। यह बाजारवाद आज, मनुष्य के घर तक घुसकर, उसके सम्पूर्ण अर्थतंत्र को बिगाड़ रहा है।

नवगीतकारों ने अपने नवगीतों के माध्यम से इस पर लिखा है। इस उपभोक्तावादी आर्थिक तंत्र ने किस प्रकार से बचपन को निगल लिया है उस पर मधुकर अष्ठाना अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं –

अभी–अभी तो

पाँच वर्ष का हुआ

लग गया है होटल में

झाड़ू–पोंछा

प्लेटें धोने के बदले में

मिलता खाना (40)

एक पाँच वर्ष के बच्चे से आप क्या उम्मीद रखते हैं, परन्तु यह पूंजीवाद उसे कर्म–संघर्ष में धकेल देता है, जहाँ उसका बचपन, शिक्षा, उसके आगे बढ़ने के अवसर सब समाप्त हो जाते है। बचपन किस प्रकार समाप्त हो रहा है, उस पर यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं –

किले रोटियों के होटल में

बाहर हैं ये भूखे

गिने रेज़कारी आँसू की

देखे बादल सूखे (75)

बचपन जिन होटलों में गुजरता है, वहाँ कितना वेतन मिलता है, ये बताने या लिखने की बात नहीं है। वहाँ पर उनको शारीरिक रूप से वह जीवित रहे, बस इतना दिया जाता है।

यदि बचपन किसी तरह इस बाजारवाद से बच जाता है, तो आपके सामने जवानी में सर्वाधिक पहली चुनौती के रूप प्रकट होती है– बेरोजगारी। वर्तमान आर्थिक नीतियों के कारण, रोजगार के कम होने की पीड़ा को व्यक्त करते हुए अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में यश मालवीय लिखते हैं –

यही सूरज था

कि छनता था उजाला

चिमनियों का धुँआ था,

अब बंद ताला

दुख रहा है बंद सी मिल पर अकेला पेड़ (67)

यहाँ पर वह एक पेड़ के माध्यम से बंद होती मिलों कि व्यथा कह रहे हैं। आज परम्परागत जीवनयापन के साधन समाप्त हो रहे हैं। रामसनेही लाल शर्मा

रोजगार के साधनों को किस प्रकार मशीनीकरण समाप्त कर रहा है, उसको अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में नवगीत में लिखते हैं –

चोरी हो गयी

सुबास सुमन

आरोपित है

भोली तितली

रोबोट खा गया

पचा गया

गाँधी जी की

छोटी तकली (79)

उपर्युक्त नवगीत मशीनीकरण के बढ़ते दुष्प्रभावों को प्रदर्शित करता है। मशीनीकरण के कारण बहुत से लोगों का रोजगार जा रहा है। सरकारी नौकरियों में भर्ती होना तो, महाभारत लड़ने के समान हो गया है। इसी कारण से देश के बेरोजगारों को सरकारी तंत्र को जगाने के लिए आंदोलन करने पड़ते हैं। इन सबसे उत्पन्न होती है– मँहगाई और उसकी मार सबसे भयंकर पड़ती है। मँहगाई, परिवार के पूरे बजट को बिगाड़ कर रख देती है। मँहगाई किस प्रकार से मनुष्य को कंगाल कर रही है। इस पर ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं –

मँहगा आटा मँहगा चावल

मँहगी सब्जी दाल

मँहगाई के हाथों फँसकर

आज हुए कंगाल (130)

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकतायें रोटी, कपड़ा और मकान को माना जाता है, परन्तु मँहगाई इन सब को पुरा होने नहीं देती है। यह तो मनुष्य को उसके

त्योहारों तक से विमुख कर देती है। इस मँहगाई के समय में त्योहार में क्या स्थिति होती है, इस पर अवध बिहारी श्रीवास्तव के नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* का यह नवगीत दृष्टव्य है –

नून तेल लकड़ी की चिन्ता

ऊपर से त्यौहार दिवाली

नही मनाने देती हमको

मँहगाई की मार, दिवाली (71)

जब मनुष्य नमक, तेल, ईंधन के लिए ही पैसे नहीं बचा पा रहा है, तो वह त्योहारों में पकवान कहाँ से खरीदे। मँहगाई की मार सर्वाधिक गरीब व्यक्ति पर ही पड़ती है, इसको व्यक्त करते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *'रथ इधर मोडियें* में लिखते हैं –

तुम तो कोकिल की धुन डूबे

बजा रहे हम अपने गाल

तुम तो गोरों से चिकने हो

फटी बिवाई हम बेहाल (100)

इसमें वह प्रतिकात्मक भाषा का प्रयोग करते हुए, बसंत ऋतु के माध्यम से अमीर को व्यक्त कर रहे है और उसकी तुलना गरीब आदमी के बसंत से कर रहे हैं। यदि आप भुखे हैं, तो आपके लिए कोई ऋतु सुहानी नहीं है।

किसान एवं बेरोजगार लोगों, पर इस संघर्ष में एक ओर चुनौती होती है, प्रकृति। प्रकृति मनुष्य के द्वारा, उसके साथ किये जा रहे व्यवहार पर, अपना क्रोध प्रकट करती है, तो उसका नुकसान सर्वाधिक रूप से निचले तबके के किसानों और निम्न आय वर्ग पर पड़ता है। किसानों की खेती पर इसके प्रभाव को दर्शाते हुए रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

लिए गुलेल

मारता मौसम/ओले के पत्थर

गेहूँ अस्पताल में पहुँचा

आलू मुर्दाघर (108)

चारो ओर से हताश, निराश किसान, जब प्रकृति से भी मार खाता है, तो वह अन्त में अवसाद व निराशा के उस घनघोर चक्र में फंस जाता है कि वहाँ से निकलना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। उसके सामने मृत्यु को गले लगाने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता है। किसान की इस पीड़ा को रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत के अन्य पद में इस प्रकार लिखते हैं–

सरकारी जीपो ने

कुचली/मेडों की छाती

लखनऊ से दिल्ली तक

दौड़ी राजा की पाती

रस्सी बाँध गले में

लटका/बरगद पर अगडू (109)

प्रकृति के साथ महँगाई का यह गठजोड़, मनुष्य को मृत्यु के समीप ले जाकर, उसे आत्महत्या तक के लिए मजबूर कर देता है। कितने ही जीवन अपने अन्दर समाने वाली मँहगाई, हमारे जीवन में किस कदर समा चुकी है, इसको यशोधरा राठौर के नवगीत संग्रह *जैसे धूप हंसती है* के इस नवगीत द्वारा समझा जा सकता है –

अमरलता जैसी

मँहगाई पसर रही है

सब कुछ गलत हुआ, लगता

कुछ नहीं सही है

चूल्हे पर चढ़कर

भी शीतल रहा तवा है। (78)

मँहगाई रूपी, इस अमर बेल के टुटने या नष्ट होने तक, मनुष्य कर्म–संघर्ष में इसका सामना करता रहता है। वह रोज इससे लड़ने हेतु प्रयास करता है।

3.2 नवगीतों में आर्थिक शोषण का वर्णन –

चारो ओर से सभी प्रकार के संघर्षों से टकराकर, आम आदमी जब मेहनत मजदुरी से कुछ करना चाहता है, तो उसे पता चलता है कि यहाँ पर तो सब उसका शोषण करने के लिए तैयार खड़े हैं। वह भ्रष्टाचार, नौकरशाही, लालफिताशाही के चक्रव्यूह में फंसकर, उसके हर द्वार पर लुटता हुआ, शोषित होता हुआ, अन्त में अभिमन्यु कि भाँति कभी–भी उससे बाहर नहीं निकल पाता है। शोषण के विभिन्न तरीकों, परिस्थितियों और परिणामों पर नवगीतकारों ने अपनी कलम चलाई है।

शोषण का प्रारम्भ, शारीरिक शोषण के साथ बचपन में ही हो जाता है। कहने को तो भारतवर्ष बाल मजदूरी के खिलाफ है, परन्तु क्या वास्तविकता में ऐसा है– नहीं। मजबुरी में आकर बचपन यदि काम करने लगता है, तो उसका शोषण किस प्रकार से होता है, उसके लिए मधुकर अष्ठाना अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में कहते हैं –

अक्सर दुरुपयोग करते हैं

बैरे बड़े

सुकोमल तन का

सिखा रहे

चोरी–बदमाशी

सच में

अर्थ यही जीवन का (41)

इसी शोषण के एक अन्य रूप को घर में काम करने वाली बच्ची के माध्यम से अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में इस प्रकार से लिखते हैं –

ऐसा हाड़ कपाऊँ जाड़ा

लड़की नहीं काम पर आयी

झाड़ू पोंछा कौन करेगा

कहाँ मर गयी, देखो भाई (41)

प्रथम नवगीत; जहाँ छोटे बच्चों को होटल, ढाबों पर काम करना पड़ता है, वहाँ उनका किस प्रकार शोषण होता है, उसका उदाहरण है। यही से समाज में चोरी–बदमाशी की नींव आती है। यही अवगुण आगे चलकर मनुष्य को असामाजिक गतिविधियों में शामिल करते है। द्वितीय नवगीत घर में काम करने वाली, बच्ची के शोषण को दर्शाता है। यदि वह बच्ची हाड़ काँप सर्दी में, एक दिन काम पर नहीं आती है, तो उसके लिए हमारे मुख से निकलने वाले प्रथम शब्द होते है –'कहाँ मर गई आज'। क्योंकि स्वंय तो कोई कार्य करना नहीं चाहता है। सब कुछ उस बच्ची से करवाना है, उसके बैगर कुछ नहीं होगा, परन्तु कोई उसकी परेशानी को नहीं समझता है। यही शोषण धीरे–धीरे उन्हें मजदूरों से बंधुआ मजदूरों में परिवर्तित कर देता है। इसको व्यक्त करते हुए माधव कौशिक अपने संग्रह *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं –

बंधुआ मजदूरों से

बदतर

बीता जीवन होरी का

कोयल से भी

काला निकला

भाग्य गांव की गौरी का (47)

एक–एक रोटी के लिए जो संघर्ष करना पड़ता है, उसको व्यक्त करता है, यश मालवीय के संग्रह *समय लकड़हारा* का यह नवगीत–

वो मजदूरन रोटी में ही

चेहरा देख रही

पता नहीं रोटी झुलसी है

या झुलसा चेहरा (18)

गर्मी, सर्दी, बारिश में बिना शरीर कि चिन्ता किये, खटते रहने कि मजबुरी, जिसका फायदा ऊठाकर मालिक उनसे बेईतहा काम लेते हैं। इस शोषण प्रक्रिया में, सरकारी तन्त्र भी शामिल होकर अपना फर्ज निभाता है। सरकारी तन्त्र की कार्यप्रणाली को इंगित करते हुए मधुकर अष्ठाना अपने संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं –

ऊपर से

सरकारी गिद्धों ने

जी भर लूटा (110)

यह सरकारी तन्त्र पहले जनता के हिस्से को हड़पता है, उसके पश्चात जनता के मुआवजे को भी खा जाता है।

यह सरकारी तंत्र, किस प्रकार शोषण करके अपने आप को समृद्ध कर रहा है, इसको अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* के एक नवगीत में अजय पाठक इस प्रकार बयान करते हैं –

मायावी यह पेट पचा लेता है

सबका हिस्सा

इसी पेट में कोटा, परमिट,

गेहूँ, दलिया, घासलेट है (39)

सरकारी अनुदान में किस प्रकार की बंदरबांट होती है, यह बताते हुए वह पुनः लिखते हैं –

लिये पुलिंदा अधिकारी जी

मुखिया के घर आये

घुमा–फिराकर बातचीत को

मुद्दे पर ले आये

उनका हिस्सा कितना होगा

सरकारी अनुदान में (84)

यहाँ पर अफसरशाही एवं नेताओं के गठजोड़ के द्वारा किये जा रहे शोषण का वर्णन है। गरीब का शोषण करने में सब बराबर है। अब तो यह हिसाब लगाना भी मुश्किल है कि कितने इससे अमीर हो गये हैं। गरीबों की इस पीड़ा को आवाज देते हुए यश मालवीय अपने संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं –

है कथन उपकथन नाटक मंच कितने

सर नहीं हैं और हैं सरपंच कितने

भूख से लड़ रहे चेहरे क्या बताएँ

देश खाकर हो गए हैं टंच कितने (101)

शोषण करने वालो की एक नजर, गरीब की जमीन–जायदाद पर अवश्य रहती है। वह सदैव इस फिराक में रहते है कि कब उनकी भूमि को हड़प लिया जाये। अगर वह सीधे–सीधे ऐसा नहीं कर पाते हैं तो, कभी विकास, कभी निवेश के नाम पर उसको अधिग्रहित कर लेते हैं। गरीब की इस पीड़ा को रामसनेही लाल शर्मा अपने संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

ग्वैंडे वाली बड़ी टपरिया

गयी सड़क के बड़े पेट में

भैया मेरे !

शेष कुशल है (59)

गरीब की जमीन छीनकर उनको मजदूर बना दिया जाता है और फिर उनको भी बेच दिया जाता है। मनुष्य के बिकने की इस पीड़ा को अपने नवगीत संग्रह *जैसे धूप हंसती है* में यशोधरा राठौर इस प्रकार व्यक्त करती हैं–

विश्व–ग्राम में

बेचे जाते

औने–पौने हम

यहाँ अंधेरा ही

ज्यादा है

और रोशनी कम। (73)

वर्तमान अर्थतंत्र में मात्र मनुष्य के शरीर को ही नहीं शोषित किया जा रहा है, अपितु उसकी संवेदनाओं को भी खत्म किया जा रहा है। उसका मानसिक शोषण भी किया जाता है। वैसे भी मशीनों से संवेदना की उम्मीद करना ही बेमानी है। इस पीड़ा को अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में व्यक्त कर रहे हैं –

घोर आलोचक/समय का

सुर्खियों में आजकल है,

युग मशीनो का

हुआ जब

भूख की बातें विफल है (56)

पूर्व में किसानों, गरीबों को महाजनों के द्वारा शोषित किया जाता था। उनसे बहुत अधिक सूद वसुली की जाती थी। आजादी के पश्चात बैंको के उदय ने इसमें कुछ राहत दी, परन्तु धीरे–धीरे बैंक भी अमीरों के गुलाम हो गये। कोई माल्या, मोदी इनके हजारों करोड़ लेकर भाग जाये, इन्हें कोई चिन्ता नहीं है। परन्तु किसी गरीब का 1 लाख का लोन भी लेने के लिए यह उसकी जमीन, जायदाद कुर्की करने पर उतर जाते हैं। गरीब के इस शोषण को व्यक्त करते हुए अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

बाबू है बीमार, बहू का

नौंवा लगा, महीना है

दावा हुआ बैंक कर्जे का,

कुर्की, कारागार है (38)

बैंको के द्वारा किस प्रकार से जेल भेजने का डर दिखाकर वसुली की जाती है, उसको बताता है यह नवगीत।

इन सब से ऊपर है, बाजारवाद की प्रवृति। वर्तमान अर्थतंत्र; सिर्फ मुनाफा कमाने की प्रक्रिया बनकर रह गया है। यहाँ पर सिर्फ अपना फायदा होना चाहिए। इसी धारणा के कारण विदेशी (मुख्यतः चीन व यूरोपीय) सामान से हमारे बाजार भर गये है। इन अन्तर्राष्ट्रीय कही जाने वाली कम्पनियों ने, किस प्रकार से देश को बर्बाद किया है, उसको मधुकर अष्ठाना अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

वालमार्ट का गेहूँ

बासमती भी

हुई पराई

————

फँसा जाल में

फिर अपना

भारत महान बेचा (51)

वर्तमान दौर में सम्पूर्ण बाजार पर वालमार्ट, फ्युचर, रिलायंस जैसे बड़े–बड़े व्यापारियों का कब्जा हो रहा है। छोटा व्यापारी इनसे टक्कर नहीं ले पा रहा है। और इन बड़े व्यापारियों के लिए मनुष्य मात्र एक उत्पाद बनकर रह गया है। इसको व्यक्त करते हुए माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

आदमी है जिन्स

अब बाजार का

————————

अस्मिता

शो केस में (41)

यह बाजारवाद मात्र बाजार या हॉट तक सीमित नहीं है, अब यह चारों ओर नजर आता है। इस पीड़ा को व्यक्त करता हुआ विनय मिश्र के नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* का यह नवगीत दृष्टव्य है–

गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा के

हम कठपुतली बने फिजूल

है विशिष्ट सुविधाओं वाले

कहने को पब्लिक स्कूल (31)

इस नवगीत के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में भी बाजार घुस गया है। बड़ी–बड़ी सुविधाओं से युक्त स्कूलों में मोटी फीस वसुल की जाती है और निर्धन वर्ग के बच्चे इनमें कहाँ से पढ़े पायेंगे। उन्हें तो सरकारी विद्यालयों की शरण में ही जाना पड़ता है। यह बाजार तो इससे भी आगे

निकलकर हमारे घर में घुस चुका है। इस पर विनय मिश्र पुनः एक अन्य नवगीत में लिखते हैं–

दरवाजे पर विज्ञापन की

वंदनवार

हर कमरे में एक नया है कारोबार

क्या बोलूँ जब घर में ही

बाजार घुसा (140)

अब तो बाजार यह निर्धारित करता है कि आप क्या खाये, क्या पहने। चारो ओर विज्ञापनो का जाल फैलाकर, हमें उसमें फँसाया जाता है। इन विज्ञापनों का एक और पीड़ादायक सच है, जिसे अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में लिखते हैं –

विज्ञापन की

पीक झेलते

सहमे हुए पलस्तर,

भूखे नंगे दिन

सदियों से

चुभा रहे हैं नस्तर (112)

इस नवगीत के माध्यम से अवनीश त्रिपाठी कह रहे है कि गरीब आदमी के घर की दिवारों को भी इन विज्ञापनों ने नहीं छोड़ा। बाहर निकलकर देखिये गरीबों के घर–मकान पर आपको बड़े–बड़े विज्ञापन मिल जायेंगे। कभी आपने अमीरों के घरों की दीवार पर विज्ञापन देखे हैं – नहीं। चन्द रुपयो के नाम पर गरीब का शोषण किया जाता है। कई बार तो वह भी नहीं दिये जाते हैं।

बाजारवाद ने किस प्रकार से सामाजिक रिश्ते–नाते संवेदनाओं को आहत करके मनुष्य का शोषण किया है, उसका वर्णन भी अनेक नवगीतकारों ने किया है।

जो अर्थव्यवस्था मात्र मुनाफे पर आधारित हो, वहाँ पर आप प्रेम, भाईचारे, संवेदनाओं एवं रिश्तों को नहीं पायेंगे। अवनीश त्रिपाठी तो अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे है धूप चुनते* में कहते हैं कि मशीनी युग में मात्र धन ही सब कुछ है–

केवल धन के उद्‌बोधन से

विस्फोटित है सभी दिशाएँ (100)

और यह धन की लालसा किस प्रकार से हमारे अहसासों को मारकर, कुंठाओं के दलदल में हमें घसीट रही है, उस पर वह लिखते हैं –

टूट रही है अहसासो की

डोरी गहरी कुंठाओं से (108)

बाजारवाद में सिर्फ कुंठा की कुंठा है, हम एक दुसरे से जल रहे है। पहले गाँव में यदि किसी के पास कोई साधना यथा– बैलगाड़ी, साइकिल, मोटरसाइकिल होती थी, तो लोग कहते थे "अच्छी बात है भाई, जरूरत पड़ने पर अपने भी काम आयेंगी।" परन्तु वर्तमान दौर में यदि उसके घर में मोटर साइकिल है, तो हमें कार लेनी है कि सोच पैदा करता है– बाजारवाद। वह आपको एक–दूसरे होड़ करके आगे निकलने की प्रेरणा देता है और इस माध्यम से खुद मुनाफा कमाता है। यश मालवीय तो *समय लकड़हारा* के एक नवगीत में स्पष्ट कहते हैं कि यह प्रेम–प्यार व ममता तक के सौदागर है –

प्रेम–प्यार, ममता करुणा के

ये सौदाई हैं

सम्वेदन के रथ पर बैठे

हातिमताई है

वस्तु बेचते, मरण–विस्मरण

याद बेचते है (88)

बाजारवाद न सिर्फ हमारा आर्थिक, शारीरिक अपितु मानसिक शोषण भी करता है। वर्तमान अर्थतंत्र, मात्र अमीर को अमीर करने एवं गरीब को गरीब करने के लिए बना है। यह सबको साथ लेकर चलने के लिए नहीं कहता है। यहाँ तो सब कुछ सिर्फ मैं, में सिमटकर रह गया है और इस भेड़चाल में फँसकर आम आदमी; उनके शोषण का शिकार हो रहा है।

3.3 वर्ग संघर्ष से उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन–

प्रारम्भिक अर्थव्यवस्थाओं में, समाज में सभी को साथ लेकर चलने का आह्वान था, पूँजी का इतना महत्व नहीं था। अधिकतर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं या अपने आस–पास के लोगों से, वस्तु विनिमय के माध्यम से कर लेते थे। धीरे–धीरे इस व्यवस्था में पूँजी का प्रारम्भ हुआ। औद्योगीकरण ने इसको और गति प्रदान करने में सहायता की। अब तक जो व्यक्ति हस्तकला, छोटे उद्योग या स्वयं के साधनों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता था, औद्योगीकरण ने इस परिघटना को बदलकर रख दिया। अब बना–बनाया माल, बाजार में भारी मात्रा में उपलब्ध होने लगा। मशीनीकरण ने उत्पादित सामान की गुणवत्ता में सुधार किया। इसमें समय भी कम लगने लगा। कम से कम समय में, अधिक माल बनने लगा। इन सभी कारकों ने हस्त उद्योगों पर बुरा असर डाला। अधिक पूंजी की चाहत में, व्यक्ति अपने परम्परागत कार्यों को छोड़कर मजदूर के रूप में कार्य करने लगे, धीरे–धीरे इस प्रक्रिया ने समाज में मालिक एवं मजदूर के रूप में दो वर्ग खड़े कर दिये। सर्वप्रथम कार्ल मार्क्स ने वर्ग विभाजन की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए, अमीरों के मुनाफे में शामिल गरीबों की मेहनत को इसका कारण माना। उन्होंने समाज में सर्वहारा वर्ग की स्थापना पर बल दिया, जहाँ पर सब समान हो। समाज में पूंजीवाद के उदय के साथ–साथ, सर्वहारा वर्ग की मान्यताऐं कमजोर पड़ने लगी और अमीर–गरीब के रूप में विभाजन और अधिक गहरा गया।

कालान्तर में इसमें मध्यम वर्ग नामक, एक नये वर्ग का उदय हुआ, परन्तु इसकी स्थापना से पूर्व ही, इसमें दो नये वर्ग बन गये उच्च मध्यम वर्ग, निम्न मध्यम वर्ग। उच्च मध्यम वर्ग उच्च वर्ग में शामिल होने की होड़ में है और निम्न मध्यम

वर्ग, कब निम्न वर्ग में शामिल हो जाता है, यह स्वयं उसे भी नहीं पता चलता है। इस वर्ग विभाजन के कारण, अमीर–गरीब के मध्य जो खाई बन गयी है, उस पर नवगीतकारों ने, अपने नवगीतों के द्वारा चेताया है। इसको व्यक्त करते हुए अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में मधुकर अष्ठाना लिखते हैं –

हुई पाँव अंगद का

न सदियों से तनिक खिसकी

वही आँसू, वही आहें

वही मजबूरियाँ–सिसकी

गरीबी तो व्यवस्था का

सफल उत्पाद है बाबू (106)

इस नवगीत में, गरीबी के उत्पन्न होने के कारण के रूप में, इस व्यवस्था को माना है और साथ ही यह किस प्रकार से अंगद के पाँव के समान जम गयी है, उसका वर्णन है। आज राष्ट्र की आजादी के 70 से अधिक सालों में भी, हम गरीबी नहीं मिटा पा रहे हैं। सरकारें तो चुनाव ही इसी मुद्दे पर लड़ती है, परन्तु वास्तविकता में सार्थक उपायो की एवं उनके क्रियान्वयन की इच्छा नहीं है। उस राजनीतिक दुर्बलता पर अजय पाठक अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* में लिखते हैं–

गाँव, गरीबों के हैं, जिनकी

अकथ कहानी है

आगे राजमहल की सड़कें

पीछे छूट गया जनपथ है (65)

गाँव कभी समृद्धि का उदाहरण हुआ करते थे, परन्तु आज गरीबी के उदाहरण बन गये हैं, क्योंकि सरकारे सम्पूर्ण सुख–सुविधायें, तो शहरों में निवास कर रहे अमीरों के लिए सुरक्षित रख रही है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण, वर्तमान

में कोरोना जैसी महामारी के समय में भी, सरकार द्वारा 20,000 करोड़ के संसद के पुनर्निर्माण कार्य को मंजुरी देना है। जहाँ गरीबों के लिए इलाज भी उपलब्ध नहीं है, वही राजधानी की सड़को को संवारा जा रहा है। इस विरोधाभास पर विनय मिश्र अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में लिखते हैं –

जहाँ गरीबी करती है

गलियों में नर्तन

आर्ट गैलरी में आँसू की

चहल पहल है (119)

यहाँ पर नवगीतकार उस पीड़ा को दर्शा रहा है कि गरीब के वास्तविक आँसुओं का कोई मोल नहीं है, परन्तु यदि यही आसुँ वाली फोटों या चित्र आर्ट गैलरीयों में पहुँचते है, तो वहाँ उनकी कीमत करोड़ो में हो जाती है। मनुष्य के आँसु भी बिकने लगे है। गरीब कि पीड़ा को भी, आनन्द कि नजर से देखते है; अमीर।

प्रारम्भ में युरोपीय राष्ट्रों ने एशिया एवं अफ्रीका के अनेक राष्ट्रों को उपनिवेश बनाकर, उनकी धन सम्पदा को लुटकर खुद को अमीर बनाया। धीरे–धीरे यह उपनिवेशवाद समाप्त हो रहा है, परन्तु इसके स्थान पर अब एक नया उपनिवेशवाद खड़ा हो रहा है। इसको व्यक्त करते हुए, अपने संग्रह *समय लकड़हारा* में यश मालवीय लिखते हैं–

छोटे–छोटे उपनिवेश है

छोटी–छोटी आँखे

है उत्तर आधुनिक पराते

सना अधसना आटा

आँख निकाले घूम रहे,

अंबानी बिड़ला टाटा (79)

अब राष्ट्र के अन्दर ही, अमीर व्यक्ति वही कार्य कर रहे है, जो कभी उपनिवेशक ताकते करती थी। इन्होंने अपने साम्राज्य खड़े कर लिये है और वहाँ पर गरीबों का शोषण हो रहा है। अमीर–गरीब के मध्य इस अन्तर, को अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

यह रईसों का

मुहल्ला है जरा

आवाज कम कर (48)

गरीब आदमी को; अमीरों के मोहल्ले में, जोर से बोलने कि भी मनाही होती है। इस वर्ग विभाजन में पीड़ा केवल गरीब के हिस्से आती है। इस वर्ग विभाजन के कारण उसे क्या–क्या सहना पड़ता है, इसका वर्णन करते हुए यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

हाथ काट लेते है

ऐसे हथकंड़े हैं

सड़कों पर आग–धुआँ

पर चूल्हे ठंड़े हैं (76)

गरीब व्यक्ति के घर पर चुल्हें की आग सदैव ठण्डी ही रहती है। कभी–दिन में एक बार, कभी कभी तो पुरे दिन, उस चुल्हें में आग नहीं जलती है, परन्तु चुल्हें में आग जले या ना जले, पेट में आग तो जलती है। पेट कि यह आग, गरीब को कितना झुकाती है, इस पर बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

चटनी की खातिर

बुधिया ने

दो अमिया क्या तोड़ी

परधानी ने

बाँह पकड़ ली

और कलाई मोड़ी (62)

मात्र एक आम के लिए, गरीब आदमी की पिटाई हो सकती है, क्योंकि इससे अमीरों का अहं सन्तुष्ट होता है। इस पिटाई से बचने के लिए, वह उन कार्यों में लग जाता है, जिनसे उसका बचपन नरक बन जाता है। इसी को व्यक्त करते हुए, पुनः बृजनाथ श्रीवास्तव लिखते हैं–

अम्मा के संग

बीन रहे जो

कूड़ा पालीथीन

और पिटारी

लिए साँप की

बजा रहे जो बीन

बचपन के दिन

ट्रेनों में जो

नट के खेल करे (49)

गरीब का बचपन तो होता ही नहीं है। वह तो माँ कि गोद से सीधा व्यस्क बनकर कार्य करने लग जाता है। उसके लिए वह उस कचरे को ऊठाता है, जिसे अमीरों ने फैलाया होता है। क्योकि अमीरों ने इनको, इनका हक नहीं दिया है। परन्तु इनकी मेहनत से जो सफलता मिलती है, उससे अपने ऐशो–आराम के साधन जुटाना अमीरों को बखुबी आता है। इसको नवगीतकार रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में इस प्रकार से लिखते हैं–

आसमान का सीना चीरें

स्वर्णाकित हैं भाग्य–लकीरें

थूकदान चाँदी का रखते

सोने की है इनकी थाली

अमीर–गरीब के मध्य के वर्ग विभाजन को, सटीकता से व्यक्त करता है, यह नवगीत। एक तरफ समाज का वह वर्ग है, जिसमें सुख–सुविधाओं के नाम पर पैसा लुटाने कि होड़ रहती है। वही दुसरी तरफ वह वर्ग है, जिसको भरपेट खाना भी मयस्सर नहीं है, अन्य सुविधाओं कि बात तो न ही करे, तो अच्छा है।

3.4 वर्तमान आर्थिक स्थितियों का आक्रोशात्मक भाव से वर्णन–

वर्तमान अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद की जगह सर्वोच्च है, परन्तु यह व्यवस्था अनेक खामियों से परिपूर्ण है। जहाँ एक तरफ यह समाज में अमीर–गरीब के मध्य कि खाई को बढाती है, वही दुसरी और यह गरीबों के शोषण को भी बढ़ाती है। इस प्रकार के अर्थतन्त्र में कुछ विशेष व्यक्तियों, कम्पनियो, घरानो तक ही पूँजी का प्रवाह या जमाव सुनिश्चित हो जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था के प्रति आक्रोश या विरोध के स्वरों को, नवगीतकारों ने अपने नवगीतो के माध्यम से उठाया है। साहित्यकार समाज में हो रहे, किसी भी प्रकार के भेदभाव एवं शोषण का विरोध अपनी कृतियों के माध्यम से ही करते रहे हैं। यही साहित्य का सही उद्देश्य भी प्रदर्शित होता है। इसे निभाने में अन्य विधाओं कि भाँति ही, नवगीत भी अपने अन्दर इन्हीं गुणों को समाहित करता है।

आधुनिकिकरण के नाम पर, किस प्रकार हमने हस्त कला को समाप्त कर दिया है, इस पर माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* के नवगीत में लिखते हैं–

हाथ से कारीगरीं के

छीन ली हमने कुदालें

भूख से व्याकुल समय को

अब समय कैसे सम्भाले (19)

माधव कौशिक इस संग्रह के अन्य नवगीत में, क्रांति के ठण्डे पड़ने कि पीड़ा पर आक्रोशित होकर लिखते हैं–

लाल रंग के झंडे सारे

श्वेत हो गए पल में

आदमकद तस्वीरें सारी

हुई विसर्जित जल में

अब तो मन में ज्वाला बची न

बचा खाल पर चाम (58)

कभी मजदूर, किसान के हक कि लड़ाई लड़ने का दंभ भरने वाले, कब बदल गये, पता ही नहीं चला। अब तो उनके अन्दर न वह साहस है और न ही वह आग है, जिससे इस पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विरोध में, वह खड़े हो सके और उन किसानों एवं मजदूरों को उनका हक दिला सके, जिनके नेता होने का वह दंभ भरते है। चारों ओर लगाये जा रहे उदारीकरण के नारों पर कटाक्ष करते हुए, मधुकर अष्ठाना एक अन्य नवगीत में लिखते हैं–

कही उदारीकरण

हमे नंगा न कर दे

जिसे देखिए वही

बना यूरोप निवासी

मां बोली की उतरी चोली

हुई खलासी (15)

उदारीकरण के नाम पर, अपने सभी संसाधनों को विदेशी ताकतों को बेचने कि प्रवृति का उद्धाटन करता है; यह नवगीत। यहां यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि अंग्रेजो ने भी हमे व्यापार करके ही गुलाम बनाया था। कही यह उदारीकरण कि बाढ़, एक बार फिर से हमें गुलाम न कर दे। आज जिसे देखिए वह अपनी

मातृ–भाषा, यहाँ के खान–पान, यहाँ कि संस्कृति को यूरोपिय रंग–ढ़ंग के सामने तुच्छ समझने लगा है। अपने मूल्यों को तुच्छ समझने की जो परम्परा चल रही है, उस पर प्रहार करता है; यह नवगीत।

भारत कि पूर्व प्रधानमन्त्री स्व. इन्दिरा गाँधी ने 'गरीबी हटाओं' का नारा दिया था। उसके पश्चात प्रत्येक आम चुनावों में, यह नारा किसी न किसी रूप में नजर आने लगता है। परन्तु क्या खोखले वादो से गरीबी मिटती है। इस पर तंज कसते हुए अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* में अजय पाठक लिखते हैं –

वादे खाकर भूख मिटाते

आँसू पीकर प्यास

हम करते हैं पेट काटकर

जीने का अभ्यास (28)

खोखले वादों से पेट भरने की पीड़ा को व्यक्त करता नवगीत समाज कि उस सच्चाई को सामने लाने का प्रयास कर रहा है, जिसमें गरीब आदमी एक वक्त के भोजन के द्वारा ही जीवनयापन करने को विवश है। इस गरीबी को हटाने के नाम पर हमारे नेतागण क्या–क्या करते है, यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में आक्रोश व्यक्त करते हुए लिखते हैं–

बेच रहे ईमान

देश भी बेच दिया है

हमने ही इस धरती को

बाजार किया है (149)

मनुष्य ने अपने लोभ लालच में आकर सब कुछ बेच दिया हैं, कहीं बिजली लाने के नाम पर कोयले कि खदानों को बेचा जा रहा है, कहीं हमारे बाजार को उदारीकरण के नाम पर खोला जा रहा है। इसके परिणाम क्या होंगे, इस पर

बृजनाथ श्रीवास्तव के नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* का यह नवगीत प्रकाश डालता हैं–

बिस्तर पर जापान बिछा है

अलमारी में चीन

खाने की मेजों पर बैठा

अमरीकी नमकीन

बीमा, बैंक

विदेशी है अब

हम कौड़ी के तीन (78)

जब आप सब कुछ विदेशी ही खरीदेगे तो, देश कि अर्थव्यवस्था कैसे मजबुत होगी। इसी विदेशी के शौक ने आज हमारे देश के लघु, मध्यम एवं छोटे उद्योगों को नष्ट कर दिया है। इस नुकसान पर चेतावनी देते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव लिखते हैं–

मुहर विदेशी नाम स्वदेशी

जूता पहने पाँव में

आज नहीं तो कल डूबेगी

छेद हुआ जो नाव में (84)

यदि हम नहीं चेते तो, हमारा क्या और कितना नुकसान हो सकता है, इसका सबसे अच्छा उदाहरण है– चीन। आज चीन हमसे कमाकर, हमे ही आँखे दिखा रहा है। क्योंकि हमने सस्ते के फेर में पड़कर, अपने उद्योगों को नष्ट कर दिया है और अब हम चीन के सामान को खरीदने के लिए मजबुर है। इससे सैन्य शक्ति एकत्र करके चीन हमें ही आँख दिखाता है। विदेशी सामान का मोह हमारी अर्थव्यवस्था के विदेशी मुद्रा भण्डार को भी निगल लेता है। इसका कारण है, हमें विदेशो को डॉलर में भुगतान करना पड़ता है, जिससे हमारा विदेशी मुद्रा भण्डार

कम होता है और रूपये का अवमूल्यन होता है। रूपये का यह अवमूल्यन महँगाई को बढ़ाता है। इस प्रक्रिया को बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह रथ इधर मोड़िये के नवगीत में इस प्रकार समझाते हैं–

भाव बेलगाम

रोज–रोज गिरते है

रूपये के दाम (90)

इसी अर्थव्यवस्था कि टुटन पर ओमप्रकाश सिंह भी अपना आक्रोश प्रकट करते हैं। वह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

टुट रही है

अर्थ व्यवस्था

फिर अभाव के गाँव में

चुभने लगी

बेवाई पथ पर

लूले–लँगड़े पाँव में (65)

वैश्वीकरण की इस मार पर रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* के एक नवगीत "वैश्वीकरण पधारे है" के माध्यम चोट करते हुए लिखते हैं–

अपने रमुआ को लेंगे

अपना दरबान लगा

सोचो,

पगड़ी बेचो बस

फिर समझो वारे न्यारे हैं

मंदिर की जमीन पर

उठ जायेगा/मॉल नया (111)

यह सम्पूर्ण नवगीत वैश्वीकरण की पोल खोलने हेतु ही रचा गया है। इसमें एक तरफ पश्चिमी के लोगों के द्वारा हमारी प्रत्येक वस्तु को खरीदने का डर है। वह गोधन, गोरस, गाय, गोरसी, तुलसी चौरे सब कुछ खरीदने को लालायित है। साथ ही उनके द्वारा हमारी जमीनों को हड़पने की पीड़ा भी है, परन्तु इन सबसे भी अधिक है, इसमें अपनी इज्जत दाव पर लगने का डर। इसी नवगीत के एक अन्य पद में वह इस डर को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

भाभी के घूँघट के बदले

देंगे पक्की छत (112)

यह सबसे बड़ी बिडम्बना भी है कि पश्चिमी संस्कृत हमारी संस्कृति के मूल्यों का नष्ट कर देगी, अपने पैसे के बलबुते पर और हमें बदले में क्या मिलेगा, हम उनके दरबान बनकर, उनके लिए दरवाजा खोलने का कार्य करेंगे। यह नवगीत हमें एक बार फिर गुलामी के दिनों की याद दिलाता है और सचेत करने का प्रयास भी करता है।

वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद इसे चाहे जो कह ले, परन्तु इस सब में, शोषण ही होता है। यह शोषण मात्र आपके धन, मूल्यों, आदर्शों का नहीं है, यह मनुष्य के व्यक्तित्व को किस प्रकार नष्ट करता है इसको ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* लिखते हैं –

फ्रिज, फिल्टर, टेलीविजन

क्या नहीं है पास

व्यक्ति के व्यक्तित्व का

पर हो रहा है ह्रास (97)

मात्र सुख सुविधा के साधनों की एकत्र करने के लिए, किस प्रकार हम अपने व्यक्तित्व का नाश कर रहे है, यह इस नवगीत के माध्यम से स्पष्ट होता है। यदि

आप उनके गुलाम हो जायेंगे, तो फिर कैसा व्यक्तित्व और कैसी आपकी भावनायें। उनके लिए आप मात्र एक साधन है, जिसका वह जैसे चाहे प्रयोग करे।

भारत में एक समृद्ध चिन्तन परम्परा सदैव से विद्यमान रही है, उसके अपने मूल्य थे। अंग्रेजो के शासन ने इस चिन्तन परम्परा को न सिर्फ बाधित किया, अपितु हम पर अपना चिन्तन भी थोप दिया था। भले ही हम अंग्रेजों से शारीरिक रूप से आजाद हो गये हो, परन्तु आज भी हम उनके मानसिक गुलाम है। इस मानसिक गुलामी को अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे है धूप चुनते* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

मूक–बधिर–सा

ठगा खड़ा है

मौलिक जीवन–दर्शन

बढ़कर आगे

बोल रहा अब

मैकाले का चिंतन (92)

वर्तमान परिदृश्य में यह नवगीत खरा उतरता है, तभी तो आजादी के 70 सालों के बाद भी, हम हिन्दी को राष्ट्र भाषा का दर्जा नहीं दिला सके हैं। हमारी कानून व्यवस्था में भारतीय भाषाओं को लागू नहीं कर सके हैं। डॉक्टरी, अभियान्त्रिकी की पढ़ाई अंग्रेजी में कर रहे हैं। अब शायद हम यह सब चाह कर भी सही नहीं कर सकते है, क्योंकि वर्तमान अर्थव्यवस्था ने हमारे चिंतन पर अंग्रेजों के समान ही कब्जा कर लिया है। इसके लिए अवनीश त्रिपाठी आगे लिखते हैं–

चिंतन भी तो

अर्थवाद से

हो बैठा इंस्पायर (93)

जब हम उनकी भाषा में सोचेंगे, जिसे वह अच्छा कहेंगे उसे अच्छा मानेंगे, तो फिर मौलिकता कहाँ से आयेगी।

1947 में आजादी के पश्चात्, प्रारम्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था समाजवादी थी। 1990 के आर्थिक सुधारों के पश्चात्, यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बदल गई। इस परिवर्तन से अर्थव्यवस्था में प्रगति दिखाई पड़ने लगी। वैश्विक आयात–निर्यात बढ़ने लगा। उद्योगपति नये, नये उद्योग लगाने लगे। परन्तु समय के साथ–साथ इसके दुष्परिणाम भी नजर आने लगे। अर्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया। उद्योगपति अपने हिसाब से नियम बनाने के लिए राजनेताओं को रिश्वत देने लगे। इससे भ्रष्टाचार बढ़ने लगा। अमीर–गरीब के मध्य खाई बढ़ने लगी। नवगीतकारों ने अपने नवगीतों के माध्यम से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पक्ष को उजागर किया है। उन्होंने अपने नवगीतों में इस व्यवस्था से उत्पन्न, वर्ग भेद के सर्वाधिक निचले स्तर पर खड़े व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए, अपने नवगीतों के स्वर में उन्होंने आक्रोश का भाव रखा है।

अध्याय 4

21वीं सदी के नवगीतों में राजनीतिक युगबोध

मानव सभ्यता जंगलों से, कबीलों में, कबीलों से, गाँवों और नगरों में, नगरों से महानगरों तक, के विकास क्रम में आगे बढ़ती हुई आ रही हैं। प्रारम्भ में शासन, प्रशासन जैसी व्यवस्था नहीं थी। धीरे–धीरे सभ्यताओं के विकास और मनुष्य के एक स्थान पर जुड़नें, उनमें आपसी समन्वय विकसित करने हेतु, कबीलों में मुखिया, सरदार, प्रधान आदि, की व्यवस्था का जन्म हुआ, यह प्रणाली कालान्तर में राजशाही में परिवर्तित हो गयी। जहाँ राजा का बेटा, राजा बनता था। औद्योगिकरण और युरोपिय राष्ट्रों में राजशाही के विरोध में हुई क्रान्तियों ने, राजाओं के हाथ से शासन छिनकर, चुनी हुई सरकारों के हाथ में आ गया। इन सबसे निकलकर आई व्यवस्था है–लोकतन्त्र। इस प्रकार कि शासन व्यवस्था को, श्रेष्ठ शासन माना गया। इस शासन व्यवस्था में, आम जनता का महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि इस व्यवस्था का उद्देश्य ही है, जनता कि शासन में हिस्सेदारी। जहां तक लोकतन्त्र की परिभाषा का प्रश्न है, अब्राहम लिंकन द्वारा दी गई परिभाषा–"जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन" ही सर्वाधिक मान्य और प्रामाणिक है। लोकतन्त्र में जनता अपने नुमाईंदे स्वयं चुनती हैं और उनका एकमात्र कार्य जनता की प्रगति होता है।

4.1 राजनीतिक भ्रष्टाचार का वर्णन

भारत में भी लगभग यही क्रम, शासन व्यवस्था का रहा है। मध्यकाल में यहाँ छोटे–बड़े, अनके राजा–रजवाड़ो का शासन था। उसके पश्चात लगभग 200 वर्षों तक राष्ट्र अंग्रेंजो का गुलाम रहा। 1947 में आजादी के पश्चात भारत ने लोकतन्त्र कि व्यवस्था को अपनाया। भारतीय राजनेताओं ने आजादी के लिए जो संघर्ष जनता के साथ मिलकर किया था, उससे उनकी निष्ठा व देशप्रेम के प्रति शंकाए नहीं थी। भारत ने भी कुछ अपवादो (आपतकाल) को छोड़कर लोकतन्त्र कि रक्षा की है। आजादी के पश्चात एक परिवर्तन जो बहुत कष्टदायक है, वो आया यहाँ के राजनेताओं कि कर्त्तव्यपराणयता और देशप्रेम में। अब वह देशहित से पूर्व, अपने हित देखने लगे। इसने उत्पन्न किया राजनीतिक भ्रष्टाचार को। भारत में बोफोर्स घोटाला राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रथम बड़ा उदाहरण माना जाता है। इसके

पश्चात तो इतने घोटाले उजागर हो रहे है, जिनको गिनना भी मुश्किल है, रोज एक नया घोटाला खबरो में आ जाता है। नवगीतकारो ने नवगीत के माध्यम से न सिर्फ इन घोटालों पर लिखा है, अपित इससे उत्पन्न होने वाले खतरो की ओर भी इशारा किया है। रोज–रोज होने वाले घोटालों पर माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

रोज नये षड्यंत्र

यहां पर

नये–नये नित घपले

चारा, खाद, चाय

या चीनी

पनडुब्बी, ताबूत

घूम रहा है

नंगम नंगा

बना तहलका भूत (83)

इस नवगीत के माध्यम से वह घोटालें के साथ–साथ, उनके हर क्षेत्र में फैले होने का भी वर्णन करते हैं। नेताओं ने भ्रष्टाचार के लिए नये–नये मार्ग खोज लिए है। इसका सबसे शर्मनाक उदाहरण है, कारगिल युद्ध में शहीद हुए जवानों के लिए खरीदे गये ताबुतो में घोटाला, जो जवान देश की सुरक्षा के लिए अपना सर्वोच्च बलिदान देते हैं, आप उनके ताबुतों का भी पैसा देखते हैं, यह शर्मनाक है। यहाँ तो मनुष्य छोडिए, पशुओं के चारे तक में घोटाला है। भ्रष्टाचारों के इस पनपते जंगल पर ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

फसलें

उगने लगीं चमन में

भ्रष्टाचारों की (17)

वर्तमान व्यवस्था में, राजनीति में भ्रष्टाचार उसी प्रकार विलय हो गया है, जैसे नदी का जल समुद्र में मिल जाता है। आज राजनेता रूपी नदी में बैठा, हर नेतागण समुद्र रूपी भ्रष्टाचार के सागर में, गोता लगाना चाहता है। चाहे इसके लिए उन्हे अपने सिद्धान्तों को भी छोड़ना पड़े। इसे अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में ओमप्रकाश सिंह अपने एक अन्य नवगीत में इस प्रकार लिखते हैं–

सिद्धांतो के

पंख तोड़कर

भ्रष्टाचार खड़ा

आदर्शो के

दरवाजे पर

फिर यथार्थ बिगड़ा (149)

सिद्धान्त की राजनीति करने वाले राजनेता, अब अगुँलियो पर गिने जा सकते हैं। अब तो राजनीति का एक ही उद्देश्य है, भ्रष्टाचार के माध्यम से अपने हितो को सुरक्षित करना। इसके लिए सिद्धान्तों को छोड़ना, तो सबसे पहला कदम है, इसके लिए और क्या–क्या छोड़ दिया जाता है, उस पर यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

बेच रहे ईमान

देश भी बेच दिया है,

मत पूछो सब पर

कितना एहसान किया है (149)

अब तो सिद्धान्त, ईमान, कर्त्तव्य, सेवा जैसे मूल्यों का राजनीति में कोई स्थान नहीं है, यहाँ तो मौका मिलने पर देश को भी बेचा जा सकता है। वर्तमान परिदृश्य में राजनेताओं के इस व्यवहार पर रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* लिखते हैं–

दाग चादर में लगे इतने

कि गिनना भी कठिन है

रह गया है अब,

कबीरा का नहीं ईमान कोई (91)

इन दागों को न गिन पाने कि पीड़ा इस नवगीत में व्यक्त होती है। जहाँ रोज किसी नये घोटाले का उद्घाटन होता है, पंच से लेकर पंत प्रधान तक सब पर उँगलियाँ उठती है। उस राष्ट्र को घोटालो का राष्ट्र कहने से, हम कैसे रोक पायेंगे। राष्ट्र की गिरती साख कि इस पीड़ा को बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में व्यक्त करते हैं–

साख गिरी है,

लोग कहें यह

घोटालों का देश

बड़े सयाने

काला धन वे

करते जमा विदेश (111)

इस नवगीत में, घोटालों से राष्ट्र को हो रहे दोहरे नुकसान को लक्षित किया है। प्रथम तो रोज–रोज, नये–नये घोटालों के कारण राष्ट्र कि साख, अर्न्तराष्ट्रीय परिदृश्य में वैसे ही कम हो रही है। इसका उदाहरण है कि इन घोटालो के कारण ही हम सर्वाधिक भ्रष्टाचार वाले राष्ट्रों कि सूची में स्थान प्राप्त करते हैं। जर्मनी स्थित संस्थान ट्रांसपेरेन्सी इन्टरनेशनल के द्वारा जारी कररप्शन परसेप्शन इण्डेक्स (CPI) रिपोर्ट में दुनिया में भारत को 86 वां स्थान मिला है।

इससे एक ओर नुकसान राष्ट्र को उठाना पड़ता है, यहाँ कि धन–सम्पदा का विदेशी बैंको में जमा हो जाना। राष्ट्रो को लुटने कि प्रवृत्ति गौरी, गजनवी, अब्दाली से होते हुए अंग्रेंजो तक, सब में समान रूप से रही है, परन्तु यह सब तो

बाहरी आक्रमणकारी थे। वर्तमान में हमारे स्वयं के नेता, अपने ही राष्ट्र को लुटकर खोखला कर रहे हैं।

इस राजनीतिक परिदृश्य में राजनेताओं का लक्ष्य होता है, अधिक से अधिक शोषण करके अपना लाभ कमाना। पहले राजनेताओं के द्वारा बड़े–बड़े वादे किये जाते हैं, इसके लिए वह चुनाव के समय आपके पास आते है, आपसे प्रेम जताते हैं। नेताओं के इस दोगले व्यवहार पर अवनीश त्रिपाठी के नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* का यह नवगीत सटीक बैठता है–

टूटी खटिया पर नेता जी

बैठ रहे हैं जान–बूझकर

खेत और खलिहान झूमते

बोतल, वादे, हरी नोट पर (47)

चुनाव के समय वह आपके घर खाना खाते हैं, आपके पैर पकड़ते हैं, आपको गले लगाते हैं, बड़े–बड़े वादे करते हैं। इसके लिए बड़े–बड़े रथ बनावाकर, गाँव–गाँव में रथ यात्राये निकालते हैं। जब तक विपक्ष में रहेंगे, तो आपके हित के प्रश्न उठाते रहेंगे, क्योंकि उन्हें सत्ता में आना है। नेताओं के इस दोगले व्यवहार को बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोडिये* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

क्षत्रप टोली के संग बैठे

मन में ले विश्वास

शून्यकाल में प्रश्न उठाने

उनको कुछ हैं खास (91)

इस कार्य में सिर्फ विपक्ष ही शामिल नहीं, सत्ता पक्ष भी चुनाव के समय यही करता है, क्योंकि उन्हें भी सत्ता का सुख और भोगना है। इस परिस्थिति को

अवनीश त्रिपाठी व्यक्त करते हुए, अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में लिखते हैं–

कौरव–पाण्डव दोनों का ही

लक्ष्य बना है वोटर

साहब से युवराज तलक सब

रहने लगे अधीर। (116)

सत्ता पाने कि लालसा सभी में एक समान हैं, क्योंकि अन्तिम लक्ष्य तो सत्ता पाना ही है। सत्ता पक्ष में यह डर कुछ ज्यादा होता है, क्योंकि वह अपनी शक्ति खोना नहीं चाहते हैं। सत्ता पक्ष की इस चिन्ता को अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते है–

फिर 'राजा' बनने की चिन्ता

राजा को हर पल (25)

इस कार्य में सभी एक हैं। यहाँ पक्ष–विपक्ष में कोई भेदभाव नहीं है। प्रत्येक पद पर बैठा व्यक्ति, अपनी हिस्सेदारी पाने की चाहत में, एक हो जाता है। इस पर ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में कहते हैं–

सरपंचो से

मुखिया तक की

बोली एक हुई (31)

वर्तमान परिदृश्य में, जब भ्रष्टाचार का मौका मिलता है, तो सारा तन्त्र ऊपर से नीचे तक एक हो जाता है। सभी अपना हिस्सा प्राप्त करने की चाहत में चुप हो जाते है और यदि कोई विद्रोह कि भावना दर्शाता है, तो उसे चुप करवा दिया जाता है। समस्त विचारधारों का समन्वय, भ्रष्टाचार उस प्रकार से कर देता है, जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र में मिलकर एक हो जाती है। राजनीतिक विचारधाराओं के

इस मिलन पर अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

'राजा' और सिर्फ 'राजाओं'

का पूरा सम्वर्ग

सुख सुविधाएँ और दक्षिणा

चाहें 'दक्षिण' 'वाम'

मन में बसी हुई है गद्दी

राजमहल की शान (36)

जहाँ पर सत्ता पर; अधिकार जमाकर शोषण करने की बात हो, वहाँ पर सभी विचारधाराएं समान है। वहाँ पर न कोई दक्षिणपंथी है, न वामपंथी है। इस होड़ पर अपने नवगीत संग्रह *सच कहा तुमने* नचिकेता लिखते हैं–

कैसे खुलती

पोल चुनावी वादों–नारों की

गद्दी हथियाने की

होड़ लगी सुलतानों में (59)

4.2 वर्तमान समय के राजनेताओं की स्वार्थपरकता का वर्णन

ऊपर लिखित वर्णन से, नेताओं के द्वारा किये जाने वाले भ्रष्टाचार और लालच के वशीभूत होकर, किये जाने वाले घोटालों का, नवगीत के माध्यम से वर्णन किया गया है। राजनेताओं को यह भ्रष्टाचार और अपने लिए सुख, सुविधाओं को प्राप्त करने कि चाहत, उन्हें स्वार्थपरकता के उस दलदल में घसीट ले जाती है, जहाँ वह स्वार्थ के वशीभूत होकर, कुछ भी करने को तैयार हो जाता है, चाहे इसके लिए उसे अपने सिद्धान्तों को छोड़ना पड़े, पार्टी या विचारधारा का त्याग करना पड़े, असामाजिक तत्वों से हाथ मिलाना पड़े, समाज में वैमनस्य, साम्प्रदायिकता का जहर घोलना पड़े। वह सब कुछ करने को तैयार रहता है।

स्वार्थ के वशीभुत होकर वह संसद, संविधान, लोकतन्त्र कि मान–मर्यादाओं को भी नष्ट करने पर आमादा रहता है। मौका मिलते ही इनको किनारे करके, अपनी वैतरणी पार लगाने में लग जाता है। इनके कुकृत्यो को नवगीत में बहुत स्पष्टता से, नवगीतकारों ने वर्णन किया है।

समाज में अपनी स्वार्थपूर्ति और सत्ता कि लालसा में, सबसे पहले राजनेताओं द्वारा वैमनस्य का जहर समाज में घोला जाता है। जिससे वोटर अपने झगड़ो में ही पड़े रहे और इनकी ओर किसी का ध्यान न जाये। राजनेताओं कि इस प्रवृत्ति को नवगीतकारों ने अपने रचना कर्म में स्थान प्रदान किया है। अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

हिंसा और घृणा की 'घुट्टी'

राजा पिला रहा,

यह 'अफीम' का नशा, भरोसा

राजा को इस पर (25)

वर्तमान परिदृश्य में राजनेता समाज को हिंसा एवं घृणा परोस रहे हैं। राजनेताओं का मानना है कि समाज को खोखला करने के लिए यह सबसे उपयुक्त हथियार है। उनको इसपे पूर्ण रूप से भरोसा है और मतदाता उनके इस जाल में फंस भी जाते हैं। बँटवारे की इस प्रक्रिया पर ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

सोने की

चिड़िया के आंगन

अब बबूल के कांटे

लोकसभा से

राज्य सभा तक

अंगुल–अंगुल बांटे (95)

कभी भारतवर्ष सोने की चिड़िया कहलाता था, परन्तु आज नेताओं ने उसके आँगन में बबूल के कांटे बो दिये हैं, ये काँटे हमें आपस में बाँट रहे हैं। सत्ता पाने के लिए यह राजनेता, किस प्रकार साम्प्रदायिकता (धार्मिक) को फैलाते हैं, उस पर यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

सल्तनत के लिये तरकीबे निकाले हैं

बात आखिर क्या करेगे बंद ताले हैं

क्रूर तेवर देखिए भेड़ियों वाले हैं

हाथ में तिरशुल है, बर्छियाँ भाले हैं (128)

ये सत्ता पाने के लिए, हमारे हाथों में त्रिशुल और भाले दे देते हैं। इस गठजोड़ को अजय पाठक भी अपने संग्रह *मन बंजारा* के एक नवगीत में लिखते हैं–

धर्म–कर्म की बात बताकर

आपस में लड़वाये

रोजी–रोटी का झाँसा दे

चले सियासी चाल (19)

इस नवगीत में, हमें साम्प्रदायिकता के कारणों की भी झलक मिलती है। यह राजनेता हमे रोजी–रोटी का झाँसा देते है और यह भ्रम फैलाते है, तुम्हारा हक फंला खा रहा है, तुम अगर अपना हक चाहते हो, तो उसको मार दो, कुचल दो। इस प्रकार का भ्रमजाल फैलाकर, वह अपनी सियासी चालो में हमे मोहरे की तरह इस्तेमाल करते हैं। इस जहर से किसे सर्वाधिक नुकसान होता है, उस पर माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह जोखिम भरा समय है में इस प्रकार लिखते हैं–

देशभक्त

सब भूखे नंगे

शहरों में

मजहब के दंगे (94)

जब जनता अंधभक्त होकर, नेताओं का अनुसरण करने लगती है, तो उनका स्वार्थ तो सिद्ध हो जाता है, परन्तु देश एवं देश के सच्चे हितैषी, वहाँ तक नहीं पहुँच पाते हैं, जहाँ से वह इस राष्ट्र को स्वयं से ऊपर रखकर; इसका विकास कर सके। इस तरह का वैमनस्य वह मात्र जाति या धर्म के नाम पर ही नहीं फैलाते है, इसके एक अन्य आयाम को व्यक्त करते हुए नचिकेता अपने संग्रह *सच कहा तुमने* में लिखते हैं–

इसके मानचित्र पर

जाति–धरम का दाग लगा

भाषाई–झगड़े का शोला

जहाँ–वहाँ भड़का (155)

'सोने कि चिड़िया' शीर्षक वाले इस नवगीत के माध्यम से, वह इस राष्ट्र के मानचित्र पर जाति और धर्म के नाम पर होने वाले दंगो के जो दाग है, उनको व्यक्त कर रहे हैं। भारत एक विशाल राष्ट्र है। यहाँ पर अनेक भाषाएँ, बोलियाँ एवं उपबोलियाँ बोली जाती है। हमारे संविधान ने भी अपनी 8वीं अनुसुची में किसी एक भाषा को स्थान न देकर, 22 भाषाओं को सम्मिलित कर रखा है। जो इस राष्ट्र के भाषाई संपदा के अकुत भण्डार को दर्शाती है, परन्तु राजनेता अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु भाषा के आधार पर भी झगड़े करवा देते हैं। चाहे वह उत्तर भारतीय (हिन्दी भाषी) समाज को, अंग्रेंजी को हटाने के नाम पर बहकाना हो (वास्तविक में वह इसे नहीं हटाना चाहते हैं), चाहे दक्षिण भारत के प्रांतों में 'हिन्दी से खतरा' है, के नाम पर दंगे करवाना हो। इनके स्वार्थों की पूर्ति हेतु, यह कभी राजस्थानी को संविधान में सम्मिलित करने के नाम पर दंगे करवाते है, कभी भोजपुरी को सम्मिलित करवाने के नाम पर। यह मात्र जनता की भावनाओं को भड़काकर, अपने स्वार्थ सिद्ध करने का तरीका है। वास्तव में कुछ नहीं करते हैं।

राजनेताओं की स्वार्थ लोलुपता का सबसे भंयकर उत्पादन है, राजनीति और असामाजिक तत्वों का हाथ मिलाना। प्रत्येक नेता को अपने लिए किसी 'राजा भैया', 'मुन्ना भैया', 'सहाबुद्दीन' की आवश्यकता होती है, जिससे वह जनता में आंतक फैला सके। धीरे–धीरे यही 'राजा भैया', 'मुन्ना भैया' आदि, स्वयं राजनीति में आकर; राजनीति और अपराध जगत का एक ऐसा गठजोड़ बना देते हैं कि इसका तोड़ निकाला नामुनकिन हो जाये। राजनीति के इस बढ़ते अपराधीकरण पर माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

बन गया जंगल

असल दंग सियासी

ले रहे है चोर

शाहों की तलाशी (81)

इस गठजोड़ के कारण, सियासत जंगलराज बन गई है। शरीफ व्यक्तियों की तलाशी, चोर ले रहे हैं। इस गठजोड़ को व्यक्त करते हुए अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में विनय मिश्र लिखते हैं–

तेवर तेजाबी है

गुंड़ो का राज

शासन की देखी है

ठकुराई आज (40)

राजनेता इन गुंड़ो व असामाजिक तत्वों के साथ गठजोड़ करके ही, अपनी ठकुराई दिखाते हैं। धीरे–धीरे कालान्तर में ये असामाजिक तत्व, स्वयं राजनीति में आ जाते हैं। इस पर ओमप्रकाश सिंह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* संग्रह में लिखते हैं–

अब तो सिंहासन के पीछे

नकली चेहरे खड़े हुए है

कल थे जो

अपराध जगत में

राष्ट्रप्रेम में सने हुए है (19)

इस नवगीत ने इस गठजोड़ की आपसी समझ को खोल दिया है। असामाजिक तत्वों के माध्यम से कुर्सी तो प्राप्त हो जाती है, परन्तु कुछ समय के पश्चात वही असामाजिक तत्व, कुर्सी के पीछे से शासन चलाने लग जाते हैं। उन्हें भी तो सेवा के बदले मेवा चाहिए होता है। इस गठबँधन को बिम्बात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में लिखते हैं–

साँठ–गाँठ

अच्छी है अब तो

चूल्हे से लकड़ी तक

रहा नहीं

अवशेष हाथ कुछ

उतर गई पगड़ी तक (72)

इसी प्रकार के प्रयोग को अपने एक नवगीत में करते हुए, बृजनाथ श्रीवास्तव अपने संग्रह *'रथ इधर मोडिये* में लिखते हैं–

जब से शामिल हर दल में

बाजो के झुंड हुए

रक्त गंध स्वाहा से पूरित

बलि के कुंड हुए (87)

असामाजिक तत्वों के शामिल होने से, राजनीति केवल रक्त रंजित होकर रह गई है। इस असामाजिक तत्वों का दखल, राजनीति में कितना बढ़ गया है, इस पर वह लिखते हैं–

घुसकर पिछले दरवाजे से

करें मशविरा चोर

जिये जमाने से गणिका सी

राजनीति बदजात (102)

वर्तमान परिदृश्य में राजनीति की अवस्था मात्र 'गणिका' के समान रह गयी है। असामाजिक तत्व पिछले दरवाजे से आते है और राजनेताओं को सलाह देते हैं। नेतागण उनकी सलाह मानते भी है, क्योंकि वह अपने कार्यों के बलबुते पर तो चुनाव जीत नहीं सकते हैं। अतः उन्हें भी इन असामाजिक तत्वों का साथ कुर्सी पाने के लिए अनिवार्य है। यह क्रिया इस हाथ ले, उस हाथ दे के माध्यम से दोनों पक्षो के स्वार्थों को पूरा करती है। इस याराने को रामस्नेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

साँप और न्यौले की यारी

गूँज रही है जय–जयकारी (52)

इस साँप नेवले की यारी और राजनेताओं के दोहरे चेहरे पर, यशोधरा राठौर भी अपने नवगीत संग्रह *जैसे धूप हंसती है* में लिखती हैं–

भेड़िये है

भेड़ कि ही खाल ओढ़े

सांप–नेउर प्यार से मुंह

रहे जोड़े (35)

जब असामाजिक तत्वों को सत्ता में आना होता है, तो वह अपने को बहुत ही शरीफ और शांत प्रवृत्ति का दर्शाते हैं। ये भेड़िये उस समय भेड की खाल पहनकर घुमते हैं। चुनाव जीतने के पश्चात, यह अपने असली रूप में आकर जनता का शोषण करते हैं। इस सबसे सर्वाधिक नुकसान होता है, हमारी संसदीय प्रणाली को।

इस नुकसान को बताते हुए विनय मिश्र अपने संग्रह *समय की आँख नम है* में लिखते हैं–

अंधो की ही अगुवाई में

आज चली है

संसद अपराधों की अंधी

एक गली है

जिसकी कालिख

तिलक हुई है जब माथे की

उपजा भय है (99)

अपराध जगत के कालिख पुते चेहरे, जब अपने माथे पर विजय तिलक लगाकर संसद कि गरिमा को नष्ट करते हैं, तो यह संसद अपराधों की अंधी गली के समान ही कार्य करती है।

राजनेता अपनी स्वार्थ लोलुपता के कारण, राष्ट्र के साथ भी गद्दारी करने से नहीं चूकते हैं। वह राष्ट्र के उत्थान के स्थान पर, अपने उत्थान को सर्वोपरी मानते है। इसके लिए वह राष्ट्र को विदेशी हाथों में बेचने से भी परहेज नहीं करते हैं। इस पीड़ा को माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

घोषणा पत्रों से सब

देसी नदारद

अब विदेशी

ही करेगें

राज शायद

ऐतिहासिक भूल को

कहते जरा सी (81)

राजनीतिक पार्टियों के द्वारा, अपने घोषणा–पत्रों के माध्यम से विदेशी कम्पनीयों को आकर्षित किया जाता है। स्वदेशी उद्योगों को समाप्त कर दिया जाता है। क्या भारतीय राजनेता आज यह भूल गये है कि मात्र व्यापार के बल पर ही अंग्रेजों ने भारत को गुलाम बना लिया था? क्या वह राष्ट्र को एक बार पुनः व्यापारिक गुलामी के दलदल में फँसाना चाहते हैं ? क्या हर क्षेत्र में FDI (प्रत्यक्ष विदेशी निवेश) के नियमों में ढिल देकर, वह उन क्षेत्रों को विदेशी कम्पनीयों के हाथ का खिलौना नहीं बना रहे है? यहाँ हमे चीन का उदाहरण प्रत्यक्ष रखकर देखना चाहिए कि यदि आज चीन दुनिया पर राज करने के, सपने देखता है, तो वह मात्र व्यापार के कारण। भारतीय राजनेताओं के इस राष्ट्र को गिरवी रखने के कुकृत्य को, बहुत सुन्दर रूप से मधुकर अष्ठाना ने अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* के इस नवगीत में दर्शाया है–

वालमार्ट का गेहूँ

बासमती भी

हुई पराई

उसके बैद–हकीम

डॉक्टर

उसकी दवा बनाई

सार्वभौम प्रभुसत्ता के सँग

संविधान बेचा (51)

अपने निजी स्वार्थों के वशीभुत होकर, राजनेता न सिर्फ राष्ट्र के संसाधनों को बेच रहे हैं, अपितु अपनी संप्रभुता व आजादी को भी बेच रहे हैं। इस कारण से हमारे संसाधनों का फायदा ऊठा रहे हैं, विदेशी।

प्रारम्भ में भारत में आजादी के पश्चात एवं उससे पूर्व भी राष्ट्रीय पार्टी के नाम पर काँग्रेस का वर्चस्व था। कुछ राज्यों में (केरल, बंगाल) मार्क्सवादी पार्टियों का शासन था। उस समय पार्टी व पद से महत्वपूर्ण होती थी–विचारधारा। विचारधारा में अलगाव के कारण नेताओं के द्वारा बड़े से बड़ा पद त्याग दिया जाता था। अपनी विचारधारा पर अडिग रहने की प्रतिज्ञा थी। इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं। कांग्रेस में ही लाला लाजपतराय ने उग्र दल का निर्माण किया। इसे 'लाल–बाल–पाल' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने अपनी विचारधारा को नहीं त्यागा। इसके सबसे अच्छा उदाहरण है– सुभाष चन्द्र बोस। यह गाँधीजी के साथ उनके वैचारिक विरोधाभास ही थे कि उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद को भी त्याग दिया था। आजादी के बाद लगभग 20 वर्षों तक यह स्थिति रही है, परन्तु कांग्रेस के विभाजन के साथ ही, एक नई परम्परा उठ खड़ी हुई–अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु विचारधारा का त्याग। जिसे जहाँ से सत्ता में हिस्सा मिलता दिखा, वह उसी दल की ओर भाग लेता है। चाहे उससे पूर्व, उसने उस दल को कितनी गालियाँ दी हो। कभी पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को 'मौनसिंह' कहने वाले, नवजोत सिंह सिद्ध बाद में उसी कांग्रेस में शामिल हो जाते है। यह रोग मात्र व्यक्ति विशेष के साथ नहीं है, अपितु पूरी पार्टी ही सत्ता की लालसा में अपनी विचारधारा का त्याग कर देती है। जिस शिव सेना के मुखिया बाल ठाकरे ने कभी सोनिया गाँधी को गालियाँ थी और शरद पवार के लिए यह कहा था कि मैं उस धोखेबाज से कभी राजनीतिक गठजोड़ नहीं करूँगा, आज वही शिव सेना इन दोनों दलों के साथ मिलकर सरकार चला रही है। इसमें सबसे मजेदार उदाहरण तो लोकजन शक्ति पार्टी का है। इसके पूर्व मुखिया स्व. रामविलास पासवान तो केन्द्र में रहने वाली, प्रत्येक बड़ी पार्टी के साथ सम्मिलित हो जाते थे, वह यूपीए में मंत्रीपद लेते थे; तो एनडीए में भी। राजनेताओं के इस सत्ता प्राप्त करने के लालच को विनय मिश्र अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

मुँह में लगी हुइ उनके

जूठन देखो

सत्ता के मारों का

सनकीपन देखो

लाभ जिधर सारा दर्शन

उस ओर बटा (140)

अब तो सिर्फ सत्ता सुख की चाहत है, वहाँ पर विचारधारा का कोई महत्व नहीं है।

4.3 नौकरशाही के बढ़ते प्रभाव का वर्णन

राष्ट्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए, अनेक अखिल भारतीय सेवाओं को भारत ने आजादी के पश्चात अपनाया। यह मुख्यतः आजादी से पूर्व प्रचलित ICS (भारतीय लोक सेवा) का ही एक सुधारात्मक स्वरूप था। सभी अखिल भारतीय सेवाओं में सबसे प्रतिष्ठित और ताकतवर मानी जाती है– भारतीय प्रशासनिक सेवा। इनकी प्रतिष्ठा और शक्ति का अहसास, इनके विषय में प्रचलित एक आम धारणा से लगाया जा सकता है, भारत में यह कहाँ जाता है कि यहाँ राजनेता तो आते–जाते रहते है, असली सरकार तो प्रशासक ही चलाते हैं। इस पद की कितनी प्रतिष्ठा है, इसका अंदाजा इसी से हो जाता है कि प्रति वर्ष संघ लोक सेवा आयोग में होने वाली भर्ती में, मात्र 100 के लगभग प्रशानिक सेवा (IAS) के पदों के लिए, लगभग 10 लाख अभियर्थी परीक्षा देते है। भारत में इस परीक्षा को पास करना सबसे कठिन माना जाता है।

इसका कारण है, भारत में निति निर्धारण में इनका योगदान अविस्मरणीय रहा है। यदि भारत के एकीकरण में राष्ट्र सरदार पटेल के योगदान को सराहता है, तो वह साथ ही उनके सचिव, वी.पी. मेनन के योगदान को भी कम करके नहीं आँकता है। उनके कार्य एवं साहस का अंदाजा, इस बात से लगाया जा सकता है कि एक बातचीत के दौरान, जोधपुर के महाराज ने उन पर पिस्तौल तान दी थी। आज हम भारत को जैसा देखते हैं, उसमें उनका योगदान अमुल्य है। आजादी के पश्चात शहरों को बसाने में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान है, इसमें एम.एन.बुच (M.N.

Buch) को भोपाल का शिल्पी कहा जाता है। वर्तमान भोपाल के वह विश्वकर्मा है। जब बात राष्ट्र को आर्थिक और तकनीकी गति देनी कि हो, तो मैट्रो मैंन के नाम से मशहुर ई. श्रीधरन को कैसे भुलाया जा सकता है। वर्तमान में भारत में जो मैट्रो का जाल है, उसके बीज उन्होंने ही डाले हैं। राष्ट्र की रक्षा और आतंकवाद को समाप्त करने में, पंजाब के पूर्व पुलिस DGP के.पी.एस. गिल के योगदान को कैसे भुलाया जा सकता है। इसी कड़ी में वर्तमान में, भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहाकार अजित डोभाल का नाम भी आता है।

धीरे–धीरे इन्होंने सत्ता के केन्द्र में स्वयं को स्थापित कर लिया है और नेताओं के साथ गठबंधन करके उन मूल्यों एवं सिद्धान्तों का त्याग कर दिया है। जिन्हें इनके पूर्ववर्ती प्रशासकों ने खड़ा किया था। अब तो प्रशासकों का मुख्य कार्य, केवल नेता भक्ति रह गया है। उनको बचाने के लिए यह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा रहे हैं, इस गठजोड़ पर रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में लिखते हैं–

मजबूरी झुनिया की पहुँची

मुखिया जी के शयन कक्ष में

लेखपाल, बी.डी.ओ. दरोगा

प्रमुख खड़े सब एक पक्ष में

धुन, कंकड़, जा रहे

दुपहरी में

शिक्षा के बाल पेट में (59)

नेताओं के द्वारा किये जा रहे शोषण का विरोध करने हेतु, आम आदमी के लिए जो संस्थाये है, वह सभी तो अपने लालच में आकर नेताओं का ही साथ दे रही है। इस नवगीत के माध्यम से वह सरकारी योजनाओं में जो भ्रष्टाचार होता है,

उसका वर्णन करते हैं। सर्वप्रथम तो सरकारें लोकहित के कार्य करने में हिचकती है, परन्तु यदि कोई योजना ऐसी आ जाये, तो जिनके हिस्से इसके क्रियावन्यन की जिम्मेदारी (प्रशासनिक अधिकारी) होती है, वह स्वयं उसमें से अपना हिस्सा लुटने लग जाते हैं। इस प्रकार के गठजोड़ से बच्चों को 'मिड डे मिल' के नाम पर कंकड़ खिलाये जा रहे हैं, तो आश्चर्य किस बात का है। इस गठजोड़ पर मधुकर अष्ठाना अपने संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं–

राम न जाने

कब क्या होगा

लोकतन्त्र की रेल में

x ------ x ------ x-----x

नेता, नौकरशाह, माफ़िया

गये अनय के मेल में (54)

इस नवगीत के माध्यम से वह एक तरफ न सिर्फ नेता, नौकरशाह और माफियाओं के त्रिकोण कि बात कर रहे हैं, अपितु जिस लोकतन्त्र कि रक्षा का भार हमारे नौकरशाहो पर था, उसको भी उन्होंने मिट्टी में मिला दिया है। यहाँ यह सवाल उठाया जा सकता है कि लोकतन्त्र के पतन का अधिक जिम्मेदार कौन है, नेता या नौकरशाह। परन्तु यह कहना कि इसमें नौकरशाहों कि भूमिका ही नहीं है, यह तो झुठ बोलने के बराबर होगा। लोकतन्त्र कि रक्षा का भार नेताओं से अधिक प्रशासकों पर है। वह इसकी रक्षा से चुक रहे हैं। इस पर मधुकर अष्ठाना पुनः लिखते हैं–

खाट खड़ी है

लोकतन्त्र की गाँव में

प्रगति–विकास पड़े

मुखिया के पाँव में (72)

लोकतन्त्र को नेताओं के पाँव में रखने का दोषी कौन है? हमारे प्रशासक। यदि ये अपने स्वार्थों कि पूर्ति हेतु, नेताओं को गलत कार्य करने कि छुट प्रदान नहीं करे, तो उनकी इतनी हिम्मत नहीं है कि वह राष्ट्र से लोकतन्त्र को खत्म कर दे। परन्तु उनके निजि स्वार्थ उन्हे झुका देते हैं, जिसके कारण लोकतन्त्र गर्त में जा रहा है। इस पर अजय पाठक अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* में लिखते हैं–

'गणमान्य' का महापर्व है

गण दुखियारी, तंत्र विवश है

यह कैसा गणतंत्र दिवस है? (100)

वर्तमान परिदृश्य में तो, गणमान्य ही गण और तन्त्र दोनों का शोषण कर रहे हैं। ये गणमान्य किस प्रकार का व्यवहार लोकतन्त्र के साथ करते हैं, उसको ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में इस प्रकार लिखते हैं–

घूम रहे हैं लोकतन्त्र के

लोभी, ढोंगी, लुच्चे

नोच रहे ये जिंदा लाशे

स्यार, भेड़िये, कुत्ते (130)

नेताओं को खुली छुट्ट देकर, प्रशासको ने जिस प्रकार से देश को लुटने के लिए छोड़ दिया है, वह इस नवगीत के माध्यम से अक्षरशः सही–सही और यथार्थ रूप में व्यक्त किया गया है। लोकतन्त्र कि वर्तमान दशा पर बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* के दो नवगीतों के माध्यम से लिखते हैं–

लाल किले से बँटे बहुत दिन

रोटी पानी और हवा

हुआ तपेदिक लोकतन्त्र को

नकली सारी बँटी दवा (82)

X ------ X ------ X-----X

लोकतन्त्र के पंख कटे

पिंजरे में बंदी

रोयी आँख ताकता है (87)

इन नवगीतों में वह लोकतन्त्र की वर्तमान दुर्दशा पर लिखते हुए, उसे गम्भीर रूप से रोगयुक्त करार दे रहे हैं। इसके कारण लोक व तन्त्र के मध्य जो दुरी आ गई है, उसके लिए वह लिखते हैं–

और लोक से बनी हुई जो

आज तन्त्र की दूरी है (82)

प्रशासनिक सेवा के अधिकारी, एक और माध्यम से इस गठजोड़ में अपनी भूमिका निभाते हैं। यदि गलती से किसी नेताजी के घोटाले का पता चल जाता है, तो प्रराम्भ से ही उसे छुपाते हैं। इसके बाद भी यदि मामला शांत नहीं होता है, तो नेताजी के पक्ष के अधिकारीयों का एक आयोग बनाकर उस मामले को इतना खीचते हैं कि नेताजी कि मृत्यु भले हो जाये, जीते–जी उन पर कोई आँच नहीं आती है। आयोगों के नाम पर होने वाले इस खेल को बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* लिखते हैं–

जेल, अदालत, दफ्तर फाइल

खानापूरी है

नये–नये आयोगों में ही

उलझी जूरी है (111)

एक–एक घोटाले कि जाँच हेतु इतने आयोग बनाये जाते है कि कई बार तो घोटाले कि रकम से ज्यादा, आयोगो पर खर्च हो जाता है। इसका नतीजा निकलता है–शून्य।

भारत के संविधान निर्माताओं ने राजनेताओं पर अंकुश लगाने हेतु अनेक संवधानिक संस्थाओं का सृजन किया। इसने से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है–चुनाव आयोग। इसको सर्वाधिक महत्वपूर्ण का दर्जा देने का कारण है कि अन्य संस्थाओं की अपेक्षा यह अधिक कारगर ढंग से राजनीति को साफ–सुथरा एवं स्वच्छ रख सकती है। अन्य संस्थाये नेताओं के घोटालो की जाँच कर सकती है (CAG), उनको दण्ड दे सकती है (न्यायपालिका), उनकी निगरानी कर सकती है (CVC), उनकी जाँच कर सकती है (CBI, पुलिस), परन्तु चुनाव आयोग ही ऐसी संस्था है, जो इनको नेता बनने से ही रोक सकती है। अन्य सभी संस्थाओं का कार्य प्रराम्भ होता है, उनके नेता बनने के बाद, परन्तु चुनाव आयोग पर जिम्मेदारी होती है कि न सिर्फ वह सही चुनाव प्रक्रिया से चुनाव सम्पन्न करवाये, अपितु सभी को समान अवसर भी प्रदान करे। इस कार्य में वह विफल हो जाता है। भारत में जब भी चुनाव आयोग का जिक्र होता है, इसके पूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय टी.एन.शेषन का नाम अवश्य आता है। भारत में चुनाव सुधारों के द्वारा नेताओं पर जिस प्रकार की नकेल, शेषन ने डाली थी; वह अद्‌भुत थी। उनके विषय में यह प्रचलित है कि उन्होंने कहा था–"मैं सुबह ऊठकर नाश्ते में नेता खाता हूँ।" बिहार राज्य में होने वाली चुनाव धाँधलियो को रोकने के लिए उन्होंने चार बार चुनाव स्थिगित कर दिये, पुरे राज्य में 1 लाख से भी अधिक अर्द्धसैनिक बलों कि नियुक्त करके, बुथ कैप्चरींग को बंद करवा दिया। भारतीय चुनाव आयोग को सरकार के चंगुल से निकालकर एक स्वतन्त्र संस्था बनाने का कार्य भी उन्होंने ही किया। वही चुनाव आयोग अब चुनावों के समय धाँधली होने देता है। इस पर मधुकर अष्ठाना लिखते हैं–

प्रधानो की

गरम मुट्ठियाँ सिखा रही हैं

नया तराना

बता रहे हैं

बहुत सरल है

इन बैंलों को मूर्ख बनाना (113)

इस नवगीत में वह पैसे के बदले, वोट खरीदने की प्रवृति को बता रहे हैं। इस कारण से योग्य उम्मीदवार चुनाव जितने में विफल हो जाते हैं। जिस दबंगई से दंबग चुनाव के समय शक्ति प्रदर्शन करते हैं, उस पर रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *'झील अनबुझी प्यास की'* में लिखते हैं–

चुप है

लेकिन बोल पड़ेगी

मुखिया जी की सधी दुनाली

यदि कलुआ ची–चपड़ करेगा

अगर झबरूआ आह भरेगा

वोट डालने चला बसन्ता

साथ चलेगी गोली–गाली (68)

गोली–गाली के दम पर, चुनावों में वोट डलवाने की जिस परम्परा को शेषन खत्म करना चाहते थे, वह अब पुनः एक आम नजारे के रूप में विद्यमान हो रही है। इन सभी बातो से आहत होकर, अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

पाँच बरस में एक बार है

मेले में जाना

क्यो जाना है, क्या करना है

इसकी नहीं खबर (30)

अवध बिहारी कहते हैं कि चुनाव भी अब तो मात्र एक मेले के समान रह गये है। हर पाँच वर्ष में भरने वाला मेला। जहाँ आम जनता को क्या करना है, क्यूँ करना है, से कोई मतलब नहीं है। उन्हें तो बस मेले में जाना है।

4.4 वर्तमान राजनीति परिस्थितियों पर व्यंग्य

वर्तमान राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिस्थितियों में, क्रोध के स्थान पर हँसी अधिक आती है। क्या यही वह राष्ट्र है, जिसकी कल्पना हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने की थी ? क्या आज भी हमारी संस्थाये हमारे लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा कर पा रही है ? साहित्यकार जब अपने चारो और देखता है, तो उसे इनका उत्तर न में ही मिलता है। यही कारण है कि उसे व्यंग्य एवं क्रोध के, मिले–जुले स्वरूप में अपनी बात कहकर जनता को सचेत करने का प्रयास करना पड़ता है। वर्तमान परिदृश्य में लोकतन्त्र की दुर्दशा पर, अनेक नवगीतों के माध्यम से नवगीतकारों ने लिखा है। ऐसा ही एक नवगीत अपने संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में बृजनाथ श्रीवास्तव इस प्रकार लिखते हैं–

लुटतंत्र में

दौड बुधइया जल्दी–जल्दी लूट

पहन लकालक करें घुटालें

मिलती सारी छूट

बुधइया जल्दी–जल्दी लूट (82)

इस नवगीत के माध्यम से, लोकतन्त्र के लुटतन्त्र में बदल जाने पर, जल्दी–जल्दी लुटने का आह्वान है। यह एक कटाक्ष है, वर्तमान परिस्थितियों पर

लोकतन्त्र में किस प्रकार का तमाशा चल रहा है, उसको अपने एक अन्य नवगीत में बृजनाथ श्रीवास्तव इस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं–

लोकतन्त्र के जलते अलाव

में हाथ सेकते बड़े–बड़े

नंगे बदन व्यवस्था काँपे

हो रहा तमाशा खड़े–खड़े (28)

वर्तमान लोकतन्त्र में किस प्रकार कार्य हो रहा है, इस पर यश मालवीय ने भी एक नवगीत के माध्यम से लिखा है। यह नवगीत उनके नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में संकलित है। वह लिखते हैं –

भरी नींद में जन–गण–मन

अधिनायक गाएँगे

बन जाएँगे ज्ञान और गुण के

गहरे सागर (25)

राजनेता अपने लाभ के लिए, संविधान तक को नहीं छोड़ते हैं। वह इसमें भी अपने हितो के हिसाब से परिवर्तन कर लेते हैं। इस पर व्यंग्य करते हुए विनय मिश्र अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में लिखते हैं–

जी चाहे जब संविधान की

करे मरम्मत

सुविधाओं के बदले झोलो में हैं जनमत

बड़े प्यार से लोकतन्त्र ने मारा झटका (138)

संविधान में परिवर्तन की दर इतनी है कि भारत की आजादी के पश्चात 70 सालो में, भारत में 120 से अधिक संविधान संशोधन हो चुके हैं। इस पर यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

औधी पड़ी धर्म की संसद

संविधान चकराया (99)

वर्तमान समय में संसद की कार्यप्रणाली का स्तर भी गिर गया है। हमारे माननीय, संसद में किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, यह किसी से छिपा नहीं हैं। गाली–गलौज, पेपर फाड़ना, नारे लगाना, अध्यक्ष की कुर्सी तक पहुँचना, अब आम बात हो चुकी है। इस पर विनय मिश्र अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में इस प्रकार व्यंग्य करते हैं–

हुई बेसुरी जब से

चीख रही है संसद (22)

कहने को तो, सारे नेतागण आम जनता की भलाई में यह नारे लगाते हैं, बहस करते हैं, परन्तु इसमें कितना दोगलापन भरा होता है, इस पर वह पुनः लिखते हैं–

ठूंठो की अब तानाशाही

मन की हरियाली पर चलती

एक राग दरबारी पर ही

आज दो मूँही संसद पलती (94)

राजनेताओं के दोगलेपन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमे तब देखने को मिलता है, जब संसद में राजनेताओं के वेत–भत्ते बढ़ाने का कोई बिल आता है, तो वह सर्वसम्मिति से पास होता है। हमारे माननीय उस समय जिस एकता का निर्वहन

करते है, वह अद्भुत होती है। इस पर अजय पाठक अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* में लिखते हुए व्यंग्य करते हैं–

कहने की संसद है लेकिन

लगती एक हवेली (100)

भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में नारों का बहुत महत्व है। आजादी से पूर्व 'अग्रेंजो भारत छोडो', 'आजादी मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है', 'इंकलाब जिंदाबाद', 'तुम मुझे खुन दो मैं तुम्हें आजादी दुँगा', 'चलो दिल्ली', 'जय हिंद' जैसे नारों ने आम जनता को, आजादी के लिए एकत्र करने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। आजादी के पश्चात भी कुछ समय तक यह जज्बा बना रहा। लाल बहादुर शास्त्री जी के दिये हुए नारे 'जय जवान जय किसान' ने राष्ट्र में हलचल मचा दी थी। परन्तु धीरे–धीरे इनका वजन कम होता गया। इसका कारण था, पूर्व में जब नारे दिये जाते थे, तो उन्हें पुरा करने हेतु अपने प्राणों तक का बलिदान करने में राजनेता नहीं हिचकते थे। वह सिर्फ दिखावे के नारे नहीं थे। वह स्वयं भी उनका पालन करते थे। धीरे–धीरे ये वादे खोखले हो गये और सिर्फ वोट बैंक कि राजनीति तक सीमित होकर रह गये। अब तो इन पर जनता का विश्वास भी समाप्त हो रहा है। वर्तमान समय में कोई 'गरीबी हटाओं' का नारा दे रहा है, तो कोई 'अच्छे दिन लाने' का नारा लगा रहा है। इन नारों से किसका और कितना भला हो रहा है, उस पर मधुकर अष्ठाना अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं–

प्यास पड़ी है

बरामदे में

भूख गिरी कमरे

अच्छे दिन आते–आते

हैं महलों में ठहरे (44)

इन नारों का असर तो होता है, परन्तु मात्र महलों में। राजनेताओं की गरीबी हट जाती है, उनके अच्छे दिन भी आ जाते हैं, परन्तु आम जनता को कुछ नहीं मिलता है, इस पर वह अपने एक अन्य नवगीत में लिखते हैं–

बड़बोले

झूठे आश्वासन

सौंप रहे

केवल बौनापन

बुना जा रहा

छल भाषा का (82)

राष्ट्र को मात्र एक लुटने की जगह बना देने से, आहत होकर अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में लिखते हैं–

लोकतन्त्र या राजतन्त्र यह

स्थिति बद से भी बदतर है,

प्रश्नों के जाले में उलझा

संविधान का हर अक्षर है (122)

लोकतन्त्र; जब राजतन्त्र के समान व्यवहार करने लगता है, तो कवि को यह लिखना पड़ता है, जिस संविधान कि कसमें खाकर यह लोग शासन चलाने की दुहाई देते हैं, उस संविधान का इनसे अधिक अपमान कोई नहीं करता है। इसी पीड़ा से आहत होकर यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *'समय लकड़हारा'* में आमजन को सचेत करते हुए लिखते है–

चापलुस मत होना सत्ता की बिल्ली के
ऐ भाई! तुम भी मत हो जाना दिल्ली के (112)

21वीं सदी भारतीय राजनैतिक जगत में दो प्रमुख रूझानों के साथ आई। प्रथम तो 1999 के पश्चात् केन्द्र में स्थायी सरकारों की आगमन हुआ। दूसरा राज्यों में क्षेत्रिय दलों का उदय हुआ। इसके कारण संयुक्त सरकारों का भी प्रचलन द्रष्टव्य हुआ। इस गठजोड़ की राजनीति ने दल–बदल, विचारधारा का त्याग, राजनैतिक भ्रष्टाचार, सांसद/विधायकों की खरीद–फरोख्त जैसे हानिकारक प्रचलनों को प्रारम्भ कर दिया है। नवगीतकारों ने अपने नवगीतों के माध्यम से इन सभी को उजागर किया है। साथ ही उन्होंने अपने नवगीतों में नौकरशाही एवं राजनेताओं के गठजोड़ को भी व्यक्त किया है। वर्तमान राजनैतिक परिस्थितियों को व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने नवगीतों में व्यंग्य का सुन्दर प्रयोग किया है। व्यंग्य करते हुए नवगीतकार वर्तमान राजनेताओं को सचेत करने का प्रयास करते हैं।

अध्याय 5

21वीं सदी के नवगीतों में सांस्कृतिक युगबोध

मानव द्वारा सीखे गये व्यवहार को ही आमतौर पर संस्कृति माना जाता है। यह व्यवहार मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्धारण करने में महत्ती भूमिका निभाते है। 'संस्कृति' बहुत ही विस्तृत शब्द है। इसकी एक निश्चित परिभाषा का निर्धारण करना मुश्किल है। राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपने निबंध 'संस्कृति क्या है' में संस्कृति को सभ्यता एवं प्रकृति से भिन्न बताया है। एक उदाहरण द्वारा इसे समझा जा सकता है। कपड़े, खाना आदि सभ्यता के गुण है, परन्तु हमे किस प्रकार के कपड़े पहनने है एवं खाना खाने की प्रक्रिया (तरीका) संस्कृति के अवयव है। सभ्यता बाह्य गुण है, परन्तु संस्कृति का संबंध आन्तरिक गुणों से अधिक है। भारतीय संस्कृति को अनेक संस्कृतियों ने प्रभावित किया है। उनके कुछ न कुछ गुण, भारतीय संस्कृति में समाहित होते रहे हैं, चाहे वह युनानी, हूण, मुगल हो या अंग्रेज सभी ने कुछ न कुछ प्रभाव भारतीय संस्कृति पर डाला है। वर्तमान परिदृश्य में मुख्यत ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति भारतीय समाज के अंग है। इन दोनों की अपनी विशेषताएँ है।

5.1 नवगीतों में ग्रामीण संस्कृति

संस्कृति या सांस्कृतिक गुण मनुष्य के रहन–सहन, खाना–पान, पहनने आदि या कहे जीवन जीने के गुणों के मिश्रण की उपज होते हैं। प्रत्येक समाज के समान ही प्रत्येक संस्कृति की भी अपनी विशेषताएँ एवं विभिन्ताएँ होती है। भारत प्रराम्भ से ही ग्राम प्रधान राष्ट्र रहा है। महात्मा गाँधी तो मानते थे कि–"असली भारत गाँवों में बसता है।" इसीलिए यहाँ प्रराम्भ से ही ग्रामीण संस्कृति के महत्त्व को माना गया है। ग्रामीण संस्कृति की अपनी ही विशेषताएँ होती हैं। ग्रामीण संस्कृति में प्रेम, भाई–चारे आपसी सौहार्द का स्तर, नगरीय संस्कृति कि अपेक्षा अधिक होता है। वहाँ पर अपनी जड़ों से जुड़े रहने की चाहत होती है। अपने रीति–रिवाजों, परम्पराओं को सम्भालने कि चाहत होती है। ग्रामीण संस्कृति में आजीविका के साधन के रूप में कृषि एवं पशुपालन की प्रधानता होती है। यहाँ पर आय भले ही कम हो, परन्तु जीवन जीने की कला अधिक है। संतोष व धैर्य यहाँ की संस्कृति के

प्रधान गुण माने जाते हैं। इस ग्रामीण संस्कृति की प्रंशसा करते हुए नवगीतकार मधुकर अष्ठाना अपने संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं–

कितने मीठे आम

तुम्हारे गाँव के

हम हो गये गुलाम

तुम्हारे गाँव के

घर–घर तीरथ धाम

तुम्हारे गाँव के (90)

ग्राम्य जीवन की प्रशंसा करते हुए, वह लिखते हैं; हमे तो यहाँ पर प्रत्येक घर तीर्थस्थल के समान लगता है। यहाँ एक तरफ ऋतुराज लोकगीत सुनाता है, वही दूसरी ओर हरियर खेत भावनाओं के उत्सव रंग जमाते हैं। यहाँ पर सभी का मन निर्मल और बेदाग है। पग–पग पर ग्रामीण संस्कृति जीवन्त है। प्रत्येक आँगन तुलसी से शोभायमान है। मैं तो इन सब कारणों से, तुम्हारे गाँव का गुलाम हो गया हूँ। इस नवगीत में मधुकर अष्ठाना ने ग्रामीण जीवन के प्रत्येक अंग का सुन्दर वर्णन किया है।

वरिष्ठ कवि नचिकेता तो, ग्रामीण संस्कृति को अपने अंदर समाहित मनाते है। वह अपने नवगीत संग्रह *सच कहा तुमने* में लिखते हैं कि मैं और मेरा गाँव एक हो गये हैं–

गाँव मुझमें है

कि मैं हूँ गाँव में

खेत, बांध

बधार, पोखर, ताल मुझमें

फूल, खुशबू, फसल, घर

चौपाल मुझमें (29)

ग्रामीण संस्कृति की यही तो सच्चाई एवं विशेषता है कि कोई भी यहाँ रहता है या रहने आता है, वह इसके रंगों में रंग जाता है। वो यही का होकर रह जाता है, इसके साथ एकीकार हो जाता है। ग्रामीण जीवन की जीवन शैली और विभिन्न रंगों को उभेरते हुए यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

चुटिया वाली दीदी

पानी देती क्यारी में

कागज पत्तर ढुँढ रहे

बाबू अलमारी में

भजन गूँजते हैं अम्मा के

ठाकुर द्वारे में (132)

ग्रामीण जीवन में परिवार का बहुत महत्व रहता है, यहाँ पर सब मिलजुल कर रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का आनन्द लेते हुए, अपने कार्य सम्पन्न करता है।

ग्रामीण संस्कृति में जो धार्मिक सौहार्द है, उसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती है। भारतीय संस्कृति की इस विशेषता पर ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

जैन–बौद्धो की

धरा पर

जो खड़ी नटराज प्रतिमा

सांस्कृतिक

सौहार्द्र जीकर

है समन्वित ज्ञान गरिमा (21)

भारतीय भूमि अपने सांस्कृतिक समन्वय के लिए जानी जाती है, यहाँ प्रत्येक संस्कृति और धर्म के प्रति समान आदर भाव है। इसकी यही विशेषता है कि इसने बाहर से आने वाली संस्कृतियों को भी अपने अन्दर समाहित कर लिया है।

ग्रामीण संस्कृतियों में किस प्रकार से छोटी–छोटी खुशियों में, समस्त परिवार सम्मिलित होकर उसे एक त्यौहार का रूप प्रदान करता है, इसको अपने नवगीत 'कमासुत' में, बाहर से बड़े भइया के आने पर होने वाली तैयारियों के माध्यम से अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

भइया आने वाले ही हैं

भौजी हुई मगन

लगता है कुछ अलग–अलग–सा

घर बाहर आँगन (43)

भइया के आने पर परिवार का प्रत्येक सदस्य कितना खुश है, और रोमांचित होकर कार्य कर रहा है, इसका वर्णन करते हुए वह कहते है; आज तो पुरे घर का माहौल ही बदल गया है। अम्मा घर कि सफाई में लगी है। दादी बाटी सेंक रही है। काका बाजार गये हैं। बाबू उन्हें लेने स्टेशन गये हैं, उनकी मनपंसद सब्जी बन रही है। बड़ी बहन उनके लिए दाल पिस रही है। भाभी भइया का रस्ता देख रही है। यह नवगीत ग्रामीण संस्कृति में प्रत्येक परिवार के सदस्य के लिए, हर खुशी में समान हिस्से का प्रतीक है। यहाँ भइया के आने पर केवल भाभी, या माता–पिता ही खुश नहीं है, प्रत्येक सदस्य खुश है। इसके विपरीत परिस्थित का वर्णन बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत 'मन करें रोक लें' में करते हैं। इसमें वह गाँव छोड़कर जा

रहे, बंधु के लिए मन में आ रहे है, भावों का वर्णन अपने नवगीत संग्रह, *रथ इधर मोड़िये* में करते हुए; लिख रहे हैं–

किस तरह डोरियाँ अब रखें जोड़कर

बस यही कामना

पथ उजाला मिलें

राह के पेड़, फल

छाँव वाले मिलें

मन करें रोक लें हम इन्हें दौडकर (56)

नवगीत के शीर्षक से ही भान होने लगता है कि कोई प्रिय छोड़कर जा रहा है। उसके जाते समय उसके साथ व्यतित समय और क्रियाकलाप आँखों के सामने आ जाते हैं। परन्तु हम चाह कर भी उन्हें रोक नहीं पा रहे हैं, तो मन ही मन उनके लिए शुभकामनाएँ निकलती है और उनके जीवन में सैदव अच्छे कि कामना करते हुए, उन्हे विदा किया जाता है। यही वास्तविक ग्रामीण संस्कृति है। इस ग्रामीण संस्कृति की एक साँझ का वर्णन करते हुए अजय पाठक अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* में लिखते हैं–

दूर गाँव के खलिहानों को

छूकर पछुआ लौट गई है

झूमी डाली अमलतास की

टहनी कोमल, नई–नई है

हल्की–हल्की साँझ घिरी है

थोड़ी बीत गई दोपहरी (63)

इस नवगीत का शीर्षक ही 'साँझ' है। ग्रामीण परिवेश में; साँझ के वर्णन को, इस नवगीत में जीवन्त रूप से वर्णित किया गया है। जब हल्की–हल्की साँझ घिर आती है, प्रत्येक घर से खाना बनाने की तैयारियों की आहट आने लगती है। आसमान पर बादल छाये है, पंछी अपने घरों को लौट रहे हैं। गाँव के खेत–खलिहानों को छुकर पछुआ लौट आई है। शहरी संस्कृति की ग्रामीण संस्कृति से तुलना अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में करते हुए यश मालवीय लिखते हैं–

गहरी साँसे भरता अपना

कस्बा भी भरपूर है

तब तक तु जिंदा है साथी

जब तक दिल्ली दूर है (111)

वह लिखते हैं, शहर में मनुष्य को स्वयं को, अपनी इच्छाओं, अपने संस्कारों, को मारना पड़ता है, परन्तु यह सब कष्ट ग्रामीण संस्कृति में नहीं है। अपना कस्बा/गाँव भी भरपुर है।

5.2 नवगीतों में शहरी संस्कृति

भारत प्राचीन काल से ही नगर के अस्तित्व एवं उनके निर्माण व संयोजन की प्रक्रिया को जानता है। चाहे महाभारत काल में श्री कृष्ण का मथुरा छोड़कर जाने पर, द्वारका बसाने का वर्णन हो या पाण्डवों के द्वारा हस्तिनापुर से निकलने के बाद इन्द्रप्रस्थ बसाने का वर्णन हो। ऐतिहासिक रूप से देखे तो मोहनजोदड़ो की सभ्यता को, विश्व की प्रथम शहरी एवं विकसित सभ्यता माना जाता है। वर्तमान काल में भी, भारत में अनेक शहरों को बसाया गया। राजा जोधा के द्वारा जोधपुर हो या अमृतसर की बसावट हो। अंग्रेजों के समयकाल में लुटियंस की दिल्ली हो या ली कार्बूजियर का चण्डीगढ़ हो। सभी ने भारत की इस विरासत को आगे बढ़ाने

का कार्य किया। वर्तमान समय में, नगर से महानगर होते हुए, अब तो 'स्मार्ट सिटी' की परिकल्पना आ चुकी है।

इन शहरी समाजों ने अपने अनेक सांस्कृतिक प्रतिमानों को स्थापित किया है, जिसके कारण शैनः शैनः इनकी सांस्कृतिक विरासत, ग्रामीण संस्कृति से अलग हो गई। इन्होंने शहरी परिवेश के आधार पर अपने रीति–रिवाज, अपने संस्कारों को ढ़ाल लिया। कुछ; शहरों की आवश्यकता के कारण नये प्रतिमान विकसित हो गये। ये ग्रामीण संस्कृति से पूर्णरूप से अलग थे। शहरी संस्कृति में चुनौतियाँ अधिक है। इस पर नचिकेता अपने नवगीत संग्रह *सच कहा तुमने* में लिखते है–

है बहुत मुश्किल

शहर में घर बसाना

घर नहीं, बस यहाँ हैं अट्टालिकाएँ

टँगी जिनमें आय–व्यय की तालिकाएँ (91)

शहरों में भीड़–भाड़ कि स्थिति में, घर प्राप्त करना ही एक चुनौती है। फिर यहाँ का खान–पान का संस्कार भी ग्रामीण संस्कृति से अलग होता है। इस भेद को अवनीश त्रिपाठी अपने संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

कंक्रीट में

जंगल में अब

पैकेट का फैशन पसरा है, (76)

शहरी जीवन शैली में खान–पान की आदते बहुत ही अलग होती है। यहाँ होटलों में खाना, होटलों से खाना मँगवाना, पैकट बन्द खाना, खाना आम है। पिज्जा, बर्गर जैसे विदेशी खाना खाने वाले भी यहाँ बहुतयात में है। शहर की भाग–दौड़ भरी जिन्दगी में, खाना भी 'फास्ट' हो गया है, इसलिए यहाँ 'फास्ट फुड़' का प्रचलन है। यहाँ कि जीवन शैली में पार्टियाँ एक फैशन की तरह है और उनमें

शराब का सेवन वर्जित नहीं समझा जाता है। इसको अवनीश त्रिपाठी अपने एक अन्य नवगीत में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

व्हिस्की–शैम्पेन

बड़ी पार्टियाँ

आवाजो में चियर (51)

शहरी माहौल के सूनेपन में यह सब चलता रहता है, यहाँ पर हो मानव का मानव से अपनापन कम हो सकता है, परन्तु यहाँ पर जीवन के सुख के लिए भौतिक चीजों कि कोई कमी नहीं है। यहाँ पर आपको इंटरनेट कि तेज स्पीड मिलती है। जिससे यहाँ के निवासी, देश–दुनिया से जुड़े रहते है। यातायात के साधन सुलभता से प्राप्त होते हैं।

5.3 सांस्कृतिक संक्रमण से उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन

सांस्कृतिक संक्रमण से यहाँ तात्पर्य, उस सतत रूप से चल रही प्रक्रिया से है, जिसमें एक संस्कृति के व्यक्ति दुसरी संस्कृति में आते जाते रहते हैं। यहाँ पर ग्रामीण से शहरी और शहरी से ग्रामीण के मध्य संक्रमण है। यह परिवर्तन एवं मिलन सतत रूप से चलता रहता है। भारत में यह संक्रमण मुख्यतः ग्रामीण से शहरों की और पलायन के कारण है। शहरों में जाने की पीड़ा को लिखते हुए मधुकर अष्ठाना अपने संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं–

बाबा लिऐ सुमदिनी आंखे

दादी को खटवाँस

जाये सब

परदेस पराये

घर में हैं बनवास (108)

इस पीड़ा को अवध बिहारी श्रीवास्तव भी, अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में एक नवगीत के माध्यम से लिखते हैं–

जब निकला गाँव छोड़कर तो

सारा घर गाँव चला आया,

पोखरा 'गजाधर साहू' का

उसका 'नीला जल' यादों में (62)

आम आदमी अपनी संस्कृति से शहर में तो आ जाता है, परन्तु वह गाँव को भूल नहीं पाता है। उसे बार–बार माँ का आँचल, बाबू का प्यार याद आता है। उसे गाँव में मिलने वाली प्रत्येक वस्तु याद आती है। उसे हर जगह जहाँ वह जाता है, उस जगह अपनी मातृभूमि दिखाई देती है। इस पलायन के अन्य रूप सामुहिक पलायन पर वह लिखते हैं–

सबकी यादो में माँ, बाबू

सबकी आँखों में,

भूखा घर

'जब बात चली' तो पता चला

सबने छोड़े

'बलिया' 'बक्सर' (39)

घर छोड़कर आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की पीड़ा एक समान ही होती है। उसे अपने माँ–बापु की यादों को सहेज कर रखना होता है, क्योंकि शहरों में उनको ला नहीं सकते है और घर कि आर्थिक दशा उन्हें गाँव से जाने को मजबूर कर देती है। गाँव छोड़ने की इस पीड़ा पर बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

जाने क्यों पड़ता है

जीवन को इतना उलझाना

आग भूख की लगी कि ऐसी

गाँव द्वार घर छूटा (120)

जीवन की उलझनों में उलझकर, मनुष्य को अपनी मातृभूमि को छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ता है। वह लिखते है कि मनुष्य को तो मात्र सुबह–श्याम कुल मिलाकर चार चपातियाँ खानी होती है, परन्तु फिर भी यह भूख की आग, उससे उसका घर द्वार सब छुडवा देती है। इस पलायन में उसे गाँव में क्या–क्या छोड़कर आना पड़ता है, उसे वह अपने नवगीत 'हम आये नगर' में लिखते हैं–

छोड़कर खुशबुओ की डगर

हम आये नगर

दूधिया धान के

दूधिया ज्वार के

दिन सुनहरी सुबह के

नदी पार के (55)

नगर में आया हुआ व्यक्ति, ग्रामीण परिवेश से जब आता है, तो उसे वहाँ कि विशेषताएँ, खुबियाँ याद आती है। साथ ही वह उन खुबियाँ कि नगरीय जीवन में कमी पर उदास हो जाता है। इस पर बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

अजनबी भीड़ में

साँस घुटती यहाँ

और पहचान की

डोर कटती यहाँ (55)

नगर में आने पर, उसे अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति उसके लिए अजनबी होता है, इस कारण से उसकी साँस यहाँ घुटती है। शहरी संस्कृति में आने वाले परिवर्तनों से अपना सांमजस्य न बैठा पाने के कारण, वह पुनः एक बार गाँव की और लौटना चाहता है। इस पर यशोधरा राठौर अपने नवगीत संग्रह *जैसे धूप हंसती है* में लिखती हैं–

चलो

गाँव की और चलें

वहां मिलेगी

रिश्ते–नातो की गरमी (89)

ग्रामीण जीवन के अन्दर रिश्ते–नातो का जो महत्व होता है, शहरी संस्कृति में उसका अभाव होता है। इसलिये इन रिश्ते–नातों की गरमी को महसुस करने हेतु, वह गाँव चलने का आह्वान कर रही है। वह ग्रामीण संस्कृति के गीत त्यौहार को गीत के समान मानती है। साथ ही वहाँ प्रत्येक व्यक्ति की आँखों में परिचय, दिल में प्रीत है। वह लिखती है, जिस प्रकार से परिंदे सारे दिन घुम फिरकर साँझ ढ़ले पुनः अपने घोसले में आ जाते हैं, वैसे ही इंसान को करना चाहिए। इस सांस्कृतिक संक्रमण में सर्वाधिक नुकसान ग्रामीण व्यक्ति का होता है। वह शहर आता तो है, परन्तु शहर का हो नहीं पाता है। यहाँ के सांस्कृतिक गुणों को वह आत्मसात नहीं कर पाता है। उसके अन्दर बार–बार गाँव पुनः वापस जाने की लालसा जगती रहती हैं, इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* नामक नवगीत संग्रह में ओमप्रकाश सिंह लिखते हैं–

नहीं चाहिए

शहर तुम्हारा

मेरा गाँव मुझे लौटा दो (120)

इस नवगीत में वह गाँव से शहर जाने और वहाँ पर अपना सामंजस्य न बैठा पाने वाले व्यक्ति के माध्यम से, ग्रामीण संस्कृति की उन विशेषताओं को कहलवा रहे हैं, जिनके लिए वह पुनः गाँव लौटना चाहता है। वह कहता है, गाँव में चारों और हरियाली है, वहाँ कली–कली पर फुल खिलते हैं। वहाँ ताल–तलैया और बाग–बगीचे हैं। वहाँ पर घर–आंगन मुस्काते हैं। वहाँ पर सुबह हँसती है, श्याम लजाती है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति मीठे बोल बोलता है, जिससे टुटे हुए मन भी पुनः जुड़ जाते हैं।

ग्रामीण संस्कृति से अपने जीवनयान के लिए, परिवार का सदस्य घर छोड़कर शहर आ जाता है, परन्तु अपने पिछे वह एक पुरा परिवार छोड़ आता है। उस परिवार पर इस संक्रमण का क्या असर होता है, उस को यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* के नवगीत 'बेटा दूर घर से है' में लिखते हैं–

माँ हुड़कती

नहीं हिचकी थमे दादा की

याद आती एक छवि

सीधी, जरा बाँकी (151)

माँ–बाप को; बार–बार अपने पुत्र कि याद आती है। उसकी छवि उन्हें बार–बार उसकी याद दिलाती है, उसके यादो में माँ की आँखे बार–बार भर आती है। उन्हें लगता है कि उसके बैगर प्रत्येक खुशी का क्षण बेकार है, ऐसा लगता है की कोई परिंदा उड़ गया है, अपने शजर से। गाँव से शहर की और बढ़ने पर जब वह शहरी जीवन को जीना प्रारम्भ करता है, तो उसे कुछ समय पश्चात यह अहसास होने लगता है कि शहर आने पर वह बहुत कुछ खो चुका है। इसको

माहेश्वर तिवारी अपने नवगीत संग्रह *नदी का अकेलापन* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

हाथ लगी

भाषा तो

छूट गई बानी

जिसमें थी

पुरखों के

दर्द की कहानी (91)

इस नवगीत में उन्होंने भाषा को शहर का और बानी (बोली) को ग्रामीण संस्कृति का प्रतीक मानकर लिखा है कि हम शहरों में आकर भाषा तो सीख जाते है, परन्तु अपनी बोली भूल जाते हैं। इस पीड़ा में वह देखता है कि शहरी जीवन ऊपर से तो भरा–भरा लगता है, परन्तु अन्दर इसमें एक खालीपन है। इस खालीपन में उसे उसके गाँव कि यादें आने लगती है। जिन्हें वह छोड़ आया है, वह सब उसे पुनः याद आने लगता है, इस पर वह लिखते हैं–

मैं जिन्हें/पिछले सफर में

छोड़ आया था/लोग अब

रहने लगे मुझमें। (78)

वह गाँव को याद करता है, तो उसे याद आते है कोयल के बोल, पपिहे कि रटन, पिता–माँ के भजन। जब उसे यह याद आता है, तो वह महसुस करता है, गाँव कि खुश्बू अब शहर तक आ गई है। लगता है; जैसे केवडे की डाल फिर से बाते कर रही है, जिन्हें मैं छोड़ आया था, वह लोग एक बार पुनः मुझमें आकर मुझसे कहने लगे हैं, मुझे सुनने लगे हैं।

5.4 संस्कृति के धार्मिक पक्ष का वर्णन

आदिकाल से ही धर्म संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अवयव रहा है। धार्मिक भावनायें, क्रियाकलाप एवं रीति–रिवाज प्रत्येक संस्कृति की विशेषता रहे है। प्रत्येक संस्कृति में इसके विशिष्ट आयोजन होते है। सांस्कृतिक मूल्यों में, अपने धार्मिक रीति–रीवाजों का पालन बहुत ही महत्पवूर्ण माना जाता रहा है। धार्मिक भावनायें सांस्कृतिक एकता को बढ़ाने में भी सहयोग देती है। धार्मिक क्रियाकलापों के द्वारा आपसी प्रेम एवं भाइचारे को बढ़ाने में भी सहायता मिलती है। संस्कृति में व्रत, त्यौहार आदि का सैदव से महत्व रहा है। संस्कृति के विभिन्न आयामों में धार्मिक परम्पराओं का समावेश, इस प्रकार से है, जैसे दुध में चीनी मिल जाती है।

हिन्दी साहित्य परम्परा में, किसी भी कृति का प्रारम्भ ईश्वर वंदना से करने का प्रचलन, आदिकाल से रहा है। इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनुबुझी प्यास की* के प्रथम नवगीत में लिखते हैं–

मंगलम्–मंगलम

सर्वदा मंगलम्

कलेश कुण्ठा गले

दिव्य नित फले

प्राण को दिव्य आशीष

का फिर मिले

सम्बलम्–सम्बलम (90)

भारतीय धार्मिक परम्पराओं की विशेषता है 'सर्वजन हिताय'। इसी को व्यक्त करते हुए, उन्होंने सभी के मंगल की कामना की है।

भारतीय धार्मिक परम्पराओं में त्यौहारों का विशेष महत्व है। इनमें भी दीपावली एवं होली का विशेष महत्व है। दीपावली के त्यौहार पर किस प्रकार का

उल्लास होता है, इसको व्यक्त करते हुए अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

चमक रहे मिट्टी के छींटे

भौजाई के तन पर

अम्मा लीप रही है आँगन

बच्चों ने दरवाजे धोकर

सजा दिया है बाहर भीतर

आम्रपल्लवों वाला झालर (29)

बच्चों से लेकर वृद्धजनों तक, एक नया जोश दृष्टिगोचर होता है। दीपावली के समान ही; होली के समय भी यह उल्लास अलग ही स्तर पर होता है, रंगों के त्यौहार होली का वर्णन करते हुए, मधुसूदन साहा अपने नवगीत संग्रह *सपने शैवाल के* में लिखते हैं–

रंगों की जब बातें चलती

तन मन फागुन–फागुन लगता (33)

इसी संग्रह के एक अन्य नवगीत में वह लिखते हैं–

रात–रातभर/बात करेंगे

घर आना तुम फागुन में।

कहाँ–कहाँ कितने रंगों ने

कैसे–कैसे साधा है, (39)

भारतीय धार्मिक परम्पराओं में ध्यान, योग, तीर्थ यात्रा व्रत–उपवास आदि का महत्व सदैव से रहा है। 'ध्यान' के महत्व को बताते हुए, अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

'ध्यान' में संकल्प लेकर हम

काट दें भय के सभी बन्धन

'आत्मा' हैं, और हैं 'परमात्मा' हम

जान लें यह चित्त भी निष्पाप है (52)

तीर्थ यात्रा के महत्व को बताते हुए यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

हम भी तीरथ कर आए

पूजा की देहरी पर जैसे

एक दिया सा धर आए (45)

भारतीय धार्मिक परम्पराओं में प्राकृतिक तत्वों का विशेष महत्व है। यहाँ सूर्य, चन्द्र, वायु, जल को देवता का रूप माना जाता है। पीपल, तुलसी, वटवृक्ष की पूजा की जाती है। गंगा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा को माता माना जाता है। आधुनिक समय में इस विश्वास में कुछ कमी दृष्टिगोचर होती है। इसके प्रति सचेत करते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

फिर करें पूजा

चलों हम श्याम बादल की

ताकि प्यासी

रह न जायें पीढ़ियाँ कल की (33)

भारतीय धार्मिक परम्पराओं में सैदव से ही, आपसी प्रेम, दया, करुणा, परहित की कामना आदि का समवेत सम्मिलित रूप दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक समय में कुछ असामाजिक तत्त्व, धार्मिक तत्वों का दुरुपयोग करते हुए, अपना हित साधने का प्रयास करते हैं। इस प्रवृति को बताते हुए अजय पाठक अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* में लिखते हैं–

भूखे अधनंगे लोगों को

सब्जबाग दिखलाये

धर्म–कर्म की बात बताकर

आपस में लड़वाये (19)

इस प्रकार के असामाजिक तत्वों की संख्या नाममात्र की है, परन्तु फिर भी इनसे सावधान रहने की आवश्यकता है। इस प्रकार के कठिन समय में भी हमें धैर्य रखना होता है। इसकी प्रेरणा अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग करते हुए, इस प्रकार से देते हैं–

अहंकार का धनुष यहाँ फिर

'सहज' 'राम' से ही टूटेगा,

शांति और धीरज से 'सीता'

जीतेगी, हारेगा रावण (56)

उपर्युक्त नवगीतों अंगों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में भारतीय संस्कृति में व्याप्त धार्मिक परम्पराओं का सुन्दर वर्णन किया है।

5.5 सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास का बोध

भारतीय संस्कृति 'समन्वय', 'प्रेम', 'भाईचारे', सर्वधर्म सम्भाव, 'वैसुधवकुटम्बकम', 'अहिंसा' जैसे मानवीय गुणों से परिपूर्ण रही है। भारत में सांस्कृतिक समागम का ऐसा मेल मिलता है कि उसका वर्णन करना असम्भव है। इस विषय में हम देखते हैं, जहाँ अन्य संस्कृतियों ने बाहरी संस्कृतियों को अपने में समाहित करके समन्वय के गुण का प्रदर्शन नहीं किया, वहीं भारतीय संस्कृति अन्नतकाल से ही इस समन्वय का ज्वलन्त उदाहरण है। चाहे वह आर्यों से लेकर हुण, पारसी, मुगलों तक कोई भी रहा हो। जो यहां आया वह यही का होकर रह गया। यह समन्वय इतना प्रगाढ़ है कि कुछ परम्पराओं, रीति–रिवाजो को देखकर यह कहना मुश्किल है कि यह बाहरी है या यही के विद्यमान है। भारतीय संस्कृति की महानता व उसके गुणों का सुन्दर वर्णन डॉ. ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* के नवगीत 'स्वर्ण–मुकुट' में करते हुए लिखते हैं–

संस्कृतियाँ

हजार हाथों से

प्यार बांटती है

इसीलिए यह देश

विश्व का

स्वर्ण–मुकुट लगता है (66)

भारतीय संस्कृति के विभिन्न गुणों को व्यक्त करते हुए, वह लिखते हैं कि यह महान संस्कृति अपने दोनों हाथों से प्यार बाँटती है, यह नयी सोच है, यहाँ पर ऊपजाऊ भूमि है, इस पवित्र मिट्टी से ऊपजे अनाज से यहाँ पर जनमानस अपना जीवनयापन करता है। यहाँ की भाषाएँ प्यार बोलती है, यहाँ पर प्यार बोलता है। यह समस्त गुण पिछले कुछ समय में अपना महत्व खो रहे हैं। यह सांस्कृतिक पतन हमे समान रूप से ग्रामीण व शहरी संस्कृति में दृष्टिगोचर होता है। इसके विभिन्न कारण है। इसके प्रभाव व इस सांस्कृतिक पतन पर, नवगीतकारों ने संस्कृति के किसी भी अन्य पक्ष से अधिक लिखा है। इससे उनके अपने समाज के यथार्थ से जुड़े लेखन को, अपने साहित्य में स्थान देकर, उसे व्यक्त करने का सामर्थ्य परिलक्षित होता है। इस सांस्कृतिक पतन को स्पष्ट एवं प्रभावी तरीके से समझने हेतु, इसे दो भागों में विभिक्त करके इसका अध्ययन किया गया है।

5.5.1 ग्रामीण सांस्कृतिक ह्रास

भारतीय ग्रामीण संस्कृति में आ रहे परिवर्तन और उन परिवर्तनों के कारण उसके हो रहे पतन पर, नवगीतकारों ने सार्थक रूप से लेखन किया है। आधुनिकता के नाम पर हो रहे संस्कारों के पतन पर अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में लिखते हैं–

तकनीकी युग में नैतिकता

होती हवा हवाई

पश्चिम की आँधी शहरों से

गाँवों तक है आई। (94)

वर्तमा परिदृश्य में आये परिवर्तन पर वह लिखते हैं, अब संस्कार की भाषा बदल गई हैं। चलचित्रों की ओछी हरकतों से किशोर भटक रहे हैं। बचपन मोबाइल के अंधकारों में खो रहा हैं शर्म, संकोच जैसे गुणों को पुरातन घोषित कर दिया गया है। अब कोई ज्ञान, ध्यान की बाते नहीं सुनता है, मात्र फेसबुक, टवीटर पर लगे रहते हैं। अब तो खुशियाँ भी लोग बेमन से मनाते हैं, हम स्वयं में ही टुटकर टुकड़े–टुकड़े हो चुके हैं। इस बदले हुए गाँव की तस्वीर प्रस्तुत करते हुए, ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

धर्म, भाषा, संस्कृति के

आइने धुंधले पड़े है

स्नेह के पिंजड़े सुलगते

आग बस्ती में लगी है

शक्ल आदमी भेड़ियों की

लोक–संस्कृति हांकती है। (22)

वर्तमान में ग्रामीण–संस्कृति में धर्म, भाषा, संस्कारों के पैमाने छोटे हो गये है। चारों ओर एक जंगलराज सा व्याप्त है, जो इसकी शांति को दहला रहा है। ग्रामीण संस्कृति के इस पतन को, कुछ ओर मुखर रूप में व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं–

आज गांव में

नारायण दरिद्र की

कब्जेदारी

प्यार बांटने चले

कसाई

आतंकी, व्यापारी (112)

कभी महात्मा गाँधी ने 'नारायण' शब्द को ग्रामीण संस्कृति के पिछडे हुए तबके के लिए प्रयोग किया था। वर्तमान व्यवस्था ने तो वहाँ कि स्थिती में हर ओर दरिद्र नारायण पैदा कर दिये हैं। अब ग्रामीण परिवेश से वह आपसी प्रेम समाप्त हो गया है, जिसके लिए वह प्रसिद्ध था, इस पर तंज कसते हुए वह लिखते हैं, आज तो गांवो में प्यार को कुचलने वाले ही प्यार बाँट रहे हैं। ग्रामीण परिवेश में अब वह प्रेम नहीं है, इसे वह विस्तार से अपने नवगीत 'झोपड़ी के गांव' में लिखते हैं–

काटकर

मुस्कान की फसलें

पीटते है सिर

हमारे गांव

शहर के कंधे

चढ़े है गांव (119)

प्रेम, प्यार, आपसी सोहार्द्र की फसल तो गाँवो में से कट चुकी हैं, गाँव की इस स्थिति को देखकर कहना पड़ता है कि 'अब पछताय क्या होत जब चिड़िया चुग्ग गई खेत'। अब न तो गांव कि चौपाले भजन गाती है, न ही यहाँ गुलाबी दिन व चांदनी रात होती है। गांवो में अब चिड़ियों के बसरे भी नहीं है, बस्ती सुनसान सी हो गयी है। ग्रामीण परिवेश में आये इस परिवर्तन पर यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

कुछ ही दिन में घर लौटो तो

कितना कुछ बदला मिलता है

कोई बिल्डिंग उग आती है

कई पेड़ गायब होते है (94)

यह परिवर्तन इतनी तेजी से हो रहा है कि कुछ ही समय में सब कुछ बदल जाता है। कही कोई बिल्डिंग ऊग जाती है, तो कही पर प्रकृति को पुजने वाले ही पेड़ो को कटवा देते हैं।

वही गली चौराहे होते हैं, परन्तु उनमें एक अजनबीपन घर कर जाता है। रिश्तो में इस प्रकार कि मिलावट हो जाती है कि जो बाँहे कभी सहारा देती थी, वही अब बाँह मोड़ने लगती है। जहाँ पर खिड़की, दरवाजे होते थे, एक–दुसरे से बात करने के लिए, वही पर अब दीवारे खड़ी हो जाती है। हम शहरी व पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर जो कार्य कर रहे हैं, उसके प्रभावों के कारण ग्रामीण संस्कृति में जो नुकसान होता है, उस पर वह लिखते हैं–

खतरनाक सीढ़ी पर

पल पल चढ़ते जाते

हम हैं, प्रगतिशील,

आगे ही बढ़ते जाते

नाज करेंगे महल–दुमहले

जब छप्पर छानी बेचेंगे (150)

वर्तमान पीढ़ी; अपने को भले ही 'प्रगतिशील' के नारे के नीचे छुपाकर कुकृत्य कर ले, परन्तु यह बहुत खतरनाक दौड़ है, जिसमें हम बहुत कुछ खो रहे हैं। शायद पाने से अधिक खो रहे हैं। हम महल भले ही बना ले, परन्तु जो सुकुन

छप्पर में है, वह इन महलों में नहीं है, यह सर्वविदित है। ग्रामीण जीवन में धीरे–धीरे जो जहर घुल रहा है, उसको व्यक्त करते हुए अजय पाठक अपने संग्रह *मन बंजारा* में लिखते हैं–

जुम्मन की छत से अलगू ने

अपनी छत को जोड़ लिया था

इसी बात पर जुम्मन ने कल

अलगू का सिर फोड़ दिया था (37)

ग्रामीण संस्कृति में अब प्रेम–भाईचारे के स्थान पर, द्वेष की भावना घर कर गई है। गाँवों में भी अब छोटी–छोटी बातों पर झगड़ा हो जाता है। इसका कारण वर्तमान जीवन शैली प्रमुख रूप से है, क्योंकि यह हमें मिलकर काम करना नहीं सिखाती है। सब अपनी मस्ती में मस्त है, तो फिर कहाँ से आपसी तालमेल व प्रेम पनपेगा। माधव कौशिक ग्रामीण परिवेश से जुड़े हुए नवगीतकार है। वह गांवों में किस प्रकार से संस्कृति का पतन किया जा रहा है, उस पर अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

गंबई–गंवार गांव की

डालियां

पंचो की महलारी

पोखरवाले हर

बरगद की

गरदन पर है आरी (29)

इस नवगीत के माध्यम से वह बरगद (पुराने रिश्ते, नातों) कि गरदन पर आरी रखी है, के माध्यम से उनको समाप्त करने की जल्दबाजी करती, आज की

युवा पीढ़ी पर चोट कर रहे हैं। साथ ही गांव में हर गली, अब पंच–सरपंचों की राजनीति में फंसकर उनकी गुलाम बन गयी है। गांव में फैलते राजनीति के जहर को व्यक्त करते हुए वह अन्यत्र इसी संग्रह में लिखते हैं–

गांवो की चौपाल

हो गई हल्दी घाटी

जनता ने कर डाली

जड़ सारी परिपाटी (95)

गाँव में राजनीति किस हद तक पहुँच गई है, इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण शोधार्थी के गाँव में होने वाला पंच का चुनाव है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में पंच सबसे छोटा पद है। प्रत्येक वार्ड का एक पंच होता है। शोधार्थी के गांव में, 2010 में पहली बार पंच पद के लिए चुनाव करवाने की नौबत आई। इससे पूर्व वहाँ पर पंच का चुनाव सर्वसम्मिति से र्निविरोध रूप से किया जाता था। वर्तमान परिदृश्य में तो स्थिति यह है कि 2020 के चुनाव में, पंच के चुनाव में 4 प्रत्याशी खड़े हुए थे। इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता कि अब गांवों में भी लालसायें और उनके कारण उत्पन्न वैमनस्य, घर कर गया है। इसके कारणों को बताते हुए वह लिखते है; अब मेले–ठेले लगना गाँवों में पुरानी बात हो गई है। ग्रामीण संस्कृति का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग मेले होते थे, परन्तु अब वह समाप्त हो रहे हैं। इनके साथ ही इनके मध्य आपसी मेल–जोल भी खत्म हो रहा है। इस बदलते परिवेश की सच्चाई है, ग्रामीण संस्कृति का पतन।

ग्रामीण संस्कृति में एक महत्वपूर्ण गुण होना था, आपसी विश्वास, परन्तु धीरे–धीरे कुछ क्षेत्रों में यह गुण, विश्वास से कब अंधविश्वास में बदल गया पता ही नहीं चला। ग्रामीण संस्कृति कर्मवाद से भाग्यवाद में बदल गई है, उस पर यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

रवि बुध सोमवार के

अपने–अपने टोटके हैं

मंगल शुक्र बृहस्पति के

झटको पर झटके है (160)

5.5.2 शहरी सांस्कृतिक ह्रास

भारतीय समाज में शहरी संस्कृति के प्रति, सदैव से ही; एक झिझक सी रही है। उनके इस झिझक एवं संकोच के अनेक कारण भी रहे हैं, परन्तु फिर भी शहरों ने अपने आप को विकसित करते हुए, वहाँ पर एक अलग तरह के सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण किया। इसकी अपनी विशेषताएँ थी। परन्तु इसकी सबसे बड़ी खामी थी, शहरी संस्कृति ने ग्रामीण संस्कृति को सदैव ही हेयता की नजर से देखा। इस कारण से वह ग्रामीण संस्कृति के गुणों को भी आत्मसात नहीं कर पायी और अपने पतन की ओर अग्रसर होने लगी। जिन प्रतिमानों पर वह खड़ी हुई थी, वही उसके पतन का कारण बनने लगे। समय के साथ–साथ उसके अन्दर की खामिया भी बाहर आने लगी है। ग्रामीण संस्कृति से शहरी संस्कृति अपने आप को सदैव श्रेष्ठ मानती रही है, परन्तु उसने अपने इस अहंम में बहुत कुछ खो दिया है। इसको बताते हुए यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

पक्की छत को खपरैलों की बात खली

अपने को खोकर अपनी पहचान मिली

इसकी उसकी खातिर बस गुलकंद हुए (54)

शहरी संस्कृति सदैव से ही आपसे यह उम्मीद करती है कि यदि आपको उसके रंग में ढलना है, तो पुराने सारे रंग उतारने होंगे। यहाँ पहले आप जो है, उसे भुलाते है और उसके पश्चात वहाँ पर आपको नई पहचान दी जाती है। भारत में वर्तमान परिदृश्य के शहरों का विकास, मुख्यतः अंग्रेजो के शासन काल के दौरान आया। उस समय वह यहाँ की संस्कृति को पश्चिम के सामने हेय समझते थे। धिरे–धिरे यह गुण यहाँ की संस्कृति में इस प्रकार विकसित हुआ कि अब यहाँ के

शहर अपने को पश्चिम के वंशज मानकर, पूर्व रूपी ग्रामीण संस्कृति को हेय समझते हैं। इस पर विनय मिश्र अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में लिखते हैं–

पूरब की मटकी में

शीतल जल है बेपरवाह

पश्चिम को गरमाये

अक्सर यही सौतियाड़ाह (49)

इस नवगीत में 'शीतल जल' अनेक अर्थों को परिपूर्ण करता है। यह एक तरफ यहाँ की संस्कृति में व्याप्त संयम, धैर्य और प्रेम को दर्शाता है, वही दूसरी तरफ यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों को दर्शाता है और यह दोनों ही गुण सदैव से पश्चिम (शहरी) को चुभते हैं। वर्तमान शहरी संस्कृति के विषय में माहेश्वर तिवारी अपने नवगीत संग्रह *नदी का अकेलापन* में लिखते हैं–

सारे के सारे

संबंध

खो गए हैं

बदहवास भागते

शहर में (37)

वर्तमान शहरी संस्कृति की भाग–दौड़ भरी जीवन शैली में, सम्बन्धों के लिए समय कहाँ है? यहाँ पर आगे जाने के लिए आपको माँ, पिता, भाई–बहन, घर–परिवार, सब को छोड़ना पड़ता है, यहाँ पर हम अपनी जड़ो से कटकर ही जीवनयापन कर सकते हैं। इन सब के कारण शहरों में जो सन्नाटा फैलता है, उस पर मधुकर अष्ठाना अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं–

दूर–दूर

दरबों में

फैला सन्नाटा

भर गया

विचारों में

नफरत का काँटा (127)

जब आप अपने रिश्ते नातो को ही समाप्त कर देंगे, तो आपके जीवन में सन्नाटा आ ही जायेगा। आपका पारिवारिक जीवन ही आपमें संस्कार, प्रेम, व अपनत्व के गुण विकसित करता है। यदि यह गुण नहीं आयेगे, तो आपके अंदर नफरत के कांटे आ ही जायेंगे। शहरी जीवन की पीड़ा को आवाज देते हुए माधव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

छोटा–सा कमरा

शहरों में

कहलाता है घर

दरवाजे की हर झीर्री से

झांक रहा है ड़र (61)

गांव के खुले वातावरण से, शहरी जीवन की तुलना करना ही बेमानी है। यहाँ पर एक कमरे (जिसे शहरी भाषा में 1BHK कहा जाता है) का मकान लेने में ही जीवन गुजर जाता है। उस मकान के हर खिड़की–दरवाजे से डर झाँकता है। जो सुकुन गांवों में है, वह शहरों में नहीं है। यहाँ रात में चोरी के डर से आप सो नहीं सकते हैं। एक ड़र सदैव आपको घेरे रहता है। इसी कड़ी में वह एक अन्य नवगीत में लिखते हैं–

विषधर जैसी/काली सड़कें

नंगे तन पर फैली/हर रिश्ते को

लील गई हैं/झीनी चादर मैली (78)

चारों ओर डामर की सड़के और कंक्रीट के जंगल के समान ऊग गई ऊँची–ऊँची बिल्डिगें, यही परिचय है; शहर का और शहरवासियों का। यहाँ रिश्तों के नाम पर आप सिर्फ किसी 'मि.शर्मा' या किसी 'मिसेज वर्मा' को जानते है। आपका पड़ोसी भी हो सकता है, आपका पुरा नाम न जानता हो। इसलिए कहा भी जाता है कि शहरों में आप मकान नं. से जाने जाते है और गाँवों में अपने/अपने पिताजी के नाम से। महानगरीय संस्कृति के इस छोटेपन पर वह अपने नवगीत 'कुंठित महानगर' के माध्यम से लिखते हैं–

छोटेपन का, ओछे मन का

कुंठित महानगर।

पत्थर दिल पत्थर जैसा है

शापित महानगर (157)

इस नवगीत के माध्यम से वह शहरी संस्कृति के छोटेपन को उजागर कर रहे हैं। वह यहाँ की मानवता को नष्ट करने वाले कारक के रूप में, यहाँ के निवासियों का पत्थर दिल हो जाना मानते हैं। शहरी संस्कृति के अवगुणों को बताते हुए ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

आओ विश्वग्राम में

अपना नया फ्लैट बनवायें

कड़वाहट पर नित्य मिठासें

बूंद–बूंद छलकायें (47)

शहरी संस्कृति एवं परिवेश स्वयं अपना तो अहित करते ही है, वह साथ ही साथ ग्रामीण संस्कृति के पतन में भी सहयोग प्रदान करते है। इस पर ओमप्रकाश सिंह का यह नवगीत दृष्टव्य है–

संस्कार बूढ़े हैं

थाम रहे

लहरों को

तोड़ रहे

जाने क्यों

आज गांव शहरों को (147)

संस्कारहीनता गांव व शहर दोनों को समान रूप से प्रभावित करती है। शहरी जीवन में जीवन शैली में क्या–क्या अवगुण आ रहे हैं, उस पर अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चुनते* में एक नवगीत के माध्यम से लिखते हैं–

कंक्रीट के

जंगल में अब

पैकेट का फैशन पसरा है,

पिज्जा, बर्गर

पेट भर रहे

मन भूखा कैसे समझाएँ? (76)

इस नवगीत के माध्यम से वह वर्तमान शहरी संस्कृति में सब कुछ पैकेट का ही खाने का प्रचलन बढ़ रहा है, उस पर चोट कर रहे हैं। पहले घर में ही जरूरत

की चीजें बनाई जाती थी। माताएँ अनाज घर में ही पिसती थी। दाल, मसालों की पिसाई घरों में होना आम बात थी। घर–घर आचार मुरब्बे बनाये जाते थे। सर्दियों में घी के लड्डू बनाये जाते थे, परन्तु अब हम मात्र पिज्जा बर्गर से अपना पेट भर रहे हैं। अब सबको सब कुछ बना–बनाया चाहिए। समय का अभाव तो मात्र बहाना है, सब मेहनत से बचाना चाहते हैं।

इसी नवगीत में वह हमारी नयी पीढ़ी के अन्दर आ रहे अवगुण पर लिखते हैं, वर्तमान समय में हम बच्चों को बचपन में ही मोबाइल पकड़ा देते हैं। वह गेम, चैट तक सीमित हो जाते हैं। घर में उपस्थित दादा–दादी के पास न तो वह बैठते है, न उनके साथ बात करते हैं।

इस प्रकार के पारिवारिक परिवेश में, बचपन से ही संस्कारों का अभाव होने लगता है। वर्तमान पीढ़ी बच्चों को शारीरिक खेलो से दूर रखती है। फिर कहते हैं, बच्चे का शारीरिक व मानसिक विकास नहीं हो पाया है, परन्तु इसका दोषी कौन है? सुविधाये प्रदान करना प्रत्येक माता–पिता का दायित्व है, परन्तु सुविधाओं के नाम पर उनसे उनका बचपन छिन लेना भी अपराध है। इस कारण से शहरी जीवन में कितना अवसाद घर कर गया है, इस पर बृजनाथ श्रीवास्तव के संग्रह *रथ इधर मोड़िये* का यह नवगीत दृष्टव्य है–

रहने को एक शहर लेकिन

जलती हुई सड़क है

अंदर से सब बुझे–बुझे हैं

बाहर खीझ कड़क है (120)

यदि मानव अपने आस–पास एक सही माहौल का निर्माण नहीं कर पायेगा, तो अन्दर से टुट ही जायेगा। इसलिए तो रामसनेही लाल अपने संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में लिखते हैं–

ढूढ़ते हो आदमी

क्या बावले हो?

इस शहर में? (33)

इस शहर में आपको भले ही मॉल, बाजार, कालोनियाँ, कार, कम्प्यूटर मिल जाये, परन्तु इंसान और इंसानियत मिलना मुश्किल है। यहाँ आपको मरी हुई संवेदनाये मिलेगी और इन मरी हुई संवेदनाओं को ढोते हुए इंसान मिलेंगे। एक जिन्दादिल इंसान समाज के लिए वरदान की तरह होता है, क्योंकि जिन्दादिली वह गुण है, जिससे इंसान सुख हो या दुःख, दोनों का सामना करने की हिम्मत पैदा कर सकता है, परन्तु शहरी संस्कृति ने वहाँ के निवासियों के जीवन से जिन्दादिली को समाप्त कर दिया है। इस पर रामसनेही लाल लिखते हैं–

शहर की जिन्दादिली/सोई हुई है

क्या करें?/कैसे जगायें?

हर सहज सम्वेदना/ खोई हुई है

क्या करें?/कैसे उठाये? (125)

मानव के मशीन बनने कि कहानी कहता है, यह नवगीत। आज के दौर में वैज्ञानिक इस प्रकार के रोबोट विकसित करने में लगे है, जिनमें हमारी तरह भावनायें हो, परन्तु कोई भी यह नहीं देख पा रहा है कि मनुष्य में से सम्वेदनायें समाप्त होकर, वह भावना शून्य हो रहा है। उसकी जिन्दादिली सो गई है। अगर यही गति रही तो रोबोट में सम्वेदनाये आये या न आये, परन्तु इंसान संवेदना शून्य मशीन अवश्य बन जायेगें।

संस्कृतियों के इस पतन को प्रभावी रूप से व्यक्त करते हुए ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

ओठों पर। जो बची कथाएँ

यादों में संज्ञाएँ। उनके बिम्ब

खोल देते है। मन की बंद व्यथाएँ

गलियारों मे। राजपथों तक

लंगड़ी हैं संस्कृतियाँ (37)

वर्तमान समय में वह चाहे गलियारो से युक्त ग्रामीण संस्कृति हो या राजपथों से युक्त शहरी संस्कृति, सभी में सांस्कृतिक ह्रास के लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

उपर्युक्त अध्याय में सम्मिलित नवगीत अंशों से यह स्पष्ट होता है कि नवगीतकारों ने शहरी एवं ग्रामीण संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्यों में हो रहे पतन, सांस्कृतिक संक्रमण के कारण होने वाले प्रभावों पर बहुत ही स्पष्ट एवं मार्मिक ढंग से लिखा है। नवगीतकारों ने दोनों संस्कृतियों के विभिन्न आयामों एवं विशेषताओं का वर्णन भी अपने नवगीतों में किया है। परन्तु इस वर्णन में नवगीतकारों का झुकाव ग्रामीण संस्कृति के लिए अधिक है। इसका कारण यह हो सकता है कि अधिकांश नवगीतकार ग्रामीण सांस्कृतिक माहौल में पले–बढ़े है। इस अध्याय से शहरी संस्कृति की विशेषताओं के वर्णन में नवगीतकारों द्वारा किया गया संकोच स्पष्ट होता है।

अध्याय 6

21वीं सदी के नवगीतों में पर्यावरणीय युगबोध

पर्यावरण मात्र 'परि+आवरण' से मिलकर बना शब्द नहीं है। यह पृथ्वी पर मानव जीवन के होने का कारण है। पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरणीय अवस्थायें ही मानव जीवन का कारण है। प्रकृति एवं मानव का रिश्ता अटुट है। यह सदैव से ही एक दूसरे को प्रभावित करते है। 20वीं सदी में फैले औद्योगिकीकरण एवं भौतिकवाद ने इस रिश्ते को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाया है। इन घटनाओं ने इस रिश्ते में मानव को दोहनकर्ता के रूप में खड़ा कर दिया है। अब मानव जगत प्रकृति के नुकसान के स्थान पर, अपने लालच को अधिक महत्व देने लगा है। 21वीं सदी आते–आते मनुष्य को अपनी भूल महसूस होने लगी है। अब प्रकृति को बचाने के अनेक प्रयास मानवों के द्वारा किये जाने लगे है। इस कारण से संयुक्त राष्ट्र के द्वारा सतत् विकास लक्ष्यों का निर्धारण किया गया है। राष्ट्रों को अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को प्राकृतिक ऊर्जा संसाधनों से पूर्ण करने को कहा जाता है। परन्तु हमारे द्वारा किया गया दोहन, इतनी मात्रा में पर्यावरण को नुकसान पहुँचा चुका है कि इन सभी प्रयासों के परिणाम आने से समय लगेगा।

6.1 पर्यावरण असंतुलन का वर्णन

वर्तमान वैज्ञानिक खोजो के अनुसार अभी, तक हम केवल पृथ्वी पर ही जीवन की खोज कर पाये हैं। इस अनन्त ब्रहमाण्ड में, हम अनेक सौरमण्डल एवं आकाशगंगाओं की खोज कर चुके हैं। यहाँ तक अनेक ऐसे ग्रहों की खोज भी हो चुकी है, जो कि पृथ्वी के समान प्रतीत होते हैं, परन्तु फिर भी हम एक भी ऐसा ग्रह, उपग्रह नहीं ढूँढ़ पाये हैं, जहाँ जीवन विद्यमान है, इसका अर्थ यह नहीं है कि इस अन्नत ब्रहमाण्ड में और कहीं जीवन है ही नहीं। यह मात्र हमारे तकनीकी ज्ञान की सीमा हो, जिसके कारण हम उन तक नहीं पहुँच पाये हैं, परन्तु इससे यह तो स्पष्ट होता है कि हमारी पृथ्वी विशेष है। इसको विशेष एवं जीवन के लायक बनाता है इसका पर्यावरण, यहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन, जीवनयापन करने लायक परिस्थितियाँ, इस पर्यावरण के सम्मिलित एवं सही मिश्रण से ही उत्पन्न होती है। पर्यावरण को हम किसी परिभाषा में नहीं बाँध सकते हैं। हम साधारण भाषा में कह सकते हैं, जो प्राकृतिक है; वह ही पर्यावरण है।

हिन्दी साहित्य परम्परा में प्रकृति एवं पर्यावरण का सदैव से ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ऋतु वर्णन के माध्यम से प्रेम का वर्णन बहुत ही सामान्य घटना है। नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन, प्रकृति के माध्यम से किया जाता रहा है। श्रृंगार के दोनों पक्षो; संयोग–वियोग का वर्णन भी प्राकृतिक घटनाओं के माध्यम से होता रहा है। बंसत एवं वर्षा ऋतु का चित्रण तो बहुतयात में होता रहा है, साथ ही कई कवियों ने तो बारहमासा भी लिखे हैं। हिन्दी गीतों कि यह परम्परा नवगीतों में आकर थोड़ी लुप्त सी हो गई। इसके मुख्यतः दो कारण रहे हैं, प्रथम तो मंचीय कवि अपने गीत/नवगीतों में प्रकृति व प्रणय का बहुत प्रयोग कर रहे थे। इस कारण से नवगीत, पर कोमलकात भावनाओं के वर्णन के आरोप लगने लगे और आलोचक इस आधार पर नवगीत का विरोध करने लगे। दूसरे कारण के रूप में विद्यमान है, नवगीतकारों की इन तथाकथित आलोचक को गलत साबित करने कि इच्छा। उन्होंने नवगीतों में उस समय के जटिल यथार्थ का वर्णन करने हेतु, कथ्य और शिल्प के क्षेत्र में अनेक नये आयामों का सृजन किया। जिसके कारण प्रकृति वर्णन थोड़ा पीछे छुट गया।

यह स्थिति 21वीं सदी में आकर थोड़ा परिवर्तित हो रही है। चूँकि अब नवगीत अपने 60 से अधिक बंसत देख चुका है। अतः उसने एक बार फिर से उन पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया है, जो शायद छुट से गये थे। प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से अपनी बात कहने का दौर भी शैनः शैनः लौट रहा है। अपने नवगीत 'नीम एक पेड़' के माध्यम से, पुरे ग्रामीण परिवेश का वर्णन करते हुए, यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

नीम का ये पेड़ बाबा की निशानी है

इसी के नीचे हुई बेटी सयानी है (65)

वृक्षों के विषय में कहा जाता है कि आप एक पेड़ लगाते हैं, तो वह तीन पीढ़ियों का साथ देता है। उसके वर्णन को कहते हुए वह लिखते हैं, ये नीम का पेड़ बाबा की निशानी है, इसके नीचे उनके परिवार के सदस्य बड़े हुए है। इसकी हरी पत्ती के साथ–साथ ही उनकी बिटियाँ के हाथ पीले हुए है। इसकी डालों पर

झुले डालकर बच्चों का बचपन खेलता है। इसकी टहनियाँ दादी के चश्में की कमानी बन जाती हैं, कभी उनका दातुन के रूप में प्रयोग होता है। यह सालों से हमारे फेफड़ो में हवा भर रहा है। गर्मी के दिनों जब धरती जलती है, तो पुरा परिवार दरी खाट डालकर इसके नीचे आ बैठता है। ऐसा लगता है, यह परिवार का ही एक प्राणी है। एक पेड़ एवं मनुष्य के मध्य इससे बेहतर अपनापन नहीं हो सकता है। प्रकृति सदैव से ही मात्र देने में विश्वास रखती है, यह हमसे कुछ माँगती नहीं है। इसी कारण से ओमप्रकाश सिंह अपने संग्रह *तंग जड़ो में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

इस बरगद की/शाखाएँ मत काटो

इसकी छाया में सदियाँ गुजर गई

यह संस्कृति है

अतीत की खिड़की से

जो आंक रही है (51)

बरगद की शाखाओं को काटने से रोकने हेतु वह कहते हैं, यह हमारे अतीत कि संस्कृति की झांकी है। अनेक आँधी–तुफानों को सहकर भी यह खड़ा रहा है। यह अपनी व्यथा कहना चाहता है, पथिकों से; परन्तु उनकी बे–सिर पैर कि बातों पर खीझ रहा है। आज के समय में प्रकृति व पर्यावरण की दुर्दशा देखकर, यह बरगद का पेड़ वेदना से भर जाता है।

नवगीतों में अब ऋतु वर्णन भी प्रराम्भ हो गया है, परन्तु नवगीतकारों ने इसे ग्रामीण जीवन एवं क्रियाकलापों से जोड़कर, प्रयोग किया है। अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

पीले पड़े हुए पत्तों का

रंग हुआ धानी

'सुनों' धान के बिखे रोपो

ठहरा है पानी (23)

सावन ऋतु के आने पर ग्रामीण जीवन में क्या परिवर्तन होता है, उसका सुन्दर वर्णन है; इस नवगीत में। किसान के द्वारा डाला गया बीज जो कुम्हलाने लगा था, अब वह नया जीवन पाकर उगने लगा है। इस कारण से सारा आंचल हरा–भरा हो गया है। पेड़े–पोधों के जो पत्ते पीले पड़ रहे थे, अब उनका रंग बदलकर धानी हो गया है। धान रोपने का कार्य प्रराम्भ हो गया है। यह सारा पुण्य; ऐसा लगता है कि ग्रामीण बहुओं ने रात मे पूजा की है, उसका है। (ग्रामीण समाज में सावन के महीने में प्रातःकाल जल्दी ऊठकर सावन के गीत गाने कि परम्परा के सन्दर्भ में।) अब तो बादलों से इतनी ही प्रार्थना है कि वह भादों में कृपा करें, जिससे घर भर में नये–नये चावल पकने कि खुश्बू भर जायें। भारतीय किसान जीवन एवं कृषि व्यवस्था मौसम पर कितनी आश्रित है कि यहाँ पर कहा जाता है कि–"भारत का असली वित्त मंत्री तो मानसून है।" इसलिए प्राचीन काल से ही भारतीय किसानों का प्रकृति से गहरा जुड़ाव रहा है। बंसत ऋतु का वर्णन करते हुए ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

फिर बसन्त ने

हँसकर देखा

खिले पुष्प के गहने

हाथ बढ़ा पौधों से मांगें

लाओ, हम भी पहने (139)

जब बंसत आता है, चारों दिशाये खिल ऊठती है। इसलिए बंसत को ऋतुराज कहा जाता है। इसका वर्णन करते हुए वह लिखते हैं, चारों और पुष्पों के गहने सज गये हैं। चम्पा व चमेली सज गई है, कुमुदिनी मंद हवा कि छेड–छाड़ को सहन कर रही है। लहरों के द्वारा घाटों को चूमा जा रहा है, यह धरा (पृथ्वी) दुल्हन बन गई हैं।

मनुष्य एवं प्रकृति के मध्य सम्बन्धों के समान ही, प्रकृति एवं गीतों का भी अटुट सम्बन्ध रहा है। इसलिए यह कहा जाता है कि प्रकृति गीत गाती है, हवा गुनगुनाती है, पानी कल–कल बहता, झरनों में लय–ताल है। उसी प्रकार जब प्रकृति का साथ मिलता है, तो मानव भी गीत गाता है। प्रकृति व मनुष्य के सम्बन्ध को विनय मिश्र अपने नवगीत संग्रह *समय की आंख नम है* में इस प्रकार लिखते हैं–

दौड़ लगाती पंगडंडी पर

पसरी मटर निराली

चना और सरसों मस्ती में

खूब बजाये ताली (108)

X X X X X

झट बाँसी के झुरमुट से तब

निकले चंदा मामा

रातों के पहरे में भी

दिन गाता सारे गा मा (108)

जब प्रकृति अपने सौन्दर्य पर होती है, तो वह हर चीज में गीत गाती हुई सी प्रतीत होती है। ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में इसे इस प्रकार लिखते हैं–

चिड़ियाँ, पौधे

नदी, मछलियाँ

गीत सभी गाते हैं

ये नवगीत

समय के घट से

छलक छलक जाते है (16)

नवगीत का सम्बन्ध प्रकृति से इतना प्रगाढ़ है कि प्रकृति का प्रत्येक सजीव एवं निर्जीव अंग गीत गाता है। चिड़ियों कि चहचहाट हो या नदियों की कल–कल सभी में गीत है। इन्हीं से नवगीत निकलकर आते हैं।

6.2 पर्यावरण के अवैज्ञानिक दोहन का वर्णन

मानव एवं प्रकृति का सम्बन्ध बच्चे–माँ जैसा सम्बन्ध है। प्रकृति हमारा पालन–पोषण अपनी संतान के समान उसी प्रकार करती है, जिस प्रकार माता, अपने बच्चे को पालती है। परन्तु आधुनिकता के नाम पर, जिस प्रकार मानव अपनी माताओं के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है, उसी प्रकार से वह प्रकृति के साथ भी छल कर रहा है। प्रकृति ने सदैव मनुष्य कल्याण हेतु, अपना सर्वत्र उसे अर्पित किया है और बदले में कुछ नहीं माँगा है। आज का मानव अपने लोभ और लालच (जिसे वह विकास का नाम देता है) के वशीभूत होकर उसका दोहन किये जा रहा हैं, यह दोहन इतने अवैज्ञानिक तरीके से हो रहा है की धरती माँ भी परेशान हो जाती है। इसी कारण से वह कभी–कभी क्रोधित भी हो जाती है। मनुष्य को अनेक चेतावनियाँ भी देती है, परन्तु मानव है कि मानता ही नहीं है। उसे सिर्फ और सिर्फ स्वयं के लालच की चिन्ता है।

मानव ने शहरीकरण के नाम पर सर्वाधिक विनाश किया है, प्राकृतिक संसाधनों का उसने जंगलों को काटकर चारो ओर क्रंकीट के जंगल खड़े कर दिये हैं। इसे व्यक्त करते हुए माधव कौशिक अपने संग्रह *जोखिम भरा समय है* लिखते हैं–

फैले जंगल

कंक्रीट के

जंगल तक (75)

इस नवगीत में वह मुख्यतः शहरी जीवन की पीड़ा का वर्णन कर रहे हैं, परन्तु उस पीड़ा के मुख्य अवयव के रूप में, वह शहरों का प्रकृति से दूर हो जाना

मानते हैं। यदि मानव प्रकृति के रंगों से दूर हो जायेगा, तो उसे जीवन में आनन्द कैसे आयेगा ? यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* के नवगीत 'कितना कुछ बदला मिलता है', में उस पीड़ा को लिखते हैं जो व्यक्ति कुछ दिन अपनी मातृभूमि से दुर रहकर, पुनः वापस आकर उसमें आये परिवर्तनों को देखकर भोगता है। इन्हीं में से एक है, प्रकृति को नष्ट होते देखना, वह लिखते हैं–

कोई बिल्डिंग उग जाती है

कई पेड़ गायब होते है (94)

एक वृक्ष को लगाने पर, उसका पालन पोषण अपने बच्चे कि तरह करना पड़ता है। वर्तमान पीढ़ी जहाँ फ्लैटो में जीवन यापन कर रही है, वहाँ उसे वृक्ष का महत्त्व नहीं समझ आता है, परन्तु उसे काटने की हौड़ में सब लगे हैं। जंगलों की अंधाधुंध कटाई का कारण धरती पर मनुष्य की बढ़ती हुई भीड़ के लिए रहने कि जगह को तलाशना है। जंगलों की इस कटाई पर पेड़ कि पीड़ा को बताते हुए यश मालवीय अपने संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

सोचता कुछ खड़ा साहिल पर अकेला पेड़

एक पत्थर सा रखे दिल पर अकेला पेड़ (66)

साहिल किनारे खड़ा अकेला पेड़ बहुत कुछ सोचता है। वह मनुष्य के लालच को देखता है, फिर भी उससे सभी रिश्ते निभाता है। वह अपने दिल पर पत्थर रख लेता है।

मानव के लालच और प्राकृतिक संसाधनों के अवैज्ञानिक दोहन में उत्प्रेरक का कार्य किया है, मशीनीकरण ने। मशीनों के माध्यम से धरती के गर्भ से कई किलोमीटर नीचे तक पानी, खनिज निकाला जा रहा है। जहाँ सुबह जंगल होता है, वहां रात भर में वह जंगल कट जाता है। इसको देखते हुए अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने संग्रह *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

पानी से भरे पोखरे थे

पेड़ों से हरा भरा कोना

X X X X

आ गयी मशीने बेशुमार

छिनती धरती पानी के घर (42)

मशीनों ने पानी के घरों को छिन लिया है, तालाब, बावड़ियाँ, जोहड़ समाप्त हो रहे हैं। मनुष्य की यह मनमानी केवल वनों तक सीमित नहीं है। वह तो जल, थल, नभ हर स्थान पर प्रकृति का शोषण कर रहा है, इसी कारण बृजनाथ श्रीवास्तव को अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में लिखना पड़ा–

हो रही नभ

और जल थल में प्रकृति के

संग मनमानी

कुछ इस तरह

आदमी की आँख का है

मर गया पानी (32)

मनुष्य अपने लालच के वशीभुत होकर प्रकृति का दोहन किये जा रहा है। मनुष्य अपने इस लालच में सर्वाधिक कष्ट नदियों को दे रहा है। वह उन पर बाँध बनाकर, उनके अविरल प्रवाह को रोक रहा है। इस पर यशोधरा राठौर अपने नवगीत संग्रह *जैसे धूप हंसती* है में लिखती हैं–

नदी पर ही

बांध बांधा है किसी ने

नदी को वश में किया है

आदमी ने (79)

नदियों पर बाँध बनाकर मनुष्य नदी चक्र के साथ छेड़छाड़ करता है। मनुष्य ने सतत् प्रवाहमान नदियों को मात्र बरसाती नदियों में परिवर्तित कर दिया है।

6.3 नवगीतों में पर्यावरण के ह्रास का वर्णन

मनुष्य के द्वारा किये जा रहे प्रकृति के अवैज्ञानिक दोहन के परिणाम कितने भयंकर हो सकते हैं, यह अब दिखने लगा है। मनुष्य के लालच और विकास के नाम पर प्रकृति को लुटने की मची होड का ही परिणाम है कि प्रकृति के खजाने खाली हो रहे हैं। जो संसाधन पहले सर्वसुलभ थे (पानी, शुद्ध वायु) वह अब पैसों में प्राप्त होने लगे हैं। आज का मानव उस शराबी व्यक्ति के समान व्यवहार कर रहा है, जो अपने नशे के सामान की पूर्ति हेतु अपनी माँ के गहने बेच देता है। जब उस नशे के परिणाम स्वरूप वह बीमार होता है, तो माँ चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती है, क्योंकि उसके संसाधन तो उसने पहने ही बेच दिये हैं। मानव के लालच के कारण ही आज प्रकृति एवं पर्यावरण अपने ह्रास की ओर बढ़कर पृथ्वी के पर्यावरण में असंतुलन पैदा कर रहे हैं। यह हमें अनेक रूपों में दिखाई देने लगा है।

इस अवैज्ञानिक दोहन ने सर्वाधिक प्रभावित वर्षा चक्र को किया है, इसके कारण से मानसून कभी जल्दी आता है, कभी देर से, कही अतिवृष्टि है, तो कही अनावृष्टि, कही सुखा पड़ रहा है, तो कही बाढ़ आ रही है। 'जल ही जीवन है' सिर्फ नारा बनकर रह गया है। बादल आकर भी किस प्रकार से चले जाते हैं, इसको माहेश्वर तिवारी अपने नवगीत संग्रह *नदी का अकेलापन* में नवगीत 'गुजर गए बादल' में लिखते हैं–

कभी इधर से/कभी उधर से

गुजर गए बादल/ अनबरसे।

अनधोए–से/पेड़ खड़े है

लगता जैसे चित्र जड़े हैं (15)

प्राकृतिक बारिश पेड़–पौधो के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। जल से ही जंगल बनता है। जब बारिश ही नहीं होगी, तब कैसे पेड़–पौधे खिलेगें। वह तो ऐसे ही लगेंगे जैसे मनुष्य रात की नींद से जगता है तो बैगर मुँह धोये प्रतीत होता है।

वह आगे लिखते हैं कि पानी तो अब मात्र फुलो कि आँखों में रह गया है। बादलों के न बरसने से सर्वाधिक प्रभाव हमारी जीवनदायनी नदियों पर पड़ता है।

आप विश्व का इतिहास देख ले, प्राचीन काल से आधुनिक काल तक, महान सभ्यताओं से महानगरों तक, सभी ने अपने आप को किसी नदी के किनारे ही बसाया है। सरस्वती नदी के किनारे मोहनजोदड़ो से लेकर, दूर अफ्रीका में नील नदी के किनारे बसी मसोपोटामिया की सभ्यता, गंगा किनारे बसे अयोध्या से यमुना किनारे बसे दिल्ली तक, प्रत्येक सभ्यता नदियों के किनारे ही फली–फुली है। भारत में यही कारण रहा है कि नदियों को माँ का दर्जा प्राप्त है। इनका वर्णन हमारे राष्ट्रगान में भी है, परन्तु अब नदियाँ समाप्त सी हो रही है। आधुनिकरण के नाम हमने इनकी धारो को बांधों से बांध दिया है, अल्प वर्षा के कारण अब इनका प्रवाह मात्र, मौसमी हो कर रह गया है। इसका ज्वलंत उदाहरण है, यमुना नदी की दिल्ली में स्थिति। यमुना दिल्ली में मात्र एक नाले के रूप में रह गई है। इस पीड़ा को लिखते हुए विनय मिश्र अपनी पुस्तक *समय की आँख नम है* में लिखते हैं–

खुशबुओं के चित्र के

है रंग सब बरबाद

मिट रही है हर निशानी

अब नदी की (36)

यह नदियां प्राणदायीनी होती है, शहर की जीवन रेखा होती हैं इसी पुस्तक में वह पुनः एक अन्य नवगीत में लिखते हैं–

नदी शहर का हाकिम होती है

X X X X

दुआ कुबूले और खुशी के लमहे बोती है (37)

हजारों मनुष्य के जीवनयापन में सहयोग करती है; नदियाँ। हमारे लोभ लालच ने इन्हें समाप्त कर दिया है। नदी की पीड़ा को कहते हुए विनय मिश्र पुनः लिखते हैं–

धुप कुहरे में नदी अकेली

बिलख रही है (100)

इस पीड़ा से मनुष्य तो तड़प ही रहा है, परन्तु नदी स्वयं भी बिलख रही है। अब वह दुसरो से अपनेपन की उम्मीद नहीं करती है, वह स्वयं को ही नहीं ढूँढ़ पा रही है।

नदी कि इस पीड़ा को यश मालवीय अपनी पुस्तक *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

होती है राख नदी

नदियों के तट भी झुलसे मिलते हैं

सम्बन्धों की बात क्या कहें

वो टूटे पुल से मिलते है (68)

इस नवगीत में वह नदी को आधार बनाकर मानव मन की पीड़ा का वर्णन कर रहे हैं, परन्तु साथ ही नदी कि पीड़ा का वर्णन भी स्वयं हो जा रहा है। यही तो सम्बन्ध है मानव एवं प्रकृति का, यदि प्रकृति प्रसन्न है; तो मानव मन भी प्रसन्न रहता है। वह प्रकृति के साथ–साथ चलता है। जिस प्रकार से नदी का पानी कम हो रहा है। उसके साथ–साथ हमारे संबंधों की नदी का पानी भी कम हो रहा है। नदियों की इस पीड़ा का वर्णन ओमप्रकाश सिंह अपने संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

अब देखो/बीमार लग रही

दुबली हुई नदी

उतर गये/ श्रृंगार देह के

लूटी हुई नदी (28)

आज नदियाँ मात्र नालों के रूप में प्रवाहित हो रही है। ऐसा लगता है किसी स्त्री के सम्पूर्ण श्रृंगार को उतरवाकर, उसकी अस्मिता पर बार–बार प्रहार किया जा रहा हो। मनुष्य अपने लोभ के वशीभुत होकर ऐसा कर रहा है। औद्योगिकरण एवं विकास के नाम पर हमने नदियों के साथ क्या किया है, इसको बृजनाथ श्रीवास्तव अपनी पुस्तक *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

नदी माँ जो कि सिर पर

हाथ रखती थी

इसे निर्मल किए थी

प्यास हरती थी

क्या गजब

अब तो नदी

पंक का नद है (42)

हमारी प्यास बुझाने वाली पवित्र नदियों को, हमने मात्र गंदे नालों में बदल दिया है। हमारी सरकारे चाहे कितनी कोशिश कर ले, फिर भी सारे कारखाने अपने अपशिष्टों को नदियों में प्रवाहित कर देते हैं। बाकि कार्य हमारी सरकारे स्वयं इनकी धारों पर बांध बनाकर पुरा कर देती है। मनुष्य कि इस हरकत को यशोधरा राठौर अपने नवगीत संग्रह *जैसे धूप हंसती है* व्यक्त करते हुए, लिखती हैं–

नदी पर ही

बांध बांधा है किसी ने

नदी को वश में किया है

आदमी ने

नदी दुख

सहती रही, यह भी सहेगी (79)

मनुष्य अपने लालच के वशीभूत होकर एवं अपने दिमाग को शक्तिशाली समझकर, नदियों को बांध रहा है। परन्तु मनुष्य का सार्मथ्य पृथ्वी के सामने कुछ भी नहीं है। इसको प्रकृति समय–समय बताती रहती है। हाल में ही चीन में आई बाढ़ इसका उदाहरण है। चीन ने दुनिया की सबसे बड़ी बाँध परियोजना का निर्माण करके दुनिया को कहा कि अब उसके यहाँ बाढ़ नहीं आयेगी। प्रकृति ने एक झटके में उसके सारे दावों की हवा निकाल दी। इसलिए हमें नदियों के धैर्य की परीक्षा लेने से बचना होगा। नदी हमारे कल्याण हेतु दुखों को सह लेती है, इसे हमें अपना अहंकार नहीं बनाना है। नदी कि इसी सहनशीलता का वर्णन ओमप्रकाश सिंह अपने संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* के नवगीत 'नदी चुपचाप है' में इस प्रकार करते हैं–

यह नदी चुपचाप है

कुछ बोलती नहीं,

यह नदी विष को अधर पर

घोलती नहीं, (70)

नदियाँ मनुष्य के द्वारा दी जा रही पीड़ा, को उस माँ के समान माफ कर रह है, जो अपने बच्चे कि प्रत्येक गलती को माफ कर देती है। कभी भी उसे अपशब्द नहीं बोलती है, परन्तु मनुष्य के लालच का कोई अन्त नहीं है, वह अपनी अज्ञानता में माँ रूपी प्रकृति का शोषण करे जा रहा है। इसके कारण से अब नदियों का जल स्तर समाप्त हो रहा है और वह सुख रही है।

इसको व्यक्त करते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

आज जड़ जंगल

मरें प्यासे बिना जल के

हो रहे कंकाल

तरूवर भी बिना फल के (31)

नदियाँ सिर्फ मनुष्य का पालन पोषण नहीं करती हैं, एक पुरा पारिस्थिकी तन्त्र नदियों पर टीका होता है। प्रत्येक नदी मानव के साथ–साथ जल जीवों, जंगलों, जंगली जीवो के जीवन के लिए भी उत्तरदायी होती है। मनुष्य मात्र स्वयं को श्रेष्ठ समझता है और सभी जीवों को अपने से निम्न समझता है, परन्तु ऐसा नहीं है। इसको और गहराई से समझने हेतु हमें, आर्ने नस के द्वारा प्रतिपादित गहन पारिस्थितिकी (Deep Ecology) के सिद्धान्त को समझना होगा। उनका गहन पारिस्थितिकी सिद्धान्त–पर्यावरणीय नैतिकता से सम्बन्धित एक विचार है, जो यह मानता है कि प्रकृति के सभी अंग एक दुसरे से और एक दुसरे को प्रभावित करते है। यह विचार मानवीय श्रेष्ठता को खारिज करता है तथा सभी प्राणियों के बुनियादी नैतिक और कानूनी अधिकार को स्वीकार करता है। इसके अनुसार हर जीवित प्राणी का एक स्वतंत्र जीवन होता है, इसलिये उन्हें सिर्फ 'संसाधन' के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। (Drishti IAS के युटुब चैनल से, 24 सितम्बर 2020)

मनुष्य ने इस सिद्धान्त का पूर्णतया बहिष्कार किया है और प्रकृति के अन्य सभी अवयवों एवं जीवों को, मात्र संसाधन के रूप में इस्तेमाल करता है। यही कारण है कि नदियाँ मर रही है। जब नित प्रवाहिनी नदियाँ मनुष्य के लालच के आगे मिट रही है, तो छोटे–पोखर तालाबों का तो कहना ही मुश्किल है। उनका तो अस्तित्व ही समाप्त हो रहा है। इसको ओमप्रकाश सिंह अपनी पुस्तक *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

दुबले हो गये

ताल–तलैया

मेघ बिना

X X

सूख रहे है। खेत हमारे

चिड़िया लौट चलो (117)

बारिश न होने के कारण ताल–तैलया सूख गये हैं। जिसके कारण से मनुष्य खेतो में पानी नहीं दे पा रहा है, तो खेती भी सूख रही है और जब इन परिस्थितियों में मनुष्य के खाने के लिए नहीं है, तो वह पशु–पक्षियों को अन्न कहाँ से दे। इस लालच के परिणाम को व्यक्त करते हुए माधव कौशिक अपने संग्रह *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

दोनों हाथ उठाकर दुनिया

मांग रही है पानी (56)

वह लिखते है कि मनुष्य रोजी–रोटी के अभाव में गुड़–चना खाकर जीवनयापन कर लेता है, परन्तु जल के स्थान पर तो जल ही चाहिए। उसका न कोई पुरक है, न समानर्थी, मनुष्य की प्यास तो जल ही बुझाता है।

मनुष्य के द्वारा किये जा रहे विकास, औद्योगिकरण, मशीनीकरण एवं महानगरीय जनजीवन व्यवस्था के कारण मनुष्य ने प्रकृति के प्रत्येक अवयव को प्रदुषित कर दिया है। प्रदुषण आज के जीवन की वह सच्चाई है, जिसे हमने स्वयं पैदा किया है। इस प्रदुषण का मुख्य कारण होता है, हमारे कारखानों के द्वारा उत्सर्जित की जाने वाली ग्रीन हाऊस गैसें। यह हमारी पृथ्वी के रक्षा कवच, ओजोन परत को सर्वाधिक प्रभावित करती है। इसको व्यक्त करते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

हो रहे है छेद

नभ ओजोन परतों में

छिप रहे नाराज

बादल श्याम गरतों में (31)

पृथ्वी पर सूर्य की पैराबैंगनी किरणों को आने से रोकने के लिए, स्वयं पृथ्वी ने ओजोन परत के रूप में अपना एक सुरक्षा चक्र बना रखा है, परन्तु लालच के कारण मनुष्य अपने लाभ–हानि को नहीं पहचान पा रहा है। इसका कारण है, हम

लालच के वशीभुत होकर कार्य कर रहे हैं। इस बढ़ते हुए प्रदुषण पर ओमप्रकाश सिंह अपनी पुस्तक *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

शहर की

रोशनी में हम

नहाकर खूब आयें है,

पथिक!

बहते प्रदुषण में

हमारे पग नहायें हैं (155)

ओम प्रकाश सिंह जल प्रदुषण के विषय में बताते हुए कह रहे है कि शहरों में रोशनी तो रातभर रहती है, परन्तु जल को दिन में भी गंदा कर दिया जाता है। भारत में जल प्रदुषण का बढ़ता स्तर, इतना खतरनाक हो चुका है कि गंगा भी मैली हो गई है। यमुना का पानी तो आप पी ही नहीं सकते हैं। इस प्रदुषण के अन्य रूप में, हमने हवा को भी जहरीला बना दिया है। आज भारत कि राजधानी दुनिया के सर्वाधिक प्रदुषित शहरों में सम्मिलित है। यहां सर्दियों के मौसम में होने वाला कोहरा इसकी निशानी है। वायु प्रदुषण को अपनी पुस्तक *जैसे धूप हंसती है* में लिखते हुए यशोधरा राठौर लिखती हैं–

क्या पता

क्यों आज जहरीली

हवाएं हो गई हैं

धुंध के आगोश में

जा सभी ऋतुएं

सो गई है (103)

हवायें मनुष्य के कारण जहरीली हो रही है। औद्योगिकरण के नाम पर नित्य नये कारखाने स्थापित करके, उसमें से जहरीला धुँआ निकालकर, मानव स्वयं प्रदुषण पैदा करता है। इसके कारण से धुंध, कोहरा आदि पैदा होता है।

यदि हम अपने लालच के इतर थोड़ा सा आगे बढ़कर सोचे तो पायेगे कि प्रकृति में हमने जो असंतुलन पैदा किया है, उसमें सर्वाधिक बड़ा कारण है पेड़ों की अंधाधुंध कटाई। हम अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु नित वनों को काट रहे हैं, परन्तु बात जब पेड़ लगाने कि आती है, तो मात्र फोटो खिचवाने तक सीमित रह जाती है। पेड़ लगाने मात्र से कुछ नहीं होता है, उसका संतान कि भांति पालन करना पड़ता है। वर्षों की मेहनत के पश्चात वृक्ष बनता है, परन्तु यहाँ तो मात्र पेड़ काटने पर ध्यान है। इस क्रूर सत्य को व्यक्त करते हुए रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में कहते हैं–

पैनी आरी ने

पीपल का

बाँध दिया बस्ता

परसों क्रुर कुल्हाड़ी आयी

पैने दाँत लिये/छिन ले गयी

बाबा बरगद के/हाथों की थाली (80)

वनों को काटने में हमारी तत्परता का ही परिणाम है कि न सिर्फ ऋतु चक्र बदलता है, प्रदुषण का स्तर भी बढ़ता है। पेड़ हमारे लिए कितने उपयोगी है, यह बताने कि आवश्यकता नहीं है। इसलिए हमारे पूर्वज, वृक्षों कि पूजा किया करते थे, प्रकृति के प्रत्येक कण का सम्मान किया करते थे। अब ऐसा नहीं है। अब तो पेड़ो के स्थान पर; फैक्ट्रीयाँ लगाने का दौर है। इस पर बृजनाथ श्रीवास्तव अपने संग्रह *रथ इधर मोड़िये* के माध्यम से लिखते हैं–

कल लहराते जहाँ खड़े थे

शीतल पीपल नीम

आज वहाँ पर चिमनी वाला

काला धुँआ हँसे (30)

यदि हम वृक्षों को काटकर फैक्ट्रीयाँ लगाने की जिद करते रहेंगे, तो धुँआ तो फैलेगा ही। यह कार्यप्रणाली अब मात्र शहरों तक सीमित नहीं है, यह तो गाँवों में भी आ गयी है। वहाँ पर भी अब वृक्षों कि कटाई होने लगी है। इसी पीड़ा को ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

जहाँ आम

वहाँ बबूलों के जंगल

नींबू, बेर, करौंदें कल थे

आज बस्तियों की हलचल (72)

जहाँ पर मनुष्य वृक्ष से शुद्ध हवा, फल, औषधियाँ, छाँव, लकड़ी प्राप्त कर सकता है। मनुष्य का लालच उसे वृक्षों के यह गुण नहीं देखने देता है। उसे तो मात्र उन्हें काटने में अपना हित दिखता है। वह तो मात्र बस्तियाँ बसाने में लगा है। मनुष्य अपने लालच के वशीभुत होकर, अपना तो सर्वनाश कर रहा है। साथ ही वह अन्य जीवों के लिए भी पीड़ा पैदा कर रहा है। पक्षियों की इस पीड़ा को अपनी पुस्तक *झील अनबुझी प्यास की* में रामसनेही लाल शर्मा लिखते हैं–

जहाँ घोसले को

गौरैया ने तिनके रखे

काठ बाजार गयी है

कटकर

आज वही डाली (81)

मानव अपना घर बसाने के लिए, कितनों का घर तोड़ता है, इन पंक्तियों में वह दर्द वर्णित है। अपने लालच के आगे मानव को दूसरे जीवों की पीड़ा नहीं

दिखती है। वह प्रकृति की विविधता को समाप्त कर रहा है। प्रत्येक वर्ष पृथ्वी से कुछ जीवों कि प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं, मात्र मानव के कारण। पक्षियों की इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *'रथ इधर मोड़िये'* में लिखते हैं–

आँगन में

कल चिड़ियाँ

बाँच गई एक ऋचा

कहती थी क्यों भाई

काट दिए पेड़ (41)

पशु–पंछी जिनकी पीड़ा एवं वाणी को हम नहीं समझते है, आज नहीं तो कल मनुष्य से जबाव माँगेगे। मनुष्यों के कुकृत्यों की सजा इन्हें भुगतनी पड़ती है।

6.4 नवगीतों द्वारा पर्यावरण के प्रति जनचेतना को जाग्रत करना

पिछले कुछ समय की प्रमुख पर्यावरणीय घटनाओं को अगर हम गौर से देखें, तो पायेगे कि इनका प्रमुख कारण मनुष्य ही है। इसे समझने के लिए हमे कुछ वर्तमान घटनाओं को समझना होगा। हाल ही में प्रकृति एवं पर्यावरण से जुड़ी प्रमुख घटनाओं का हम अध्ययन करे, तो हम यह पाते है कि मनुष्य के अवैज्ञानिक दोहन एवं प्राकृतिक संसाधनों की लूट ने अपने भयावह परिणाम प्रदर्शित करने प्रराम्भ कर दिये है। कुछ प्रमुख घटनाये अग्रलिखित है–

1. 42 सालों कि सबसे लम्बी गर्मी की लहर युरोप में।

   (CNN, 31 Jul 2018)

2. विश्व के सर्वाधिक गर्म 15 स्थलों में से 10 भारत में।

   (हिन्दुस्तान टाइम्स 27 मई 2020)

3. राजस्थान के चुरू में देश का सर्वाधिक तापमान 50^0c दर्ज किया गया।

   (हिन्दुस्तान टाइम्स 27 मई 2020)

4. 2018 अभी तक का चौथा सबसे गर्म साल।

(COP 24 , सयुक्त राष्ट्र)

5. आस्ट्रेलिया के जंगलों में लगी भीषण आग के कारण केनबरा कि वायु गुणवता 'दुनिया में सबसे खराब'।

(9 NEWS , 3 जनवरी 2020)

6. अमेजोन के जंगलों कि आग अंतरक्षि से भी देखी जा सकता है।

(युरोपियन स्पेश एजेंसी)

7. आस्ट्रेलिया में लगी बुश फायर (झाड़ी की आग) के कारण लगभग 50 करोड़ जानवर जल कर मरे।

(द लल्लटॉप 08 जनवरी 2020)

8. दुनियाभर में लॉकडाउन से भर रहा है ओजोन का छिद्र।

(NASA)

9. भारत दुनिया में सबसे खराब वायु गुणवता वाले राष्ट्रों में दुसरे स्थान पर।

(वायु गुणवता रिपोर्ट, शिकागों विवि)

10. यमुना के जल में अमोनिया का स्तर 3.2 mgl के खतरनाक स्तर तक पहुँचा।

(दिल्ली जल बोर्ड 30 सितम्बर 2019)

ये सभी घटनायें तो मात्र एक बानगी भर है, उस प्राकृतिक विनाश कि जो मनुष्य के लालच के कारण हो रहा है। मनुष्य ने जल, जमीन, हवा सभी को प्रदुषित कर दिया है। प्रत्येक वर्ष ग्रीन हाउस गैसो के बेलगाम उर्त्सजन के कारण पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि हो रही है। समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है। जिसके कारण अनेक द्वीपों के डुबने का खतरा उत्पन्न हो गया है।

मानव अपनी भूलो को सुधारने का प्रयत्न कर रहा है। यह सरकार एवं संगठनों के स्तर पर प्रराम्भ भी हो गया है। सभी राष्ट्र शून्य कार्बन योजना पर कार्य कर रहे हैं, जलवायु परिवर्तन इतना महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है कि दुनिया के सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र, अमेरिका के राष्ट्रपति चुनावों में भी यह एक मुद्दा बन गया है। संयुक्त राष्ट्र भी इस दिशा में प्रयास कर रहा है। यहाँ पर राष्ट्र, सरकार

एवं संगठन से अधिक महत्त्वपूर्ण है, आम व्यक्ति में इसके प्रति जागरूकता उत्पन्न करना। प्रत्येक व्यक्ति के स्तर पर पर्यावरण जागरूकता को पहुँचाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

प्रकृति एवं पर्यावरण के विनाश को रोकने का एक मात्र तरीका है, जनचेतना। जनचेतना प्रसारित करने का सबसे अच्छा उपाय है, अच्छे का प्रचार–प्रसार। साथ ही हमारे द्वारा किये जा रहे कार्यों के लाभ–हानि को बताना। गीत विधा आदिकाल से मनुष्य के हृदय के समीप है। इसलिए अच्छे नवगीतों के माध्यम से हम जनचेतना को बढ़ा सकते हैं। नवगीतकारों ने अपने अनेक नवगीतों में हमें पर्यावरण से होने वाले लाभ और हमारे द्वारा किये जा रहे कार्यों से उसे कितना नुकसान हो रहा है, इसका वर्णन किया है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से हमने जो स्थिति उत्पन्न कर दी है, उसको अपने संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते हुए मधुकर अष्ठाना कहते हैं–

भीड़ से

बच भी गये तो

प्रदुषण से प्राण हारे (97)

यदि आप शहर में होने वाले हादसों से बच भी जायेगें, तो आपने अपने चारो और जो प्रदुषण फैला रखा है, उससे कैसे बचेंगे? वह तो आपको मार ही देगा। हमने अपने निवास के नाम पर जंगलों को काटकर जो क्रंकीट के जंगल ऊगा लिए है, उनमें हमें प्रकृति के नाम पर, क्या मिलता है, इसको बताते हुए माधव कौशिक अपनी पुस्तक *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

फूल कागजी

खूशबू देते

पर चंदन की

फव्वारों से मिली

सूचनाएं

सावन की (75)

मनुष्य ने कृत्रिमता के नाम पर अपने चारों ओर जो मायाजाल बुन रखा है, वास्तविकता में वह एक भ्रम मात्र है। हमें अपने आने वाली पीढ़ियों को मात्र कागज के फुल ही दे पायेगें। सावन भादों के नाम पर होंगे– चन्द फव्वारे। शहरी मनुष्य की यही पीड़ा है। उनके लिए सभी मौसम एक है, वे अपने AC लगे बन्द कमरों में न गर्मी महसूस करते है, न सर्दी, न उन्हें बसंत की बहारों का अहसास होता है, न ही वे बारिश कि रिमझिम सुन पाते हैं। वे तो अपने कृत्रिम आवरण में, इस कृत्रिमता के गुलाम होकर रह गये हैं। यदि उन्हें प्रकृति को महसुस करना है, तो प्रकृति को बचाना होगा। अपनी पुस्तक *समय की आँख नम है* में विनय मिश्र तो इस विषय में स्पष्ट रूप से कहते हैं–

ग्राहक होती इस दुनिया में

कोई तो है अपना

बदहाली में जीकर जो

अँजुरी में भरती सपना (37)

इस गीत में दो बाते स्पष्ट है, हम चाहे प्रकृति का कितना भी विनाश कर ले, परन्तु वह सदैव हमारा भला करने का ही प्रयत्न करती है। उसकी हालत चाहे कितनी बदहाल हो, परन्तु वह हमें खुशियाँ प्रदान करती है। दुसरा इस बाजारवाद के दौर में जब मनुष्य–मनुष्य का रिश्ता भी मात्र दिखावा रह गया है, वहाँ यदि कोई सच्चा रिश्ता है, तो वह आपका प्रकृति से ही स्थापित रिश्ता है। यदि मनुष्य को सच्चे रिश्ते स्थापित करने हैं, तो वह प्रकृति के साथ करे। प्रकृति कभी उसे धोखा नहीं देगी।

प्रकृति को हम जो कष्ट पहुँचा रहे हैं, उसको भी वह सहन कर रही है। उसकी इस सहन शक्ति का वर्णन अपनी पुस्तक *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में करते हुए ओमप्रकाश सिंह लिखते हैं–

कट रहे हैं हाथ फिर भी

कुछ नहीं कहते हैं पेड़

धूप, बादल और ठंडी में

कभी छानी बने

भूख को फल दे कभी

सात्विक हुए दानी बने (157)

एक पेड़ का दर्द उभकर आता है; इस नवगीत में। मानव समाज को अब यह समझना होगा कि हमें प्रकृति के विनाश को रोकना होगा। आज प्रकृति अपने धैर्य का परिचय दे रही है, परन्तु मानव है कि अपने पैरो पर कुल्हाड़ी मारे ही जा रहा है। हमारे द्वारा किये जा रहे अँधाधुंध विकास के कारण, सर्वाधिक नुकसान प्रकृति के अन्य जीव–जंतुओं को होता है, आज हमने उनके आवास छिन लिए है और मानव उन पर ही यह आरोप लगाता है कि जानवर शहरों में घुस आये, नहीं यह सत्य नहीं है, अपितु सत्य यह है कि मानव जंगलों में घुसता जा रहा है।

हमने उनका पहले तो आवास छीना, अब उनको नष्ट करने पर तुले हैं। हमारे कृत्यो के कारण उनमें कितना भय व्याप्त है, इस को माहेश्वर तिवारी अपनी पुस्तक *नदी का अकेलापन* में लिखते हैं–

चुप है ताल/बत्तखें चुप है

कितना छिछला/गँदला पानी

बादल का भी/ नहीं भरोसा

करता कैसी/ आना–कानी (2)

हमारी वर्तमान हरकतो को देखकर, अब प्रकृति ने भी हमसे मुँह मोड़ना प्रराम्भ कर दिया है। प्रकृति में आये इस बदलाव पर बृजनाथ श्रीवास्तव ने अपने संग्रह *रथ इधर मोड़िये* के नवगीतों के माध्यम से पर्याप्त मात्रा में लिखा है। सर्वप्रथम वह लिखते हैं–

आया तो/पर द्वारे से ही/लौट गया मधुमास

जिन खेतो में/सजे कभी थे/सरसों के उत्सव

अमराई में/मुखर जहाँ थे/सुबह शाम कलरव

वहाँ खड़ी/मिल धुँआ उगलती/ जहर भरे आकाश (59)

मधुमास आया तो है, परन्तु वह घर के द्वार से ही लौट गया है, वह लौटे भी क्यूँ न ? उसके पास लौटने के लिए पर्याप्त कारण है। जिन सरसों के पेड़ों, आमो की अमराई में वह अपना डेरा डालता था, वहाँ तो मनुष्य ने धुँआ उगलती मिले खड़ी कर दी है। वह कहाँ रहे? इसलिए वह लौट जाता है। मनुष्य के द्वारा लाये गये इन आधुनिक दिनों से मात्र बंसत ही नहीं डर रहा है, बादल भी इनसे डर रहे है। इसी को व्यक्त करते हुए वह आगे लिखते हैं–

ये नये दिन जाल साजी

दूर डरकर जा रहे घन

कौन हैं वे लोग जिनसे

आज अपना दुख कहे मन (103)

इन नये दिनों को देखकर बादल डरकर भाग रहे हैं, अब उन्हें यहाँ पर न तो कोई कालिदास दिखता है, जो इनके माध्यम से अपनी प्रेयसी को संदेश पहुँचाए, न ही वह नर्तकी दिखती है, जो पहली बारिश की बुँदों के साथ अपनी पायल की ताल मिलाए। न सावन में झुले डलते हैं और न ही कोई प्रेमीका जिसका प्रेमी विदेश गया है, इनसे अपना कष्ट कहती है। उन्हें अब ऐसे लोग नहीं मिलते हैं, जिनसे वह अपने मन की बात कह सके। कुछ घोर वैज्ञानिक चिंतन के व्यक्तियों को यह सब हास्यापद लग सकता है, परन्तु प्रत्येक वर्ष भारत में होने वाली मानसुनी वर्षा में आ रही कमी, क्या इसका उत्तर नहीं है? असमय होती वर्षा, क्या बादलों के दुःख का वर्णन नहीं है। तानसेन के द्वारा राग मल्हार गाने पर वर्षा को झुठ मानने से पहले, हमे तानसेन के जैसा गाना भी तो आना चाहिए। तभी हम कह सकते है कि वर्षा होगी या नहीं होगी। आप प्रकृति से जुड़ना चाहते नहीं है और मात्र उसका दोहन करना चाहेंगे, तो कैसे यह रिश्ता बनेगा।

भारत में भले ही धार्मिक आस्था के वशीभुत होकर, यह माना जाता है कि नदियों में स्नान करने से मनुष्य के पाप धुलते हैं। यह हमारे मानव समाज के किये गये कुकृत्य है कि आज नदी की पीड़ा को व्यक्त करते हुए बृजनाथ श्रीवास्तव अपनी पुस्तक *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

युग नये दिन नये

किन्तु यह क्या हुआ

मैं अपावन हुई

आदमी ने छुआ (104)

हमारे द्वारा किये जाने वाले कार्य, इतने खतरनाक है कि मनुष्यों के पाप धोने वाली पवित्र पावन नदियाँ आज स्वयं अपावन हो गयी। यह हमें हमारे द्वारा नदियों में फैलाये जा रहे प्रदुषण के परिणामों को याद दिलाता है। यदि हम आज नहीं सम्भलें, तो कभी नहीं सम्भल पायेगें।

प्रकृति के विनाश का प्रमुख कारण शहर एवं शहरवासी ही है, परन्तु इसका सर्वाधिक नुकसान ग्रामीण एवं गरीब व्यक्ति को झेलना पड़ता है। प्रकृति में आये असंतुलन के कारण होने वाली प्राकृतिक आपदाओं की मार ग्रामीण व्यक्ति पर ही अधिक होती है, जिसके कारण वह कभी अपनी आर्थिक परिस्थिति में सुधार नहीं कर पाता है। इसको व्यक्त करते हुए अवध बिहारी श्रीवास्तव अपनी पुस्तक *बस्ती के भीतर* में लिखते हैं–

माथे हाथ धरे बैठा है

थका–थका 'चन्दर'

सूखा आया बीज खा गया

बाढ़ खा गयी घर (46)

मानव के अवैज्ञानिक कार्यों के कारण, ऋतु चक्र में परिवर्तन आ जाता है और इसके कारण वर्षा चक्र भी प्रभावित होता है। ऊँची–ऊँची बिल्डिंगों में बैठे

व्यक्ति, बाढ़ में अपना घर खोने कि पीड़ा को नहीं समझते हैं, परन्तु अब उन्हें अपनी सोच में बदलाव लाना होगा। उन्हें प्रकृति के प्रति और अधिक संवेदनशील बनना पड़ेगा। उन्हें यह आभास होना चाहिए कि उनकी एक दिल्ली, मुम्बई बसाने के लिए कितने विदर्भों को मरना पड़ता है–

बढ़ती जाती विकास की दर

खेतों में उगते हैं पत्थर

दिल्ली को सुन्दर करते है

पर 'विदर्भ' में हम मरते है (42)

अवध बिहारी श्रीवास्तव की पुस्तक *बस्ती के भीतर* के नवगीत का यह बंध, उपर्युक्त वर्णन को स्पष्ट करता है। मनुष्य को प्रकृति की पीड़ा को समझना होगा। वरना वह अपना रोद्र रूप दिखायेगी, तो मनुष्य कुछ नहीं कर पायेगा।

हिन्दी काव्य के विभिन्न रूपों में प्राकृतिक चित्रण उसकी एक विशेषता के रूप में विद्यमान रहा है। 21वीं सदी का नवगीतकार अपने नवगीतों में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन तो करता ही है, परन्तु साथ ही वह मनुष्य के द्वारा किये जा रहे, अवैज्ञानिक दोहन एवं उससे उत्पन्न होने वाले खतरों को भी अपने नवगीतों के माध्यम से उजागर करने में सफल रहा है। पर्यावरण वर्णन 21वीं सदी के नवगीतों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। 21वीं सदी का नवगीतकार अपने नवगीतों के माध्यम से पर्यावरण के प्रति जनचेतना कायम करने का प्रयास भी करता है। नवगीतकारों का यह प्रयास यह प्रदर्शित करता है कि उन्हें ज्ञात है कि यदि पर्यावरण को बचाना है, तो वह जनचेतना के माध्यम से ही हो सकता है। अपने नवगीतों से वह इसमें कुछ हद तक सफल भी हो रहे हैं।

अध्याय 7

21वीं सदी नवगीतों में साहित्यिक बोध

किसी भी कालखण्ड का साहित्य, उस समय कि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। इन सब का प्रभाव उस समय के साहित्य पर विभिन्न प्रकार से प्रकट होता है। भाषा के प्रयोग में नयी–नयी शब्दावली आती है। विदेशी भाषा के अनेक शब्द प्रयोग में आते हैं। तकनीकी शब्दावली का भी प्रयोग होने लगता है। प्रतीक एवं बिम्ब उस समय कि परिस्थितियों के अनुसार चुने जाते है। जिससे आमजन उन्हें आत्मसात कर सकें। यही समाज एवं साहित्य के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

7.1 21वीं सदी के नवगीतों की वस्तु (कथ्य) योजना

साहित्य में कथ्य के रूप में, यथार्थ स्थितियों का वर्णन करने की परम्परा सदैव से रही है। आदिकाल में चारण और भाट, युद्ध के मैदान में स्वयं जाते थे और उसका सजीव वर्णन करते थे। यह स्थिति थोड़ी बहुत सदैव रही है, परन्तु इसका प्रयोग आधुनिक काल में प्रयोग बहुतायत में होने लगा। भारतीय समाज को जाग्रत करने व स्वाधिनता संग्राम में शामिल लोगों के मनोबल को बढ़ाने हेतु, स्थितियों का सजीव वर्णन किया जाने लगा। धीरे–धीरे यह स्थिति बनी की, यथार्थ वर्णन ही कविता का मुख्य लक्ष्य माना जाने लगा और यही वह समय था, जब गीतों को आलोचको ने यह कहकर नकारना, प्रारम्भ कर दिया कि उनमें यथार्थ वर्णन या वर्तमान परिस्थितियों की जटिलता का वर्णन करने का सामर्थ्य नहीं है। इन आरोपों के प्रतिकार को लक्ष्य करके अनेक नवगीत लिखे गये। नवगीत के उदय में यह घटना एक प्रमुख कारण रही है। धीरे–धीरे इस प्रवृति में एक विकार आ गया। यथार्थ वर्णन के नाम पर, मात्र विद्रूपित यथार्थ का वर्णन होने लगा। इसका प्रमुख कारण हो सकता है कि हमारी परिस्थितियाँ ही इतनी विद्रुपित हो गयी है कि नवगीतकार अच्छाईयों की खोज ही नहीं कर पा रहे थे, परन्तु इससे महत्वपूर्ण कारण समाज में इस तरह के वर्णन को अधिक महत्व मिलना है। वर्तमान में अच्छे का वर्णन उस प्रकार की सामाजिक सहमति या समर्थन प्राप्त नहीं कर पाता, जितना की विद्रुपित यथार्थ को प्राप्त है। इसका कारण, यह भी हो सकता है कि आमजन मानस को यह लगता है कि वर्तमान समय में जब सभी और से

भ्रष्टाचार, नौकरशाही, लोभ–लालच, भाई–भतीजावाद, सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों का पतन हो रहा है, उस कठिन समय में साहित्यकार ही, अपने साहित्य के माध्यम से हमें सही मार्ग दिखा सकता है। मात्र साहित्य में ही वह सामर्थ्य है कि वह समाज की बुराईयों का वर्णन करके हमें उसके प्रति जागृत करें। समसामयिक घटनाओं का वर्णन सम्प्रेषणियता को बढ़ाने में भी सहायता प्रदान करता है। पाठक साहित्यिक कृति के साथ जुड़ाव महसुस करता है। चारों और से हताशा एवं निराशा के बादलों के मध्य उसे उम्मीद की एक किरण नजर आती है। उसे अपनत्व महसुस होता है।

"स्वप्नजीवी गीत सत्यवंद हुए

आत्मनेपद थे परस्मैपद हुए"

वरिष्ठ नवगीतकार देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीत की यह पंक्तियाँ, गीत से नवगीत होने का वर्णन करती है। यह पंक्तियाँ, नवगीत को परिभाषित करने में सक्षम है। इन पंक्तियों ने आधुनिक समय में, नवगीतकारों को अपने नवगीतों की विषय–वस्तु के चुनाव में भी मार्गदर्शन प्रदान किया है। गीत से नवगीत रूपी शाखा के निकलने का एक प्रमुख कारण रहा है– गीतों में स्व की भावना की अधिकता। इसी भावना को समाप्त करने और गीतों को समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधि बनाने कि प्रक्रिया में ही नवगीत के उदय के बीज समाहित है। इस प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण चरण था, नवगीतों की विषय–वस्तु का चुनाव। गीतों पर तथाकथित बौद्धिक वर्ग और आलोचको ने यह आरोप लगाना प्रारम्भ कर दिया था कि यह आधुनिक समय की चुनौतियों, परिस्थितियों, मानव मन की पीड़ा का वर्णन करने में सक्षम नहीं है। इस आरोप को निराधार साबित करने हेतु, नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में, वर्तमान समय की अनेक परिस्थितियों का बेहद सुक्ष्मता से वर्णन किया है।

वर्तमान समय में, स्त्री उत्थान पर बातें होती हैं। स्त्री की स्वतन्त्रता, उत्थान, उसके जीवन में सुधार कि बातें चारों ओर हो रही हैं, किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। स्त्री को आज भी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

घर–परिवार से लेकर कार्यस्थल तक, उसके साथ दोगला व्यवहार किया जा रहा है। नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में, स्त्री कि पीड़ा के वास्तविक वर्णन को स्थान दिया है। उन्होंने मात्र सब्जबाग नहीं दिखाये हैं, अपितु वास्तविकता का वर्णन किया है। स्त्री जीवन का कष्ट उसके जन्म से शुरू हो जाता है। यह एक आमधारणा है; किन्तु वास्तविकता इससे अलग है। समाज की दकियानुसी विचारधारा, उन्हें जन्म से पूर्व ही हेय बना देती है। स्त्री को, माता कि कोख से ही संघर्ष करना पड़ता है। भ्रूण–हत्या के कारण ही भारत में स्त्री–पुरुष अनुपात में बहुत अन्तर है। यह संघर्ष जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है। नवगीतकारों ने स्त्री जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर उसके संघर्ष को अपने नवगीतों में जगह दी है। कुछ प्रमुख नवगीत द्रष्टव्य हैं–

माधव कौशिक *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

देखते ही देखते

सब नग्न

संज्ञाएं हुई हैं

जन्म से ज्यादा

यहां पर

भ्रूण हत्याएं हुई हैं (31)

अवध बिहारी श्रीवास्तव *बस्ती के भीतर* में कहते हैं–

सबने माना अभिशाप मुझे

भोगा बेटी होने का फल

मैं, सबका भार उठाती थी

पर सबने मुझे बोझ माना (60)

ओमप्रकाश सिंह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में कहते हैं–

घर की ड्योढ़ी पर लटकी है

नई दुल्हन की खाल (130)

मधुकर अष्ठाना *खाली हाथ कबीर* में लिखते हैं–

भौजाई बन गयी

गाँवभर की

गरीब की बीवी

पाँव तोड़कर

बैठी घर में

जिद्दी बड़ी गरीबी (70)

रामसनेही लाल शर्मा *झील अनबुझी प्यास की* में बताते हैं–

मजबुरी झुनिया की पहुँची

मुखिया जी के शयन कक्ष में

लेखपाल, बी.डी.ओ., दरोगा

प्रमुख खड़े सब एक पक्ष में (59)

उर्पयुक्त नवगीतों के माध्यम से यह स्पष्ट है कि वर्तमान नवगीतकार स्त्री जीवन के प्रति, उसकी पीड़ा, कठिनाई, उसका आर्थिक, शारीरिक, मानसिक शोषण आदि विषयों पर मुखरता व स्पष्टता से लिख रहे हैं। कुछ नवगीतों में, स्त्रियों के द्वारा इतनी कठिनाईयों के पश्चात भी, प्राप्त होने वाली सफलता का भी वर्णन करते हैं। जब समाज ने स्त्री को उसका हक प्रदान नहीं किया, तो उसने उसे स्वयं हासिल करने की ठान ली है। पुरुष प्रधान समाज को यह बहुत मुश्किल से स्वीकार हो रहा है, परन्तु शनैः शनैः ही सही पुरुष स्त्री शक्ति के सामने झुक रहा है और उन्हें उनका यथोचित स्थान प्रदान करने को मजबुर हो रहा है। यही कारण है कि महिला शक्ति उन क्षेत्रों में भी अपना झण्डा बुँलद कर रही है, जहाँ पर केवल पुरुषों का वर्चस्व था। वह चाहे वायु सेना में फाइटर जेट चलाने की बात हो

या एयर इण्डिया के जहाज कि 18 घण्टे लम्बी यात्रा का परिचालन हो। यह सब देखकर बृजनाथ श्रीवास्तव अपनी पुस्तक *रथ इधर मोड़िये* में लिखते हैं–

पंख

परियों के लगाकर

बेटियाँ

चढ़ने लगी है

व्योम शिखरों पर (47)

वर्तमान समय में, नवगीत कि विषय–वस्तु में, समकालीन विषय प्रमुखता से आते है। वर्तमान समय में मनुष्य कि गलतियों के कारण पर्यावरण की जो क्षति हुई है, उसका पर्याय कही नजर नहीं आता है। पर्यावरण कि क्षति से अधिक समकालीन कोई विषय नहीं है। यह परिस्थिति, आधुनिकता के नाम पर, होने वाले अवैज्ञानिक दोहन के कारण अधिक विकराल रूप में प्रकट हो रही है। 21 वी सदी में मनुष्य व पर्यावरण का रिश्ता समाप्त हो गया है। 21 वी सदी में आधुनिक होने का अर्थ ही हो गया वनों की कटाई, नदियों का बेहिसाब दोहन, जानवरों की चारागाहों पर कब्जा, तालाबों–जोहड़ों के स्थान पर कंक्रीट कि दीवारें खड़ी करना। प्रारम्भ में मनुष्य को, यह प्राकृतिक दोहन आधुनिकता की चका–चौंध में नहीं दिखाई दिया। परन्तु धीरे–धीरे ही सही, प्रकृति ने मनुष्यों को, उसकी हरकतों से होने वाले नुकसान से अवगत कराना प्रारम्भ कर दिया है। प्रकृति ने संसाधनों के अनियमित दोहने से होने वाले दर्द को, मनुष्य के दर्द में बदलना प्रारम्भ कर दिया है। नदियों की जलराशि सिमटना प्रारम्भ हो गयी है, जोहड़–तालाबों के तल अब भरते नहीं है, अतिवर्षा, अकाल, बाढ़, भूकम्प, सुनामी, जंगलों में आग आदि घटनाओं के माध्यम से वह मनुष्य को चेता रही है।

गीत परम्परा में सदैव से ही प्रकृति चित्रण का अनुठा कौशल रहा है। छायावादी युग के गीतों को तो कहा ही, प्रकृति चित्रण के गीत जाता है, परन्तु इन सभी में प्रकृति के मनोहर रूप का वर्णन है। कही बसंत ऋतु में आयी बहार है, तो

कही वियोग में तड़पती प्रेमिका के वर्णन हेतु पतझड़ ऋतु का वर्णन है, परन्तु नवगीतों ने इससे अलग ही प्रयोग में पर्यावरण व प्रकृति का वर्णन किया है। नवगीतकारों ने अपने साहित्य में छायावादी युग की रूमानियत को छोड़कर, प्रकृति के यथार्थ से जुड़ने का प्रयास किया है। विभिन्न नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में प्रकृति पर, हमारे द्वारा किये जा रहे अत्याचारों एवं उसके परिणामों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। कुछ नवगीत अंश इस हेतु द्रष्टव्य है–

बृजनाथ श्रीवास्तव *रथ इधर मोडिये* में लिखते हैं–

यदि न चेते तो

हरे दिन बीत जायेगें

हो रहे है छेद

नभ ओजोन परतों में

छिप रहे नाराज

बादल श्याम गर्तों में (31)

रामचरण 'राग' *समय कठिन है* में व्यक्त करते हैं–

नहर पुरानी टूट गई है

ताल–तलैया सूखे

'कुएँ–बावड़ी' नाम रह गए

बीती हुई सदी के

बाँधों के पेटे में बिल्डर

काट रहे है प्लाट (24)

यश मालवीय *समय लकड़हारा* में कहते हैं–

कुछ ही दिन में घर लौटो तो

कितना कुछ बदला मिलता है

कोई बिल्डिंग उग आती है

कई पेड़ गायब होते है (94)

माधव कौशिक *जोखिम भरा समय है* में लिखते हैं–

किसे पता था/ अपना यह युग

इतना शातिर होगा

अगला विश्व युद्ध/कहते है

जल की खातिर होगा (50)

यह मात्र कुछ अंश है, नवगीतकारों ने अपने अनेक नवगीतों में, पर्यावरण के प्रति हो रहे अन्याय को संवेदना के साथ व्यक्त किया है। नवगीतकार अपने नवगीतों में न सिर्फ मनुष्य को पर्यावरण के अनियमित एवं असंतुलित दोहन से अवगत करवा रहे हैं, अपितु आने वाले भविष्य के विनाश के प्रति भी चेता रहे हैं। वह न सिर्फ मनुष्य के साथ है, परन्तु वह अपने नवगीतों में पशु–पक्षियों, नदी–तालाबों, खेत–खलिहानों सभी के दर्द को पिरोते है, उनकी आवाज बनते है। उनके दर्द को अभिव्यक्ति देते हैं।

वर्तमान आधुनिकतावादी विचारों के पोषक मनुष्य ने ग्रामीण संस्कृति व किसान जीवन का विनाश कर दिया है। महात्मा गाँधी ने कहा था–भारत गाँवों में बसता है, लाल बहादुर शास्त्री ने 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया था। क्या उनके सपनों का गाँव और किसान आज जीवित है, क्या वह कही पर विद्यमान है? नवगीतकारों ने भी अपने नवगीतों में प्रारम्भ में गाँवों, उसके संस्कारों, किसान की मेहनत, समर्पण, महिलाओं के हाथों में बसी खुश्बुओं का वर्णन किया था। धीरे–धीरे न जाने ये सब कहाँ खो गया है। इसके स्थान पर, झगड़े, वैमनस्य, आर्थिक तंगी और शहरों की ओर भागते किसानों ने ले ली है। कभी कष्टों से न घबराने वाला, एक समय का भोजन करके भी मेहनत करने वाला अन्नदाता आज किसलिऐ आत्महत्या कर रहा है, यह सोचनीय प्रश्न है। माधव कौशिक अपनी पुस्तक *नवगीत की विकास यात्रा* में इस पर लिखते हैं–

"ग्रामीण समाज की जर्जर अर्थव्यवस्था तथा कंगाली नवगीतकारों के लिए चिन्ता का विषय रही है। उन्होंने भारतीय कृषक समाज के टीसते हुए प्रत्येक रोये–रेशे के दर्द को उजागर किया है। साहूकारों के निर्मम अत्याचारों की अबुझ पीड़ा, भूख की व्याकुलता तथा टपकते हुए छप्परों के नीचे ठिठुरते हुए कंकालों की कथा पाठको के मन–मस्तिष्क को झकझोर कर रख देता है।"(5)

इसे वह एक नवगीत से भी व्यक्त करते हैं–

सूने घर में

कोने–कोने

मकड़ी बुनती जाल

भइया तो/परदेश बिराजे

कौन करे अब चेत

साहू के खेत में/बंधक हैं

बीघा भर खेत

शायद

कुर्की जबती भी

हो जाये अगले साल

राधेश्याम शुक्ल *कैसे बुने चदरिया साधो* में लिखते हैं–

पिता, गाँव में/पूत, शहर में

पर दोनों ही, दुःख के घर में (21)

माधव कौशिक *नवगीत की विकास यात्रा* में व्यक्त करते हैं–

गाँव की चौपाल/हो गई हल्दी घाटी

मेंहदी लगे हाथ/ बन्दी रिश्तेदारों के

महावर रचे पाँव/गिरवी है जमींदारों के

तालाबो में डूब मरी/कुएँ की माटी (35)

वर्तमान समय में ग्रामीण संस्कृति एवें किसान जीवन की स्थिति को, जिस हेय नजर से देखा जा रहा है, इसके लिए कवि अज्ञेय द्वारा *युग सन्धियों पर* का यह कथन द्रष्टव्य है–

> लगभग यह स्थिति हो गयी है कि अगर आप में किसी तरह का भी कोई मूल्य बोध बाकी है, तो आप न आधुनिक है, न वैज्ञानिक है, न सभ्य है–केवल एक पुरानी खूसट है, जिसे अवज्ञापूर्वक जितनी जल्दी रास्ते से हटा दिया जाये उतना ही अच्छा। (6)

7.2 21वीं सदी के नवगीतों में प्रयुक्त बिम्ब एंव प्रतीक

साहित्यकार साहित्य में अपनी कहन को, सीधा–सपाट रूप में व्यक्त करने से बचने हेतु अनेक प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग करता है। हिन्दी साहित्य में प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहने का प्रचलन सदैव से रहा है। गीत विधा भी इससे अछुती नहीं है। नवगीतों में भी नवगीतकार इनका प्रयोग करते रहे हैं।

प्रतीको का चुनाव करते समय हमें ऐसे प्रतीक चुनने होते है, जो आम जनमानस से जुड़े हो। इससे लेखक जो कहना चाहता है, वह सभी को सरलता से समझ में आ जायें। साहित्यकारों को ऐसे प्रतीकों के चुनाव से बचना चाहिए जो कि मात्र बौद्धिक वर्ग के लिये हों या मात्र अपना साहित्य पराक्रम सिद्ध करने की चाहत में प्रयोग किये गये हो। महाभारत व रामायण दोनों ही भारतीय जनमानस के सर्वाधिक नजदीक है। यही कारण है की इनमें से ही सर्वाधिक प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। वर्तमान में नवगीतकार आधुनिनक समय की घटनाओं का भी प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया गया है। पौराणिक काल कि अन्य घटनाओं का भी प्रतीकों के रूप में प्रयोग करते है। कुछ नवगीतकार अर्न्तराष्ट्रीय घटनाओं का भी प्रयोग अपने नवगीतों में प्रतीकों के माध्यम से करते है।

नवगीतकारों ने प्रतीक के चुनाव में एक सफल प्रयोग के रूप ऐसे प्रतीकों का चुनाव किया है, जिसे आम पाठक भी समझ सके और उसका अर्थ ग्रहण कर सकें। नवगीतों में ऐसे प्रतीकों का प्रयोग नाममात्र का है, जो बहुत साहित्यिक हो और मात्र बुद्धिजीवी वर्ग ही, उनका अर्थ ग्रहण कर सकें। नई कविता ने जिस प्रकार के कलिष्ट प्रतीकों का प्रयोग किया हैं, नवगीत ने उनसे परहेज किया है। यही कारण है कि नवगीत आज भी पाठक वर्ग के अधिक समीप है और नई कविता मात्र बुद्धिजीवी वर्ग कि होकर रह गई है।

प्रतीकों के प्रयोग के द्वारा नवगीतकार सूक्ष्म भावों, विचारों को साकार करते है। प्रतीक अप्रस्तुत का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रस्तुत का नाम है। प्रतीक श्रोता के मन में किसी भावना को जाग्रत करने का कार्य करते हैं। ये प्रारम्भ में व्यक्तिगत होते हैं एवं धीरे–धीरे समाज में रूढ़ हो जाते है। हिन्दी नवगीतों में इनका प्रयोग बहुतायत में होता रहा है। हिन्दी नवगीतों में महाभारत से लिये गये कुछ प्रतीक द्रष्टव्य है।

मधुकर अष्ठाना *खाली हाथ कबीर* में प्रयोग करते हैं–

फँसे हुए पाण्डव

शकुनी के

दाँव में

बैठे हैं

धृतराष्ट्र समर्थक

मौन भीष्म मर्यादा (73)

विनय मिश्र *समय की आँख नम है* में कहते हैं–

बेपरों की उड़ रही जो

किंवदंती है

कर्ण की सारी कथा में

व्यथा कुन्ती है (30)

x x x x

कवच और कुण्डल किस्मत में

लिखे नहीं जब

कही तृप्ति के मानसरोवर

दिखे नहीं अब (120)

ओमप्रकाश सिंह *तंग जड़ों में होगे अंकुर* में लिखते हैं–

अंधा सच

अब धर्मराज के

कंधे पर बोले

झूठ निरापद

बाजारों में

सम्मानित डोले (30)

x x x x

अंधा सिंहासन/जब–जब था

तब अधर्म ने मुकुट धरे

द्रोण, भीष्म हों/या कि विदुर हों

सब होठों में मौन भरे (87)

अवनीश त्रिपाठी *दिन कटे है धूप चुनते* में वर्तमान परिस्थितियों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

हाल हस्तिनापुर

जैसा अब

दुर्योधन धमकाये (97)

रामसनेही लाल शर्मा *झील अनबुझी प्यास की* में राजनीति अहमं की पराकाष्ठा का वर्णन करते हैं–

हो रहा धृतराष्ट्र को

अमरत्व का भ्रम/एक झुठा

क्रुर सत्ता धूर्तता का

आज गठबन्धन अनूठा

यशोधरा राठौर *जैसे धूप हंसती है* में वर्तमान समय में मानव जीवन, किस प्रकार समस्याओं से घिररा है, के लिए लिखती हैं–

समस्या है

द्रौपदी के चीर–सी

ढो रही हूं

बोझ मैं शहतीर–सी (95)

महाभारत के समान ही भारतीय जनमानस में रामायण के पात्रों एवं घटनाओं को भी विशेष महत्व प्राप्त है। इस कारण से नवगीतकारों ने भी अपने नवगीतों में इन पात्रों एवं घटनाओं का प्रयोग वर्तमान व्यवस्था को समझाने हेतु प्रतीक के रूप में किया है।

अवनीश त्रिपाठी *दिन कटे हैं धूप चुनते* में लिखते हैं–

कितने रावण जलते हैं पर

सीताहरण नहीं रूक पाया (106)

कुमार रवीन्द्र *हम खड़े एकांत में* में कहते हैं–

सुखी हुए ठग–संतो को व्यापी विपदाएँ

दाँव लगी है सिया–राम की मर्यादाएँ (34)

महाभारत व रामायण के समान ही भारतीय जनमानस में कृष्ण–सुदामा, कृष्ण की बाल लीलाएँ, महात्मा बुद्ध की कथा, उपनिषदों में वर्णित कथायें भी गहरे तक पैठ बनाये हुए है। नवगीतकारों ने इनसे भी अपने नवगीतों में प्रतीक लिये है।

कुमार रवीन्द्र *हम खड़े एंकात में* में लिखते हैं–

बोधि वृक्ष पर बैठे पंछी काँप रहे हैं

करुणा–भीगे गाछों ने उत्पाद सहे हैं (6)

बृजनाथ श्रीवास्तव *रथ इधर मोड़िये* में व्यक्त करते हैं–

सागर–मंथन

विष को पीना अब मजबूरी है

मुक्तियुद्ध अब फिर से लड़ना

बहुत जरूरी है (111)

ओमप्रकाश सिंह *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* में लिखते हैं–

इन्द्र ने

भेजा तुम्हें क्या

कृष्ण गोकुल में नहीं (137)

यश मालवीय *समय लकड़हारा* में कहते हैं–

आँख सपनीली

मगर हर स्वप्न निर्वासित

स्वर्ग से जैसे हुआ है

यक्ष निष्कासित (155)

विनय मिश्र *समय की आँख नम है* में व्यक्त करते हैं–

आंशका वैताल हो गई

चढ़ी पीठ पर

हठी असहमत है विक्रम को

मिली जीत पर (104)

माधव कौशिक *जोखिम भरा समय है* में कहते हैं–

ढूंढ रहा है

यक्ष–प्रिया को

मेघदूत सा मन (85)

वर्तमान समय के नवगीतकार अपने नवगीतों में स्त्री की पीड़ा, वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था की दुर्दशा, समाज में व्याप्त संस्कारों की कमी, मनुष्य की पीड़ा को व्यक्त करने हेतु विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया हैं। प्राचीन व पौराणिक प्रतीकों के साथ ही, आधुनिक प्रतीकों का प्रयोग भी नवगीतों में बहुतयात में पाया जाता है। कुछ नवगीत इस हेतु द्रष्टव्य है–

विनय मिश्र *समय की आँख नम है* में लिखते हैं–

दरकी हुई जमीनें सच की

झूठे महल खड़े

सिन्धु सभ्यता–सी खुशियों की

लिपि को कौन पढ़े (126)

यश मालवीय *समय लकड़हारा* में कहते हैं–

नील सा परिधान

नील सा गगन होगा

उसी मनु का, उसी श्रद्धा से

मिलन होगा (18)

रामसनेही लाल शर्मा *झील अनबुझी प्यास की* में वर्तमान मानव के व्यवहार को व्यक्त करते हुए लिखते हैं–

शेर उस दिन से

अहिंसक हो गया है

आदमी ने

बधनखा जिस रोज पहना (39)

अवनीश त्रिपाठी *दिन कटे हैं धूप चुनते* में कहते हैं–

फिर से भिक्षुक बुद्ध बनें,

पाटलिपुत्र चलाएँ मिलकर

तथा कथित ही, शुद्ध बनें, (128)

यश मालवीय *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

कभी किसी से कुछ माँगा तो

सिर्फ दर्द ही माँगा

अपने भीतर जाग रहा है

कोई राणा सांगा (154)

7.3 21वीं सदी के नवगीतों की शब्दावली

भाषा सत्त प्रवाहमान नदी के समान है। यह सैदव अपने में कुछ नया समाहित करती है व कुछ पुराने का त्याग करती रहती हैं। यही भाषा की जीवन्तता का प्रमाण है। वर्तमान हिन्दी के विकास क्रम को दृष्टिगोचर करे, तो यह लगभग 1300 सालों की लम्बी प्रक्रिया में, विभिन्न सोपानों में गुजरकर आज के स्वरूप में पहुँची है। भाषा की यह विशेषता साहित्य में भी दृष्टिगोचर होती है। भाषा के बदलाव सदैव से साहित्य ने भी अपनाये हैं, कुछ बदलाव साहित्य ने भाषा को दिये है। प्राचीन समय के भाषा बदलावों में, सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव अधिक

परिलक्षित होते हैं। भौगोलिक प्रभावों में मात्र वहाँ के क्षेत्रिय प्रभाव ही परिलक्षित होते थे। यात्रा के साधनों की कमी, अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धों का नाममात्र होना इसका कारण हो सकता है, परन्तु वर्तमान समय में यह प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। आज के वैश्विकरण के दौर में जब सम्पूर्ण जगत 'ग्लोबल विलेज' कि अवधारणा पर कार्य कर रहा है, आवा–गमन सुलभ हो गया है, उस परिस्थिति में यह कल्पना करना कि भाषाएँ एक–दूसरे के साहित्य में घुसपैठ नहीं करेगी, महज एक कल्पना है। वर्तमान में यह प्रकृति साहित्य के सभी अंगों में परिलक्षित होती है। इस विषय में वरिष्ठ कवि इन्दुकान्त शुक्ल ने *नवगीत अर्द्धशती* की भूमिका में कहा है–

> निर्मल वर्मा का उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' (राजकमल प्रकाशन) पढ़ा इधर। आश्चर्य है, अन्य विदुषणों के साथ–एक विचित्र संयोग–जहाँ भी खाने–पीने की बात इस उपन्यास में आयी है, वहाँ चर्चा है केवल सॉसेज, सैंडविच, चीजक्यूब, रम, बीयर, सिगरेट की। कही भी रोटी – दाल – भात – समोसा – कचौरी – तरकारी – पराठा – पूड़ी – रायता – चटनी – मिठाई – हलवा – खीर – पापड़ नहीं। यह प्रारम्भिक रूप से सांस्कृतिक संक्रमण का उद्धरण प्रतीत हो सकता है, परन्तु यहाँ यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि उस बदलाव को व्यक्त करने हेतु शब्दों का चयन भी, उस संस्कृति की भाषा से ही उद्धत किये गये हैं।

वर्तमान साहित्य की छान्दस विधाओं में, नवगीत अपनी विशेष पहचान बनाये हुये हैं। गीत सैदव से ही साहित्य व मानवमन के सबसे प्रिय रहे हैं। नवगीत पारम्परिक गीत का ही परिष्कृत रूप है। समयानुसार साहित्य में रचनाओं की भाषा एवं शब्दशैली में जो परिवर्तन आते हैं, नवगीत भी उनसे अछुता नहीं है। उसने भी अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया है। इसने अनेक स्थलों से शब्दों का चयन किया है।

लोक शब्दावली

गीत–नवगीत सैदव से ही लोक की विधाये मानी गई हैं। गीत से नवगीत तक की यात्रा में, नवगीत ने अपने अन्दर से लोक को दूर नहीं किया है। इस कारण से वर्तमान समय में भी लोक बोलियों के शब्द नवगीतों में प्रयुक्त होते है। लोक शब्दों का नवगीतों में प्रभावशाली रूप से प्रयोग हुआ है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि अधिकांश नवगीतकार ग्रामीण परिवेश से निकल कर आये हैं। लोक शब्दाली के नवगीतों में प्रयोग वाले नवगीतों में यहाँ कुछ दृष्टव्य है।

माघव कौशिक अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय है* में प्रेम के भावुक मन के विचारों को व्यक्त करते हुए, किस प्रकार से ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग करते है; उसका उदाहरण इस नवगीत में है–

बिछुआ, कंगन, घर, करघनी

नकबेसर शरमाया

बाजूबद सी बांहों ने जब

प्रिय को गले लगाया (193)

प्रेम का अर्थ एक नये ही रूप में इन शब्दों के उभर कर आता है। यही लोक शब्दावली की विशेषता है। उसके प्रत्येक शब्द में एक नया अनुभव होता है। वरिष्ठ कवि विनय मिश्र की जन्मभूमि बनारस और कर्मभूमि राजस्थान है, इस कारण इनके नवगीतों में दोनों स्थलों कि लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। राजस्थानी के लोक शब्दों का प्रयोग अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में इस प्रकार करते हैं–

ऐसी उकताहट भी क्या है

तेज हो ले घाम (86)

वही भोजपुरी शब्दावली के शब्द लुकाठी (मशाल), कतान (कतार), किनकी (चुग्गा) आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखते हैं–

लिऐ लुकाठी घर को फूँकूँ

तोड़ूँ सब जंजीरे (87)

X X X X

जीवन से गायब संवेदो की

कतान है (90)

X X X X

किस्से यहाँ कबूतर होकर

चुगते जात धरम की किनकी (94)

ग्रामीण संस्कृति को उसी के शब्दों में व्यक्त करने का महत्व अलग ही हैं। इस कार्य को यश मालवीय अपने नवगीतों में बखुबी करते है। वह अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* के नवगीत 'भोपाल आया है' में लिखते हैं–

शोख नजरे, दूध में

धोयी–बिलोयी हैं

दही अक्षत

फूल पत्तों ने सजाय है (17)

इसी को अवनीश त्रिवाठी अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चूनते* में इस प्रकार व्यक्त करते है–

बंजर जमीन पर

गाँडर, कुश, बयनी। (50)

ग्रामीण संस्कृति में जीवन यापन के साधनों में आ रहे परिवर्तन को, प्रदर्शित करने के लिए नवगीतकारों ने वहीं के प्रतिमानों को, वही की लोक भाषा में लिखा है। वर्तमान समय में ग्रामीण जीवन–पद्धति में बहुत परिवर्तन आया है। इसको व्यक्त करते हुए नचिकेता अपने गीत संग्रह *सच कहा तुमने* में ढेकी और जाँते (ग्रामीण परिवेश में प्रयुक्त होने वाले रहट के अंग) जैसे शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखते हैं–

गाँव पहले की तरह दिखता नहीं है

यहाँ ढेकी और जाँते है नहीं अब (108)

वर्तमान समय के तकनीकी युग में भी भाषा का अपना महत्व है और यह मातृभाषा के रूप में तो और भी श्रेष्ठ लगता है। इसको मात्र नवगीतकार ही नहीं समझ रहे है, वर्तमान दौर के बाजार के बड़े खिलाड़ी भी इसे समझ रहे है। यही कारण है की बड़ी–बड़ी विदेशी कम्पनियों के विज्ञापन भारतीय भाषाओं में आते हैं। बड़ी–बड़ी अर्न्तराष्ट्रीय हस्तियाँ आपको 'नमस्ते' बोलते हुए दिखाई देती है। इसका एक अन्य उदाहरण दिखता है– मोबाइल में। मोबाइल कम्पनियों ने भारतीय बाजार कि माँग को देखते हुए, अनेक बोलियों व भाषाओं को अपने मोबाइलों का हिस्सा बनाया है। इस गठजोड़ को सहराते हुए यश मालवीय अपने नवगीत संग्रह *समय लकड़हारा* में लिखते हैं–

और अधिक मीठी लगती हैं

भोजपुरी मोबाइल पर (47)

नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में मात्र लोक भाषा से शब्दों का प्रयोग नहीं किया है, अपितु वहाँ के मुहावरों व लोकोक्तियों का भी अपने नवगीतों में समग्रता से प्रयोग किया हैं। मुहावरे व लोकोक्तियाँ थोडे में अधिक कहने का साधन है। नवगीतकार अपनी बात को संक्षेप में, सटीकता से कहने के लिए इनका प्रयोग

करते हैं। वर्तमान समय में गरीब होना कितना कष्टमय होता है, इसको व्यक्त करते हुए वरिष्ठ नवगीतकार मधुकर अष्ठाना अपने नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* में लिखते है–

भौजाई बन गयी गाँवभर की

गरीब की बीवी

पाँव तोड़कर बैठी घर में

जिद्दी बड़ी गरीबी (71)

आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की पीड़ा का इससे मार्मिक चित्रण दुलर्भ है। यहाँ मात्र आपकी धन सम्पत्ति ही दाँव पर नहीं लगी है, अपितु आपके घर की बहु–बेटी की इज्जत भी दाँव पर लग जाती है। माधव कौशिक अपने नवगीतों के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन करते समय इनका प्रयोग सार्थक तरीके से करते हैं। लोक जनमानस में प्रचलित कहावत 'अंधी पीसे कुत्ता खाए' का प्रयोग करते हुए, अपने नवगीत संग्रह *जोखिम भरा समय* में लिखते हैं–

दरवाजे के बाहर बैठी

व्याकुलता मुस्काए

अन्धे का पीसा दुनिया में

केवल कुत्ता खाए (154)

वर्तमान परिदृश्य में राजनैतिक पतन को व्यक्त करने के लिए, उन्होंने एक अन्य नवगीत में लिखा है–

अपने इस अंधेर नगर का

शासक चौपट राजा

टके सेर की भाजी बिकती

टके सेर का खाजा

वर्तमान समय के राजनेताओं की स्वार्थपरकता, को यह नवगीत बहुत सुन्दरता से प्रकट करता है। इसी प्रकार से लोक कहावतों व मुहावरों का प्रयोग, विनय मिश्र के नवगीतों में भी दिखाई देता है। 'काठ की हाँड़ी बार–बार नहीं चढती' कहावत का प्रयोग, विरोधाभासी अर्थों में वह राजनेताओं के लिए करते हुए कहते है कि इनकों बार–बार मौका मिलता है, परन्तु फिर भी इनके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आता है। मात्र भोले–भाले जनमानस को बहलाना ही इनका कार्य रह गया है। इसको व्यक्त करते हुए वह अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में लिखते हैं –

भूखों को बहलाना ही है

समय धरम का पाठ

बार–बार चढ़कर भी हाँड़ी

वही काठ की काठ (98)

वह एक अन्य नवगीत में लिखते हैं कि नेताओं के द्वारा वादे तो बहुत किये जाते है, परन्तु वह कब पूरे होंगे इसका कोई पता नहीं है। वह वर्तमान व्यवस्था में, सुख की क्या स्थिति हो गई है, इसको व्यक्त करते हुए लिखते हैं–

सूख, गूलर का फूल हो गया

अब तक दिखा नहीं (128)

वर्तमान काल खण्ड में, मनुष्य ने, सर्वाधिक पीड़ा प्रकृति को पहुँचाई है। हमने नदियों के प्रवाह को बाँधों से रोक दिया है, जंगलों को जला दिया है, कृषि की जमीन को शहर निगल रहे है। नदियों में जल के समाप्त होने की पीड़ा, डा. ओमप्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह *'तंग जड़ों में होंगे अंकुर'* में, एक ग्रामीण लोकोक्ति के द्वारा इस प्रकार से प्रकट करते हैं–

प्यासे होंठ

टूटती धारा

सूरज बोता धूप

बौराई आँखे, लगती हैं

बिन पानी के कूप (28)

वर्तमान समय के सामाजिक ताने बाने में एक अदृश्य दीवार खड़ी हो गई है। मनुष्यों की भीड़ तो हैं, परन्तु अपना कोई नहीं है। सच्चे साथी नहीं हैं, जिनसे हम अपने मन की बाते कर सके, परन्तु दुसरी और इस तकनीकी युग में, कुछ भी निजी नहीं रह गया है। इस विरोधाभासी स्थिति का वर्णन करते हुए, अवनीश त्रिपाठी मुहावरे का प्रयोग करते है। वह अपने नवगीत संग्रह *दिन कटे हैं धूप चूनते* में लिखते हैं–

दीवारों के कान हो गए

अवचेतन–बहरे

बात करे किससे हम मिलकर

दर्द हुए गहरे (40)

बाल्यकाल में बच्चे के द्वारा किसी वस्तु की जिद करने पर, यदि परिवार उसको पुरा करने में असमर्थ है, तो किसी प्रकार कि स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उसको प्रकट करने के लिए भी, अवध बिहारी श्रीवास्तव ने अपनी नवगीत में एक लोक कहावत को ही चुना है। एक कहावत के प्रयोग से, मात्र दो पक्तियों में, वह उस परिवार कि आर्थिक स्थिति, माता–पिता की मनोदशा और बालहठ को व्यक्त करने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं, उसका यह सर्वोत्तम उदाहरण है। इसका प्रयोग वह अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में इस प्रकार करते हैं–

घर में भूजी भाँग नहीं है

माँग रहा है, चाँद, जुन्हाई (24)

वर्तमान परिस्थितियों में, सामाजिक संरचना को सर्वाधिक नुकसान पहुँचा है। आपसी प्रेम, एक दुसरे के प्रति सम्मान का भाव, आपसी भाईचारा, समाप्त सा हो गया है। नवगीतकार अपने नवगीतों में, इनका यथार्थ वर्णन करते समय लोकभाषा के शब्दों, मुहावरों, कहावतों, मिथकों का प्रयोग बहुत ही सार्थकता के साथ करते हैं। इसके लिए कुछ नवगीत दृष्टव्य है। मानवीय सम्वेदना के समाप्त होने की पीड़ा को, बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोड़िये* में इस प्रकार से व्यक्त करते हैं–

इस तरह कुछ

आदमी की आँख का है

मर गया पानी (32)

वह मात्र, एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना की समाप्ति को ही व्यक्त नहीं करते है, अपितु वर्तमान समय में मनुष्य के व्यवहार में किस स्तर का दोगलापन आ गया है, उसके प्रकटीकरण हेतु भी वह एक अन्य लोक कहावत का प्रयोग करते हैं। वह वर्तमान में मनुष्य का मनुष्य के साथ किस प्रकार का व्यवहार है, इसको बताने हेतु लिखते हैं–

मुँह में राम बगल में छूरी

कदम–कदम पर धोखे

देखे हमने इस बस्ती के

कितने चलन अनोखे (77)

मानव व्यवहार के इस दोगलेपन को, एक अन्य नवगीतकार रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत में, एक अन्य लोकोक्ति के माध्यम से प्रकट करते हैं। वह अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* नवगीत 'अलग रखना' में लिखते हैं–

मत हिलना

कुर्सी–मुर्गी का

स्वाद सदा चखना

खाने और

दिखने वाले

दाँत अलग रखना (117)

प्राचीन समय में कहा जाता था, कि 'प्राण जाएँ पर वचन ना जाएँ'। वर्तमान समय में यह कहावत समाप्त हो गई है और मनुष्य का व्यवहार पल–पल बदलता रहता है। वह अपनी कही बात पर बिल्कुल भी कायम नहीं रहता है। इसको व्यक्त करते हुए रामसनेही लाल शर्मा लिखते हैं–

बहुत बड़े हैं लेकिन

आदम के कद से

बेहद छोटे हैं

हम बेपेंदी के लोटे है। (115)

तथाकथित आधुनिक समाज में, हमने सांस्कृतिक और सामाजिक प्रतिमानों को भुलाकर उनके स्थान पर घृष्णा, तृष्णा, अंहकार, की भावना को भर लिया हैं। हम चारों ओर से भौतिक संसाधनों से भरे संसार में जीवन जी रहे है। हमारे पास भौतिक साधन तो है, परन्तु जीवन से 'आनन्द' समाप्त हो गया हैं। मनुष्य, स्वयं के भीतर भरे भावों से बाहर नहीं निकल पा रहा है, क्योंकि ऐसा करने से उसे लगता है कि वह दुसरों से छोटा हो जायेगा। मानव मन के इस अहंकार भाव के कारण वह किस प्रकार से आनंदित जीवन को नहीं जी पा रहा है, उसको अवध बिहारी श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतर* में, इस लोक कहावत द्वारा लिखते हैं–

'अहंभाव' के हटते भीतर

'परमभाव' आना

यह गूँगे–के गुड़ जैसा है

खाया सो जाना (33)

उपर्युक्त नवगीतों के अंशों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि लोक शब्दावली वर्तमान काल के सामाजिक, व्यक्तिगत, सांस्कृतिक, राजनैतिक स्थितियों का चित्रण यथार्थ रूप में और सच्चाई के साथ करने में सक्षम है। नवगीतकार अपने नवगीतों में लोक जीवन के शब्दों, मुहावरों, कहावतों का बहुत ही उद्देश्यपूर्ण ढंग से प्रयोग करते हैं। वह मात्र स्थान देना है, के भाव से इन्हें अपने नवगीतों में सम्मिलित नहीं करते हैं, अपितु उससे एक स्पष्ट और लोकहित का संदेश देने का प्रयत्न करते हैं। वह मानव को व्यवहार में परिवर्तन हेतु, इनके माध्यम से समझाते है, तो दूसरी ओर पर्यावरण कि चेतना भी भरते हैं। आधुनिकता के नाम पर आज काव्य में फूहड़ता और भर्ती के शब्दों की भरमार भले ही दिखाई दे, परन्तु नवगीत इनसे सुरक्षित है। वह आधुनिक होते समय में भी अपनी जड़ों से नहीं कटे हैं। लोक शब्दावली उनके नवगीतों में सार्थकता के साथ विराजमान है। नवगीतों एवं लोक शब्दावली दोनों के लिए यह सही होगा कि वह एक दूसरे का साथ इसी प्रकार निभाते रहें ।

नवगीतों को सदैव से बौद्धिक वर्ग के स्थान पर आमजन कि विधा माना जाता है। इसे आमजन की विधा बनाये रखने हेतु, आवश्यक है कि नवगीतों में साहित्यिक विद्वता के प्रदर्शन से बचा जाये। क्लिष्ट शब्दावली, न समझ में आने वाले बिम्ब, गुढ़ अर्थ आदि के प्रयोग से बचा जाये। 21वीं सदी के नवगीतकार अपने नवगीतों में सहज शब्दावली, लोक मानस से जुड़े बिम्ब एवं प्रतीकों का प्रयोग करके, इस विधा को आमजन से जोड़े रखने में सफल रहे हैं। यही कारण है कि 21वीं सदी का नवगीत बौद्धिक वर्ग तक सीमित न रहकर, आमजन तक अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रहा है।

अध्याय 8

21वीं सदी के नवगीतों में समसायिक समस्याओं के सांकेतिक निवारक बिन्दुओं का विश्लेषण

साहित्यकार सदैव से समाज को उसकी विद्रुपताओं से अवगत करवाता रहा हैं। साहित्य का यही मूल धर्म भी हैं, परन्तु इसके साथ ही साहित्यकार अपनी कृति में किसी पात्र, प्रसंग आदि के माध्यम से इन समस्याओं के निवारण का भी हल्का सा संकेत करता है। वह अपनी बौद्धिक समझ और समाज के हित में इस तरह के प्रयास करता है, यह परम्परा भारतीय साहित्य में सदैव से चली आ रही है। तभी तो राष्ट्र कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते है–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

बिन निज भाषा–ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।

यहाँ पर वह अंग्रेजी की दासता से राष्ट्र को मुक्त करवाने और राष्ट्र उत्थान के अवयव के रूप निज भाषा (मातृभाषा) के प्रयोग हेतु कह रहे है।

नवगीत विधा समाज की समस्याओं को व्यक्त करने में सबसे आगे रही है, साथ ही नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में, इन समस्याओं के निवारक बिन्दुओं का संकेत किया है। इस अध्याय में उन्हीं बिन्दुओं का विश्लेषण किया है। इस शोध में सम्मिलित सभी नवगीतकारों के द्वारा सांकेतिक निवारक बिन्दुओं का विश्लेषण किया गया है।

माहेश्वर तिवारी–

माहेश्वर तिवारी ने अपने नवगीत संग्रह *नदी का अकेलापन* में सामाजिक समस्याओं की ओर इशारा किया, साथ ही उनका निवारण करने हेतु, किये जाने वाले कार्यों का भी वर्णन किया है। वह अपने नवगीत 'तुम्हारा मौन' में लिखते हैं–

यह तुम्हारा/ मौन रहना

कुछ न कहना/सालता है (60)

वर्तमान दौर में मानव के सामाजिक समस्याओं पर कुछ न बोलने की और इशारा करते हुए वह उनका विरोध करने को कह रहे हैं। उनका कहना है कि मौन

रहने से कुछ नहीं बदलता है। इसी प्रकार मानव के द्वारा वृक्षों पर किये जा रहे अत्याचारों पर वह लिखते हैं–

राजा आने वाला है

सुनकर/कब तक डरेंगे पेंड़!

जीने के लिए

आज कुछ तो करेंगे पेड़! (65)

यहाँ राजा से अभिप्राय सत्ता और शासन से है। मनुष्य सत्ता और शासन के डर में कब तक रहेगा। उसे जीने के लिए नये कार्यों को करना होगा। अपनी ऊर्जा को एकत्र कर उनका विरोध करना आवश्यक है। यदि वह ऐसा नहीं करेगा, तो स्वयं अपना अस्तित्व खो देगा। इसी प्रकार वह अपने नवगीत 'पलाश फूले' में पूछते हैं कि हम कब तक शोषित होते रहेंगे, हमारे समाज में जो नये प्रश्न आ रहे हैं, हम उनसे कब तक आँखे बंद करके रखेंगे, हमारे हाथ कब तक लहुलुहान होते रहेंगे–

कब–तक

हम–तुम शामिल

घास के घराने में

कुचले जाएँगे

अपने को ही भूले। (85)

वर्तमान समय के शोषण के समाने हम अपनी शक्ति, अपने आप को भूल गये हैं। हमें पुनः अपने आप को पहचानने की आवश्यकता है, जिससे हम हमारे शोषकों को सही उत्तर दे सकें।

वर्तमान समय में सामाजिक समस्याऐं आने पर, मनुष्य ने चुप रहने की प्रवृत्ति अपना ली है। वह मात्र तटस्थ बनकर रहता है। इस पर चोट करते हुए वह लिखते हैं–

नालंदा जलता है

तो क्या

हम तटस्थ जन है,

चुप रहते है। (94)

हमारी यही तटस्था हमें गुलाम बना चुकी है। अंग्रेजों ने भारत पर मात्र 250 सैनिकों के साथ आक्रमण करके हमें गुलाम बना लिया। यदि एक राज्य पर आक्रमण होता था, तो बाकि राजा तटस्थ रहते थे। उन्हें शायद यह अहसास नहीं था कि तटस्थता हमें भी गुलाम बना देगी। अब हमें यह तटस्थता का चोला त्यागना होगा। इसलिए कवि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा था–

समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याघ्र

जो तटस्थ है, समय लिखेगा उनका भी अपराध

वह वर्तमान समय कि पीड़ा को लिखते हुए कहते हैं कि कोई बात नहीं, यदि परिस्थितियाँ आपके विरोध में हैं, कोई बात नहीं चारों ओर निराशा हैं, परन्तु हम अपने प्रयास तो कर सकते हैं, हमे तो किसी ने नहीं रोका है, आखिर कब तक आम आदमी इस तरह जिएँगा उसे स्वयं ही प्रयास करने होंगे–

हवाएँ चुपचाप है

तो हमी बोलें

अब घुटने की

साँकलो को हमी खोलें। (101)

यदि हम प्रयास करेंगे तो सफलता मिलना निश्चित है, क्योंकि नई ऋतुएँ हमारी प्रतिक्षा कर रही है।

मधुकर अष्ठाना–

इस शोध में मधुकर अष्ठाना का नवगीत संग्रह *खाली हाथ कबीर* सम्मिलित है। इसमें उनके द्वारा सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु, वह अपने नवगीतों के

माध्यम से निम्नलिखित कार्य करने को कह रहे हैं। सर्वप्रथम वह वर्तमान समय के मानव पर लिखते हैं–

आत्मायें मर चुकी है

जी रहे है

देह केवल

लगाये हैं माथ पर

हर रंग के बेदी लेबल (125)

वह वर्तमान समाज को चेतावनी देते हुए कह रहे हैं कि वर्तमान समय के मनुष्य कि आत्मा मर चुकी है, मात्र देह है जो घुम रही है। आत्मा के साथ ही उसने प्रेम, भाईचारे, ममत्व को मार दिया है, अब समय है कि उन मतृ आत्मों में कुछ प्राण फुँके जायें।

वर्तमान साहित्यिक परिस्थितियों में वह आम आदमी और गीत/नवगीत को एक समान मानकर लिखते हैं कि दोनों का ही सामाजिक शोषण होता रहा हैं। गीतों को आलोचको द्वारा साहित्य से बहार करने के अनेक प्रयास हो रहे हैं, परन्तु उसने प्रत्येक परिस्थिति का डटकर सामना किया है। यही कार्य मनुष्य को भी करना है, प्रत्येक परिस्थिति का डटकर मुकाबला। यदि आप मुकाबला करने का साहस दिखायेंगे, तो सफलता अवश्य आपके कदम चुमेगी–

वक्ष पर आघात कितने

पेट पर है

लात कितनी

हर समय रौंदे गये

पर बढ़ गयी

औकात कितनी (42)

यदि आप निरन्तर प्रयास करते रहेगें और हार नहीं मानेंगे तो अवश्य सफल होंगे। अपने एक अन्य नवगीत में वह मनुष्य को दीपक से प्रेरणा लेने को कहते हैं, वह कहते है कि चाहे सूर्य अपने घर लौट जाये, उसके समकक्ष आपका आकार चाहे लघु हो, परन्तु आप भी उसके समान प्रकाश कर सकते हैं।

आप भी अँधेरे को काट सकते हैं। यह नवगीत उन लोगों के लिए है, जो प्रत्येक बात में 'मैं क्या कर सकता हूँ', 'मैं तो आम आदमी हूँ', 'वह बहुत ताकतवर' है, जैसे बहाने बनाकर अपने कर्मों से भागते हैं। वह लिखते हैं–

अँधेरे कर रहे रोशन

तमस को

काटते हैं हम

गय जब सूर्य

अपने घर

उजाला बाँटते हैं हम (129)

वह मानव से उसके मुँह पर लगे ताले को खोलने और उसके मन में व्याप्त भय कि जंजीर तोड़ने को कह रहे हैं। यदि हम बोलेगे नहीं कोई हमारी नहीं सुनेगा, परन्तु यदि हम आगे बढ़कर खड़े होगे तो स्वयं मार्ग बन जायेगा। बस हमे आने वाले कष्टों से नहीं डरना है, अपितु साहस करके आगे बढ़ते रहना है, क्योंकि इस कलयुग में राम हमें ही बनना हैं, हमें ही लंका दहन करना होगा। वह लिखते हैं–

खोल दो

ताला अधर का

तोड़ दो

जंजीर मन की (92)

माधव कौशिक–

इनके नवगीत संग्रह का नाम *जोखिम भरा समय* है, जो वर्तमान परिस्थितियों को व्यक्त कर रहा हैं। वर्तमान समय वास्तव में ही जोखिमों से भरा हुआ हैं। यहाँ मनुष्य अपने गुणों से अलग हो रहा है। मनुष्य के अन्दर आती इस स्थिरता को समाप्त करने का आह्वान करते हुए कहते हैं–

पानी लगा खौलने

लेकिन

लहू अभी भी जमा हुआ है (45)

यदि आप प्रतिकार की भावना को अपने अन्दर नहीं समाहित करते हैं, तो यह माना जाता है कि आपका लहू जम गया है। अब आप ऐसे नहीं जीवन को जी सकते है। आपको गलत का प्रतिकार करना ही होगा, वह वर्तमान मानव को चुनौती देते हुए कहते हैं कि अब मात्र मुश्किल काम को पुरा करने से कुछ नहीं होने वाला, अब तो हमें असंभव को संभव बनाना होगा–

पानी पर तस्वीर बना दे

तो जानूं।

मुश्किल काम सभी करते है

कोई करे असंभव भी (74)

वर्तमान परिदृश्य में समाज में परिवर्तन लाना असंभव कार्य है। अपने लालच में अन्धे हो चुके समाज को, सही मार्ग पर लाना एक असंभव चुनौती है। नवगीतकार इसे ही पुरा करने को कह रहे हैं।

वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में एक अवगुण विकसित हो गया है–भेड़चाल का। अपना विवेक, ज्ञान, बुद्धि आदि का प्रयोग न करके, मात्र भीड़तन्त्र का हिस्सा बनना सबको अच्छा लगता है। इसमें हानि कम और लाभ अधिक है, परन्तु इससे समाज में व्याप्त समस्याओं पर कोई असर नहीं पड़ता है। उसके लिए तो आपकों

साहस दिखाकर विपरीत दिशा में काम करना होगा। यदि हमारे वीरों ने अंग्रेजों के खिलाफ खड़े होने का साहस नहीं दिखाया होता, तो क्या आज हम एक आजाद राष्ट्र होते ? कुछ इसी प्रकार का साहस वह वर्तमान के युवा से चाहते हैं। वह स्पष्ट रूप से कहते हैं, जो कायर है वही हवा के साथ बहते हैं और इस प्रकार के हाँ में हाँ मिलाने वालो को इतिहास में सैदव मुखबिर कहा गया है। इनका न इतिहास में कोई नाम होता है, न ही भविष्य में कोई इन्हें मानता है। यदि परिवर्तन लाना है तो–

यही वक्त है, कुछ भी कर ले

पर कुछ कर

विपरीत दिशा में। (122)

महान कवि रहीम ने वर्षों पूर्व कहा था–

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।

पानी गये न ऊबरे, मोती, मानुष चून।।

वर्तमान समय में मनुष्य की आँखों का पानी उत्तर गया हैं। एक–दुसरे के प्रति वह सम्मान और प्यार नहीं रहा है। साथ ही अपने कार्यों द्वारा, मनुष्य स्वयं की इज्जत भी उतरवा रहा है। माधव कौशिक कहते है कि चाहे प्राकृतिक पानी कि कमी से सूखा पड़ जाये, परन्तु मनुष्य की आँखों का पानी नहीं सुखना चाहिए–

सूखा पड़ा मगर कब सूखा

पानी आँखों का (55)

वर्तमान में समाज के हित के लिए यह बहुत आवश्यक है।

अजय पाठक–

अजय पाठक अपने नवगीत संग्रह *मन बंजारा* में सामाजिक समस्याओं के निराकरण पर लिखते हुए कहते हैं कि वर्तमान समय में मानव बहुत जल्दी थककर हार मान लेता, परन्तु हमें निरन्तर प्रयासों कि आवश्यकता है। समाज में कोई एक

दिन में परिवर्तन नहीं आता है। हमारे लक्ष्यों के समान ही, उनकों प्राप्त करने के लिए हिम्मत और हौसला भी ऊँचा होना आवश्यक हैं–

मन में हिम्मत और हौसला

आँखों में हो सपना

भय से, भूख–गरीबी से हम

लगातार संग्राम करे। (24)

अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु निरन्तर प्रयासों कि आवश्यकता पर बल देते हैं– अजय पाठक। साथ ही वह इसके लिए भी सचेत करते हैं कि वर्तमान मानव लक्ष्य तो जोश से भरकर बड़े–बड़े तय कर लेता हैं, परन्तु जब मार्ग में बाधायें आने लगतीं है, तो वह अपने होश खो बैठता हैं। वह लिखते हैं–

घाटी–पर्वत है, पगडंडी

पेंचदार अनगिन है

अभी जोश है, मुमकिन है पथ

आगे बहुत खलेगा (94)

यह नवगीत वर्तमान समय कि दो समस्याओं और इनके हेतु जो समाधान है, उन पर प्रकाश डालता है। पहला है लक्ष्य तय करने से पूर्व का कार्य। वर्तमान समाज में लक्ष्य तो बड़े–बड़े तय कि जाये जाते हैं, परन्तु उनसे पहले किये जाने वाले कार्य को नहीं करते हैं। इसी कारण से यहाँ पर कोई भी परियोजना समय पर पूर्ण नहीं होती हैं। दूसरी है यदि मार्ग में कोई बाधा आती हैं, तो हम तुरन्त अपना लक्ष्य छोड़ देते हैं। किसी भी लक्ष्य कि प्राप्ति हेतु जो समर्पण व धैर्य चाहिए उसका अभाव है। हमें अपने अन्दर इन गुणों को विकसित करना होगा, तभी हमारे लक्ष्य पूर्ण हो पायेगें। वर्तमान परिदृश्य में समाज में पनप रही एक और पीड़ा को वह दर्शाते हुए लिखते हैं–

मैं रोकूँ तो किसको रोकूँ

एक नहीं सुनता है मेरी

मैं कहता हूँ लौट चलो अब

इसके आगे महाप्रलय है (76)

वर्तमान समाज में व्यक्ति अपने लोभ, लालच के वशीभूत होकर सत्य को मानने से ही इन्कार कर देता हैं। हमें इस प्रवृति को त्यागना होगा। अपने हित–अहित को समझना होगा, तभी समाज व आने वाली पीढ़ियों के भविष्य को हम सुरक्षित रख पायेंगे।

विनय मिश्र–

अपने नवगीत संग्रह *समय की आँख नम है* में विनय मिश्र ने बहुत सी समस्याओं के निवारक बिन्दुओं पर लिखा है। वह तो सीधा–सीधा लिखते है कि पाठक को वह बाते अधिक गौर से पढ़नी चाहिए जो कड़वी हों–

लिखता है जो नीमतिक्त

भाषा में लेखक

उसका भी तो पारायण

कुछ कर लें पाठक (22)

क्योंकि वह मानते है कि कुछ भी ऐसा नहीं है, जो कवि कि आँखों कि निगरानी से दुर हो–

जो आँखों के पानी में है ध्यान रहे

वो मेरी निगरानी में है ध्यान रहे (26)

वर्तमान समाज में मानव बहुत जल्दी अपने आप इसके, उसके खेमों में बँटकर अपनी स्वाधीनता खो देता हैं। ऐसा मनुष्य कभी भी अपने आप से नहीं लड़ सकता, वह मात्र शासक की मर्जी से चल सकता है, उसकी शर्तों पर जीने को मजबूर होता है। भारतीय साहित्य में पितामह भीष्म, इस के सबसे बड़े उदाहरण है।

आजीवन एक प्रतिज्ञा के बोझ को उठाते रहे। न चाहते हुए भी दुर्योधन का साथ देना पड़ा। उस प्रतिज्ञा के कारण कभी भी अपने फैसले स्वयं नहीं कर सके। इस को व्यक्त करते हुए, विनय मिश्र लिखते हैं–

काम कर गई उनकी

पाबंदी की चाल

अब तो शर्तों पर जीने की आदत डाल

किसमें है कूवत जो

खुद के साथ लड़े। (53)

वर्तमान को सचेत करते हुए वह, इस प्रकार कि शर्तों से बचकर अपनी निजी स्वाधीनता को बचाकर रखने का आह्वान करते हैं।

वर्तमान समयकाल में मनुष्य धैर्य को खो रहा हैं। जरा सी पीड़ा उससे सहन नहीं होती है। वह हताश हो जाता है, यदि कोई पास है तो उस पर चिल्लाता है, अपना क्रोध निकालता है, यदि अकेला है, अवसाद में भरकर मृत्यु तक को गले लगाता है। वर्तमान में कैफे कॉफी डें के मालिक बी.जी. सिद्धार्थ की आत्महत्या हो या अभिनेता सुशांत सिंह राजपुत की आत्महत्या (?) दोनों ने ही अपने–अपने क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की थी, परन्तु थोड़ी सी अड़चने आने से उन्होंने जीवन को ही त्याग दिया। जीवन से अनमोल कुछ है क्या ? विनय मिश्र कहते हैं कि इस प्रकार कि परिस्थितियों में धैर्य ही हमारा हथियार है–

सब्र करो यह कृष्णपक्ष है मन का

जरा ठहर लो (102)

बुरा समय भी निकल जायेगा। बस जरूरत है, थोडे से धैर्य और संयम की। वह बहुत आग्रह पूर्वक कहते हैं कि यदि वर्तमान समाज कवि की सुनेगा तो उसका समय अच्छा ही होगा–

समय अच्छा तब है

जब मेरी सुने (29)

क्योंकि 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि'। कवि समाज को बदलने की शक्ति रखता है। उसके द्वारा लिखे वाक्य अमर होते हैं, हमें नहीं भुलना चाहिए, कि जयपुर के महाराज जयसिंह को बिहारी कवि ने, अपने दोहे से ही शासन पर ध्यान देने को मजबूर कर दिया था।

यश मालवीय–

समय लकड़हारा यश मालवीय का नवगीत संग्रह है। वर्तमान समाज में जो समस्यायें है, वह कितनी गहरी है, इसका वर्णन करते हुए लिखते हैं–

मर्ज गहरा है, बहुत गहरा समझ लो

ठीक होगा ही नहीं केवल दवा से (34)

यह चेतवानी इसलिए भी आवश्यक है कि हम समझ सके कि हमारे सामने चुनौति कितनी बड़ी है और उसी के अनुसार हम अपनी योजना बना सके। इस मर्ज को मिटाने की दवा बताते हुए वह लिखते हैं–

कभी–कभी कबिरा सा रो दे

इसको उसको सबको धो दे

बन ही जा तु साबुन साधो। (90)

वह हमें कबीर से प्रेरणा लेने को कह रहे हैं। जिस प्रकार कबीर ने अपने समयकाल में व्याप्त बुराईयों पर सख्त प्रहार किये हैं, वही अब हमें भी करना होगा। इसके लिए आवश्यक होने पर वह क्रान्ति करने का भी आह्वान करते हैं–

हो प्रणाम या कठिन समय को

करना लाल सलाम (28)

लाल सलाम मार्क्सवाद व क्रान्ति का प्रतीक है। यदि हम अपनी सामाजिक बुराईयों को समाप्त नहीं कर पाते हैं, तो हमें क्रान्ति के लिए भी तैयार रहना होगा। इस कार्य हेतु वह आमजन को प्रेरित करते हुए लिखते हैं–

मन का लोहा टूट गया है

वेल्डिंग कर लें

चलो आज साँसों में

फिर चिनगारी भर लें (159)

क्रान्ति के लिए हमे मन को मजबूत करना होगा। जो लहु ठंडा पड़ गया है, उसमें एक बार फिर उबाला लाना होगा। अपनी आवाज को बुलंद करना होगा और साँसों में चिन्गारी भरनी होगी। ए.सी. लगे बंद कमरों में बैठकर क्रान्ति नहीं होगी। हमें इसके लिए धरातल पर कार्य करना है। एक दुसरे के साथ जीना और एक–दुसरे के लिए मरना होगा, तब कही क्रान्ति का बिगुल बजता है। इस क्रान्ति की प्रेरणा वह राणा सांगा से लेने को कहते हैं। वह लिखते हैं–

कभी किसी से कुछ माँगा तो

सिर्फ दर्द ही माँगा

अपने भीतर जाग रहा है

कोई राणा सांगा (154)

राणा सांगा राजपूताने के वह वीर थे, जिनके शरीर पर युद्ध में मिले अस्सी घाव थे, एक आँख फुट गई, हाथ कट गया, पैर कट गया, परन्तु युद्ध करना नहीं छोड़ा। क्रान्ति हेतु उसी प्रकार के मनोबल की आवश्यकता है।

राजनीतिक चापलुसी; वर्तमान समय का कड़वा सच है। राजनेताओं के व्यापारियों, माफियाओं, असामाजिक तत्त्वों के साथ रिश्तों की बातें तो जग–जाहिर हैं, परन्तु वर्तमान समय में यह प्रवृत्ति, साहित्यकारों में भी दृष्टिगोचर हो रही है। सदा से ही साहित्य को सत्ता का विरोधी माना गया है, परन्तु कुछ साहित्यकार अब राजनीतिक लाभ लेने हेतु अपनी सृजक क्षमता का प्रयोग कर रहे हैं, उन्हें सचेत करते हुए यश मालवीय लिखते हैं–

चापलुस मत होना सत्ता की बिल्ली के

ऐ भाई! तुम भी मत हो जान दिल्ली के (112)

ओमप्रकाश सिंह–

ओमप्रकाश सिंह के नवगीत संग्रह का नाम *तंग जड़ों में होंगे अंकुर* है। यह नाम ही आशावाद का प्रतीक है, वह लिखते हैं–

कोहरे की औकात नहीं है

सूरज को आकर ढँक ले (38)

कोहरे के छा जाने से, भले ही सूर्य कुछ देर के लिए ओझल हो जाये, परन्तु ऐसा नहीं है कि वह सदैव उसको ढ़ंके रखे। यही जीवन का हाल है। कुछ समय के लिए ऐसा हो सकता है, आपको कठिनाईयों का सामना करना पड़े, परन्तु ऐसा नहीं है कि ये कठिनाईयाँ सदैव रहेगी, परन्तु कठिनाईयों के समय हमें धैर्य का परिचय देना है–

कांटे/अभी बहुत चुभने को?

पल दो पल तुम और सहो तो (27)

किसी भी कार्य को करने में कठिनाईयाँ आती है, यदि सब कुछ आसानी से मिल जायेगा, तो संघर्ष कौन करेगा। उन कठिनाईयों के दौर में धैर्य का सहारा लेना है। हिम्मत से उनका सामना करना है। मानव विज्ञान का एक तथ्य है कि यदि शरीर पर चोट होती रहे, तो एक स्थिति ऐसी आती है, जब शरीर दर्द महसूस करना छोड़ देता है। वही क्षण आपकी विजय का है। वह आह्वान करते हैं–

आओ तोड़ो

चक्रव्यूह

झूठे दरवाजे है (115)

वह प्रत्येक मानव से कह रहे हैं, हमारे चारों और राजनेताओं, पुलिस, प्रशासन, अफरसशाही, बाहुबलीयों ने मिलकर जो चक्रव्यूह खड़ा किया है, इसके सभी दरवाजे झूठे है, ये झूठ पर ही टिके हैं। यदि हम साहस करेगें, तो इन्हें तोड़

देंगे और एक बार हम चक्रव्यूह में प्रवेश कर गये, तो इसके अन्दर के छल को भी हम ही तोड़ेगें–

हम तोड़ेंगे

चक्रव्यूह के

भीतर वाला छल (18)

इसके लिए हमें वह कहते हैं कि वर्तमान समाज कि परिस्थितियों में, यदि आपको सिस्टम से लड़ना है, तो सिस्टम के अन्दर जाना होगा बाहर से लड़ाई नहीं लड़ी जायेगी। सिस्टम का हिस्सा बनना होगा–

व्यूह से बाहर करोगे क्या

हो सके तो व्यूह में लड़ना

शंख ध्वनि सुनकर करोगे क्या

चक्र उंगली पर उठा लेना, (71)

वह कहते हैं कि अब हम बाहर रहकर नहीं जीत सकते, हमें इस युद्ध में हथियार उठाने ही होगें, क्योंकि हमारी अस्त्र ना उठाने की प्रवृति को, वो हमारी कमजोरी समझने लगे हैं।

वर्तमान समय में संयुक्त परिवारों का विघटन हो चुका है, रोजगार की तलाश में दर–दर भटकना पड़ता हैं और शहरी जीवन में वह अपनत्व नहीं है। इसके कारण मनुष्य अपना दुख दर्द नहीं कह पाता है, एकाकीपन से भरकर वह अवसाद का शिकार हो रहा है। इस एकाकीपन व अवसाद को दुर करने के लिए वह कहते हैं–

चलो चलें/इनके घर, उनके घर

मिल आयें/ चलो चलें

बांटे दुःख दर्द/एक दूजे से लगे गले। (142)

हमें समाज में वह भाईचारा पुनः लाना होगा। जिसमें एक का दुःख सबका दुःख होता हैं और एक की खुशी में सब मिलकर खुशी मनाते हैं। हमें यह इन्तजार नहीं करना है कि उसने हमें फोन नहीं किया, वह तो कभी मिलने नहीं आया, मैं क्यूँ जाँऊ ? हमें इन सबसे बाहर निकला है और अपनी तरफ से पहल करनी है। वहाँ यदि सभी पहले आप, पहले आप करते रहे, तो शुरूआत कौन करेगा।

अवनीश त्रिपाठी–

अवनीश त्रिपाठी अपने नवगीत संग्रह, *दिन कटे हैं धूप चुनने में* गीत के बनने का कारण ही; सत्ता से टकराने को मानते हैं, वह लिखते है कि जब शोषित वर्ग की चीखे सत्ता से टकराती है, तभी गीत उपजता है, ज्वालामुखी हुआ मन फिर से आग उगलने लगता है, तब गीत धधकता है–

शोषित चीखें खिसियाहट में

सत्ता से टकराती है जब

गीत उपजने लगता है तब (124)

गीत का निर्माण मनोरंजन के लिए नहीं होता, वह तो किसी सार्थक प्रयास के परिणामस्वरूप उपजता है। वह आमजन से सवाल से पूछते है कि असमान परिस्थिति के खिलाफ कब विद्रोह उठेगा। हमारी संवेदनाऐं राजनीतिज्ञों के फायदे के मध्य उलझती जा रही हैं–

चुप्पियों के मरूस्थल में

बड़बड़ाती हैं हवाएँ

कब उठेगा शोर, किस दिन? (110)

सामाजिक असमनाताओं के खिलाफ विद्रोह के लिए हमें एक बार फिर से बुद्ध, चन्द्रगुप्त, पोरस बनना होगा, तभी हम परिवर्तन ला सकते हैं–

फिर कलिंग को जीतें हम सब

फिर से भिक्षुक बुद्ध बनें

X X X X

चन्द्रगुप्त–पोरस बन जायें

परमहंस के गीत सुनायें (128)

यहाँ वह हमारे इतिहास के महान व्यक्तियों से प्रेरणा प्राप्त कर, एक बार फिर से संघर्ष करने को कह रहे हैं। हमें हमारे जीवन में, अपने इतिहास कि महान शख्सियतों से, सदैव कुछ न कुछ ग्रहण करते रहना चाहिए। यह हमारे सर्वागीण विकास के साथ–साथ, हमें समाज के अच्छे के लिए योगदान देने के लिए भी प्रेरणा प्रदान करता हैं।

अवध बिहारी श्रीवास्तव–

समसामयिक समस्याओं पर अवध बिहारी श्रीवास्तव की लेखनी ने अनेक सार्थक नवगीतों की रचना की है। अपने नवगीत संग्रह *बस्ती के भीतरर* में वह लिखते है कि यदि आपका शोषण हो रहा है, आपके साथ अन्याय हो रहा है, तो मात्र उसे सहते रहना कोई उपाय नहीं है, यदि उसके प्रति आपके भीतर विरोध की भावना है तो उसे प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक है। वह लिखते हैं–

भीतर गुस्सा है यदि माँ तो

ओठों पर ले आना सीखो (23)

वर्तमान समय के बुद्धिजीवियों के विषय में वह लिखते हैं, कि इनका कार्य तो समाज के उत्थान में सहयोग करना था, परन्तु इसके स्थान पर यह सब मात्र अपने हितों को साधने में लग गये हैं। ऐसे दोगले बुद्धिजीवी समाज में परिवर्तन लायेगें, यह सोचना ही व्यर्थ है। समाज की जंजीरों को तोड़ने का साहस, तो कोई 'कबीर' ही कर सकता है। जिसमें राजसत्ता को इनकार करने का साहस हो–

कोई 'कबीर' ही तोड़ेगा

इसको अपने इनकारों से, (26)

वर्तमान मानव समाज में एक बहुत ही खतरनाक प्रवृति ने जन्म ले लिया है। प्रत्येक व्यक्ति कल की चिन्ता में लगा हुआ है। इस कारण से वह वर्तमान को जीना ही भूल गया है, हमेशा भविष्य कि चिन्ता में रहने वाला मनुष्य, अपने वर्तमान को भूल रहा है। इसको बताते हुए अवध बिहारी श्रीवास्तव कहते हैं, कि हमें आज का आनन्द लेना सीखना होगा, वह लिखते हैं–

ये बसन्त के दिन फूलों के

कल, पतझर आयेगा, आये (65)

मनुष्य की इस चिंताकुल रहने की प्रवृति के कारण, उसे हो रहे नुकसान को बताते हुए वह कहते हैं कि 'चिन्ताकुल' मनुष्य 'चिन्तन' से दुर हो जाता है। वह जीवन के भौतिक सुखों के प्रति आसक्त होकर, जीवन के वास्तविक उद्देश्य से भटक जाता है। इसलिए वह लिखते हैं कि मनुष्य को चिन्ता के स्थान पर, चिन्तन पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए–

'चिन्ता' जितनी ज्यादा होगी,

'चिन्तन' उतना बने असंभव

अलग–अलग भाषा दोनों की

अलग–अलग दोनों के अनुभव (57)

यशोधरा राठौर–

यशोधरा राठौर अपने नवगीत संग्रह *जैसे धूप हंसती है* में वर्तमान समाज में एक–दूसरे को आक्षेपित करने का चलन प्रारम्भ हो गया है, उसके प्रति वह लिखती हैं। वह कहती है कि हम दूसरे के अन्दर बुराईयाँ निकालने में लगे हैं, परन्तु हम स्वयं क्या है, उसको जानना ही नहीं चाहते हैं। हमे दुसरे से पहले स्वयं को जानने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि यही श्रेष्ठ है।

सदा दूसरों से पहले

अपने को जानें (18)

वर्तमान भौतिकवादी सोच एवं परिस्थितियों ने मनुष्य जीवन को समस्याओं का घर बना दिया है। मनुष्य जीवन, उलझनों से भरकर रह गया है। प्रत्येक मनुष्य इन समस्याओं से डर–डरकर जी रहा है, परन्तु डरना किसी समस्या का हल नहीं है। यदि हम डरकर समस्या से दूर भागने का प्रयास करेगें, तो वह हमारा पीछा करेगी। इसलिए हमे समस्याओं से दुर भागने की अपेक्षा उनका सामने करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे हम उनका हल निकाल सके। वह लिखती हैं–

लांघ पायेंगे न

घर की देहरी भी

अगर अपनी समस्याओं से

डरे हम (22)

समस्या से डरकर भागने की प्रवृत्ति के साथ ही, मनुष्य ने एक और प्रवृत्ति को आत्मसात कर लिया है। किसी भी समस्या पर मौन धारण कर लेना। समस्या पर मौन हो जाना, मात्र दो भावों की अभिव्यक्ति का द्योतक है, प्रथम तो आप उससे हार गये हैं, दुसरा आप उस समस्या का ही एक अंग बन गये हैं। दोनों ही स्थितिया मनुष्य के लिए घातक हैं, इसलिए वह लिखती है–

आँख में/वीरानगी है

होंठ पर हलचल नहीं है

मौन रहना कभी होता

समस्या का/हल नहीं है (104)

बृजनाथ श्रीवास्तव–

बृजनाथ श्रीवास्तव अपने नवगीत संग्रह *रथ इधर मोडिये* में अपने नवगीतों के माध्यम से, अनेक विषयों पर मनुष्य को दिशा दिखलाने का प्रयास करते हैं। वर्तमान समय में मनुष्य ने भौतिक साधनों कि प्राप्ति हेतु, प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। मनुष्य अपने लोभ–लालच के मोह में फंसकर

प्रकृति का विनाश कर रहा है। हमारे पूर्वज प्रकृति की पूजा करते थे, वह अनेक प्रकार से प्रकृति के साथ एक आत्मीय रिश्ता बनाकर रखते थे। बृजनाथ श्रीवास्तव लिखते है, यदि मनुष्य कि आने वाली पीढ़ियों को प्राकृतिक संकटों से बचाना है, तो हमे प्रकृति से हमारा वही पुराना सम्बन्ध फिर से स्थापित करना होगा–

फिर करे पूजा

चलो हम श्याम बादल की

ताकि प्यासी

रहन जायें पीढ़ियाँ कल की (33)

मनुष्य ने प्रकृति का इतना विनाश कर दिया है, कि उसे पुनः स्थापित करने हेतु एक बार फिर से 'भगीरथी' प्रयासों कि आवश्यकता है। मनुष्य ने नदी–तालाबों के पानी को समाप्त कर दिया है, ओजोन परत में छेद हो गया है। वह लिखते हैं कि यदि मनुष्य अब भी नहीं सम्भला तो यह दिन पुनः कभी वापस नहीं आयेंगे।

यदि न चेते तो

हरे दिन बीत जायेंगे

नहीं घन मीत आयेंगे (31)

देश में धर्म, जाति, रंग के आधार पर होने वाले भेदभाव से, सावधान करते हुए वह कहते है, कि इन सब के कारण राष्ट्र कि एकता एवं अखण्डता पर आँच आती हैं। यदि हमें राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोकर रखना है, तो इन सबसे ऊपर उठकर सोचना होगा, इन सब से मात्र राष्ट्र का विनाश ही होता है–

जातियाँ, धर्म तोड़ा किये देश को

मत अधिक तोड़िए

रथ इधर मोड़िए (71)

इसी नवगीत में वह आगे लिखते हैं, कि वर्तमान कठिन परिस्थितियों में यह अत्यन्त आवश्यक है, कि हम एक–दूसरे का सहारा बने, सम्बल बनें। हम सब प्यार से साथ मिलकर रहें, यही वक्त कि माँग है–

चोट खाये जनों का सहारा बनो

वक्त है दौपहर

रथ इधर मोडिए (72)

रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'–

रामसनेही लाल शर्मा अपने नवगीत संग्रह *झील अनबुझी प्यास की* में, वर्तमान समाज में फैल रही हिंसा एवं घृणा की प्रवृत्तियों के समाधान पर लिखते हैं। अपने नवगीत 'एक कैलेण्डर व्यर्थ हुआ' में वह कहते हैं, कि नये संवत के आने पर हमें यह प्रयास करना होगा कि, हिंसा एवं घृणा समाज से समाप्त हो जाये, उसके लिए समाज का जागृत होना आवश्यक है, तभी वह इन सबसे ऊपर उठकर आगे बढ़ पायेगा–

जागेगें कुछ

जागरण गीत

सोयेंगे हिंसा, घृणा द्वेष

हो अभय, हँसेगे मंगलघट (44)

इस हिंसा व घृणा से भरा हुआ मनुष्य एक–दूसरे के लिए विनाशकारी हो रहा है, मनुष्य मात्र के मध्य अविश्वास की खाई उत्पन्न हो गई हैं, इसमें प्रत्येक मनुष्य की स्थिति 'मैं भी घायल, तू भी घायल, फिर भी हम लड़े निरन्तर' वाली हो गयी है, इस विकट परिस्थिति से उबरने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव है– विश्वास की वापसी। मनुष्य का मनुष्य पर विश्वास। इस को व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं–

जोडे फिर विश्वास नया ले

सपनों की अनछुई लड़ी को

निष्ठा वाले पावन जल में

मैंल भरा तन–मन धोते हैं (58)

राज सत्ता की कूरता को समाप्त करना कभी भी आसान कार्य नहीं रहा है, सत्ता सदैव से अपने विरोध में उठने वाली आवाजों को दबाने का प्रयास करती है। इसके लिए वह धन, बल, छल आदि अनेक हथकंड़ों का प्रयोग करती हैं। यदि मनुष्य को राज सत्ता के विरोध को स्वर देना है, तो उसे जीवन–मरण, सुख–दुःख को त्यागकर, सम्पूर्णभाव से इस कार्य को करना होगा, तभी उसे सफलता प्राप्त होगी–

मृत्यु पत्रों पर हमीं जब स्वयं

हस्ताक्षर करेंगे

बस तभी आश्वस्ति के

निर्झर झरेंगे (66)

यहाँ वह प्रत्येक मनुष्य को संकेत कर रहे हैं, कि हमे अपने एशो–आराम त्यागकर, पूर्णरूप से संघर्ष करना आवश्यक है। आधे–अधुरे मन से किया गया संघर्ष मनुष्य को सफलता नहीं दिला सकता है।

नचिकेता

वर्तमान मनुष्य समाज चारों ओर से निराशा से घिरा है। उसके सामने अनेक स्तरों पर, समस्यायें ही समस्यायें हैं। कही आर्थिक चुनौति है, कही सामाजिक रिश्तों के बिखरने की पीड़ा, इस सब में वह सबसे पहले उम्मीद का दामन छोड़ता है, एक बार उम्मीद का दामन छुटा और मनुष्य के इस निराशा से निकलने का रास्ता बन्द हो जाता है। मनुष्य को विकट से विकट परिस्थित में भी उम्मीद का दामन नहीं छोड़ना चाहिए, इसको नचिकेता अपने संग्रह *'सच कहा तुमने'* के नवगीत 'हासिल होगी सुबह' में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

उम्मीदे जिंदा है तो

कुछ भी होगा

अभी रात है

लेकिन ओर कभी होगा

रोक सकेगा कौन

सेबरा होने से (15)

कुछ समय के लिए परिस्थितियाँ विपरीत हो सकती हैं, परन्तु सदैव ऐसा नहीं रहेगा, यह उम्मीद हमें कभी नहीं छोड़नी चाहिए। हमें सदैव अपने जीवन में आने वाली समस्याओं से सीखना चाहिए। उनसे भागने की अपेक्षा, बेहतर भविष्य के निर्माण हेतु, उनसे सीखते हुए आगे बढ़ना चाहिए–

सीखता हूँ मैं

समस्याओं, दुखों से (163)

हमारा राष्ट्र सदैव से 'अहिंसा' को अपने मूल आधारों में मानता रहा है, परन्तु वर्तमान सामाजिक ताने–बाने में 'अहिंसा' का स्थान समाप्त हो गया है। अब प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक समस्या का एक ही हल देखता है–हिंसा। उसे हिंसा में ही सभी समाधान दिखलाई देते है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति उसे एक हिंसक पशु समान बना देती है। क्या वास्तव में प्रत्येक समस्या का हल हिंसा है? इसलिए नचिकेता अपने नवगीत 'झगड़ रहे क्यों' में लिखते हैं–

हम दोनों क्यों

झगड़ रहे है बात–बात में

झगड़े से हल होती

कोई नहीं समस्या (45)

वर्तमान सियासत भी, इस प्रवृत्ति का फायदा ऊठाकर, अपने कुर्सी को बचाये रखने का प्रयास करती है। वह मनुष्य को मोहरे के रूप में इस्तेमाल करके, उन्हें

आपस में लड़वाकर मात्र अपना हित साधने का प्रयास करती है। हमें इस प्रवृत्ति से बचना होगा और बात–बात पर, लड़ाई–झगड़े को प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति से बचना होगा।

अध्याय 9

21वीं सदी के नवगीतों का व्यवहारिक पक्ष

व्यवहारिक पक्ष

शोध कार्य को व्यवहारिक आयाम प्रदान करने हेतु, एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया। प्रारम्भ में वरिष्ठ आलोचकों, संपादकों एवं विद्वानों द्वारा उस प्रश्नावली में सम्मिलित प्रश्नों, उनकी संख्या, उनके विभिन्न आयाम एवं व्याकरण आदि पक्षों पर अभिमत प्राप्त किया गया एवं उनके द्वारा सुझाये गये परिवर्तनों को सम्मिलित करने के पश्चात्, प्रश्नावली को अन्तिम रूप प्रदान किया गया।

इसके पश्चात प्रश्नावली को नवगीतकारों को प्रेषित किया गया। इसमें तकनीक का योगदान लेते हुए कुछ नवगीतकारों को ई–मेल एवं सोशल मिडिया के माध्यम से एवं अन्य को डाक द्वारा प्रश्नावली को प्रेषित किया गया। प्रश्नावली भेजने के क्रम में यह ध्यान रखा गया की विषय को समझने एवं इस पर कार्यरत विद्वानों को ही प्रश्नावली प्रेषित कि जाये, जिससे प्राप्त उत्तरों कि गुणवत्ता निश्चित हो सके। इस हेतु तीन ग्रन्थों को योग्यता का पैमाना बनाया गया एवं इन ग्रन्थों में सम्मिलित विद्वानों से ही सम्पर्क किया गया। यह ग्रन्थ निम्नलिखित है–

(i) नचिकेता द्वारा सम्पादित–समकालीन गीतकोश

(ii) रामस्नेहीलाल शर्मा द्वारा सम्पादित–नवगीत कोश

(iii) शीला पाण्डेय द्वारा सम्पादित–सूरज है रूमाल में

(महिला नवगीतकार संकलन)

उपर्युक्त तीनों संकलन नवगीत के महत्वपूर्ण कोश है, इनमें सभी नवगीतकारों का परिचय सम्मिलित है। प्रश्नावली में प्रश्नों का प्रारूप निबन्धात्मक रखा गया, जिससे उत्तरदाता अपनी बात को सही प्रकार कह सके, शब्द सीमा पर प्रतिबन्ध नहीं रखा गया।

कुल सत्तर नवगीतकारों से प्राप्त उत्तरों का समग्रता से विश्लेषण करने के पश्चात जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, उनका सार यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

सर्वप्रथम नवगीत नामकरण के कारणों व परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए विद्वानों ने कहा कि इसके अनेक कारण रहे हैं, परन्तु स्पष्टतः जो कारण रहा वह

था, गीत उस समय कि परिस्थितियों में जो परिवर्तन आ रहे थे, उनको व्यक्त कर पाने में सफल नहीं हो पा रहे थे। इसको स्पष्ट करते हुए वरिष्ठ नवगीतकार गणेश गम्भीर ने कहा– "जीवन की बदलती स्थितियों का अनुभूत, अवलोकित सत्य गीत के पुराने पारूप (फार्म) में नहीं आ रहा था।" इसी को स्पष्ट करते हुए रामस्नेही लाल शर्मा ने कहा–

> मंचीय गीत लोकप्रियता, व्यावसायिकता, श्रृंगारिकता और अति सरलता के भँवर में फँस गया था। नई कविता के कवि और समीसक इन्हीं कारणों से गीत को आधुनिक युग की यथार्थबोधी अभिव्यक्ति के अनुपयुक्त बता रहे थे। तो गीत को युगानुकूल सिद्ध करने और पारम्परिक मंचीय गीत से उसका अंतर स्पष्ट करने के लिए, उसका नवगीत होना अनिवार्य था।

नवगीत अपनी छः दशको कि लम्बी यात्रा को पुरा कर चुका है, परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। क्या नवगीत में भी शिल्प व कथ्य के आधार पर कुछ परिवर्तन आये हैं? इसको स्पष्ट करते हुए विद्वानों का मानना है कि, नवगीत की नवता का कारण ही है, परिवर्तन। समय–समय पर कथ्य और शिल्प में परिवर्तन उस समयकाल कि परिस्थितियों को व्यक्त करने हेतु आवश्यक है। इस पर अजय पाठक कहते हैं–

> यह सही है कि नवगीतों में उसके आरम्भिक दिनों की तुलना में कथ्य की दृष्टिकोण से बड़ा बदलाव आया है, इसे दुसरे शब्दों में कहे तो नवगीत का कथ्य पहले की तुलना में अधिक व्यापक हुआ है, रही बात शिल्प की तो मैं इसे कवि की निजता और उसके रचनात्मक सामर्थ्य से जोड़कर देखता हूँ। प्रत्येक कवि विषयानुकुल भाव, भाषा और तेवर को कविता में अपने तरीके से गढ़ता और मढ़ता है।

किसी भी साहित्यक विधा के समक्ष समय अनेक प्रकार कि चुनौतियों को प्रकट करता है। उससे आगे बढ़कर ही वह विधा साहित्य की नदी में बनी रह

सकती है। वर्तमान समय में नवगीत के समक्ष कौनसी चुनौतियाँ है, यह स्पष्ट होना आवश्यक है। यहाँ यह भी स्पष्ट होना आवश्यक है कि प्रत्येक विधा के रचनाकरो के समक्ष यह चुनौतियाँ आती है। आचार्य संजीव शर्मा 'सलिल' ने नवगीत के समक्ष जो चुनौतियाँ है, उन्हें तीन भागों में बाँटा है, (i) विधा के सामने चुनौतियाँ (ii) रचनाकार के सामने चुनौतियाँ (iii) विधागत चुनौतियाँ। इस को और अधिक स्पष्ट करते हुए बसंत शर्मा कहते है–"आज नवगीत के सामने गीत बने रहने और भाषा में आ रहे बदलाव की कठिन चुनौती है।"

प्राप्त उत्तरों का सम्रग अध्ययन करने से जो निष्कर्ष निकलता है, उससे नवगीत के समक्ष जो चुनौतियाँ विद्यमान है, उनमें प्रमुख है–समकालीन एवं यर्थाथ वर्णन, अतियर्थाथवाद से बचना, भाषाई परिवर्तनों को आत्मसात करना, अपनी नवता को बनाये रखना आदि। क्या नवगीत इन सभी चुनौतियों का सामना कर पा रहा है? वह वर्तमान में जनता से सीधा संवाद क्यों नहीं कर पा रहा है। इस प्रश्न पर विद्वानों का मत है कि यह आरोप गलत है। वर्तमान में लिखे जा रहे नवगीत, निश्चित रूप से जनता से संवाद कर रहे है। इसी से सम्बन्धित एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या नवगीत मात्र एक सीमित, बौद्धिक समाज तक सिमट कर रह गया है? नवगीतकारों ने इसे किसी हद तक स्वीकारा है। वह यह मानते हैं कि आंशिक रूप से यह बात सत्य है, परन्तु इसके कारण नवगीत के साथ ही वर्तमान समय कि परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार है। इसको स्पष्ट करते हुए शीला पाण्डेय लिखती है–

> हाँ किसी हद तक यह बात सच है। इसका मूल कारण इसकी गूढ़ता और शिल्प का उलझाव है। दूसरा पढ़ने–लिखने और सुनने का अब इस भागमभाग दौर में स्वाद और रूचि का साहित्य ही पैठ बनाता है। पिछले दो–तीन दशकों से घोर बाजारीकरण के दौर में साहित्य हाशिए पर लाकर खड़ा कर दिया गया है। तीसरा, और सबसे बड़ा कारण है कि नवगीत का प्रचार–प्रसार कम है।

शोध कार्य 21 वीं सदी के नवगीतों पर आधारित है, इसलिए यह जानना आवश्यक है कि 21 वीं सदी के नवगीत 20 वीं सदी के नवगीतों से किन आयामों पर भिन्न है। नवगीतकारों ने जो महत्वपूर्ण अन्तर या भिन्नता के बिन्दु बताये हैं, वह निम्न है–

(i) 21वीं सदी के नवगीतों में कोमलकांत चित्रों कि अपेक्षा, अधिक खुरदुरापन है एवं यह ज्यादा मुखर भी है।

(ii) 21वीं सदी के नवगीतों में, 20वीं सदी की अपेक्षा प्रयोगधर्मिता का गुण अधिक है।

(iii) नये प्रतीक, नये बिम्ब, नया सौदर्य बोंध, नया शाब्दिक चिन्तन 21वीं सदी के नवगीतों को, 20वीं सदी के नवगीतों से भिन्न करता है।

(iv) 21वीं सदी के नवगीत मानव मूल्यों के आग्रह के स्थान पर, भोगे हुए यथार्थ का वर्णन अधिक करते हैं।

(v) कथ्य का विस्तार हुआ है।

(vi) 21वीं सदी में लिख रहे नवगीतकारों में, अधिकांश ने अपना जीवन–यापन नगरों में किया है। अतः नवीन प्रतिमानों का प्रयोग उनके नवगीतों में है।

(vii) 21वीं सदी के नवगीतों में छन्द अनुशासन में ढ़िल है एवं लय का महत्व अधिक है।

(viii) 21वीं सदी के नवगीतों में राजनैतिक प्रतिबद्धता के रूप में एक अवगुण भी विकसित हो रहा है।

(ix) 21वीं सदी के नवगीतों में संवेदनात्मकता कि अपेक्षा संघन प्रचारात्मकता पर अधिक जोर है।

(x) 20वीं सदी में नवगीत के सर्जक कम थे, परन्तु 21वीं सदी में सर्जको की संख्या बढ़ी है।

युगबोध एक बहुत ही महत्वपूर्ण आयाम है, अतः युगबोध कि अवधारणा को समझना भी आवश्यक है। नवगीतकारों ने युगबोध के विविध आयाम निम्नलिखित बताये हैं–

(i) राजनैतिक

(ii) सामाजिक मान्यताऐं

(iii) पर्यावरणीय परिवर्तन

(iv) आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितयाँ

(v) समय की विसंगति या जीवन संघर्ष

इसको स्पष्ट करते हुए गोपल कृष्ण भट्ट 'आकुल' ने कहा है–

> समसामयिक परिस्थितियों में किसी काल की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियाँ शामिल मानी जाती है, युगबोध का सृजन प्रक्रिया से सीधा संबंध माना गया है, क्योंकि यह भूत, वर्तमान और भविष्य में विचरण करता है। कलात्मक और साहित्यिक रचनाएँ युगबोध से निर्मित होती है तथा उसका प्रकटन भी करती है।

21वीं सदी के नवगीत किस प्रकार से युगबोध को व्यक्त कर पा रहे हैं। इस पर नवगीतकारों का कहना है कि वर्तमान समय के बिम्ब, प्रतीक, प्रतिमान, घटनाक्रम, परिस्थितियों आदि के समावेश से, 21वीं सदी का नवगीत अपने समय के युगबोध को सहजता से व्यक्त कर रहा है। वर्तमान समय में हमारी जीवन प्रणाली में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्व बढ़ा है। इस परिवर्तन को भी नवगीत अपने अन्दर समाहित कर रहे हैं। वर्तमान समय में आधुनिक युगबोध में शामिल वैश्वीकरण, उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टिकोण, बाजारवाद, माहामारी, राष्ट्रवाद जैसे तत्वों को भी नवगीतकारों ने अपने नवगीतों के माध्यम से व्यक्त किया है।

वर्तमान समय में हिन्दी कविता की मुख्यधारा में नवगीत कि उपस्थिति के क्या मायने है, इसको स्पष्ट करते हुए रामस्नेही लाल शर्मा लिखते हैं– "हिन्दी

कविता की मुख्यधारा अब नवगीत की चौखट से ही गुजरेगी, गुजरना पड़ेगा। क्योंकि अब नवगीत हिन्दी कविता के केन्द्र में स्थापित है।" कमाबेश अन्य नवगीतकारों का भी यही मानना है कि नवगीत, अब कविता की मुख्यधारा में पूर्णरूप से अपनी पहचान बना चुका है।

साहित्य में आलोचक/समाचोलक का स्थान बहुत महत्वपूर्ण होता है। साहित्य के विभिन्न आयामों को प्रकट करने का कार्य आलोचक ही करता है। हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा की आलोचना नवगीत विधा का मूल्याकंन करने से बचती रही है। मुख्यधारा के आलोचको ने अपने आलोचना कर्म में नवगीत को उचित स्थान नहीं दिया। नवगीतकारों ने इसके विभिन्न कारण माने हैं। इसमें प्रमुख निम्नलिखित है–

(i) छान्दसिक विद्याओं के प्रति दुराग्रह

(ii) छन्दमुक्तता का मोह

(iii) छन्दशास्त्र का अपूर्ण ज्ञान

(iv) आलोचकों में पिछड़ा माने जाने का भय

(v) विचारधारा विशेष से बंधा होना

(vi) आलोचना का हेतु लोक के स्थान पर दल होना

(vii) तटस्थता का अभाव (शिविर बद्धता)

(viii) स्वयं नवगीतकारों द्वारा गद्य न लिखा जाना

आलोचकों के समान ही पत्र–पत्रिकाओं का महत्व भी किसी विद्या के उत्थान में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आलोचकों के समान ही संपादकों के महत्व को भी नकारा नहीं जा सकता है, हिन्दी साहित्य के विकास में अनेक पत्र–पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज अनेक पत्र–पत्रिकाएँ विधाओं को समर्पित है, परन्तु नवगीत को पूर्णतः समर्पित पत्रिकाओं का अभाव सदैव से रहा है एवं अन्य समृद्ध पत्रिकाओं ने भी नवगीत को समाहित करने में अरूचि प्रदर्शित की है, इसके कारणों

पर नवगीतकारों का मानना है कि यह समस्या नवगीत के साथ प्रारम्भ से ही रही है, जिसके कारण निम्नलिखित है–

(i) खेमेबाजी (अपने खेमे के लेखको को छापना)

(ii) बाजारवाद

(iii) रूढ़िवादी परम्परा (नवगीत को हेय मानना)

(iv) विचारधारा को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति

(v) बौद्धिक पराधीनता

(vi) आर्थिक कारण

(vii) पाठकों की संख्या ना होना

इस प्रश्न के उत्तर में अनेक नवगीतकारों का यह भी मानना है कि वर्तमान में विधा केन्द्रित पत्रिकाओं में भले ही नवगीत पर आधारित पत्रिका न हो, परन्तु नवगीत को छापने वाली पत्रिकाओं के योगदान को सराहना भी आवश्यक है। इनमें धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि ने नवगीत को प्रारम्भिक अवस्था से ही छापा है। वर्तमान समय में सम्रग चेतना, वागर्थ, नया ज्ञानोदय, पहल, अक्षत, वाणी, बिम्ब–प्रतिबिम्ब, अनुगुंजन आदि नियमित रूप से नवगीतों को प्रकाशित कर रही है। अनुगुंजन, वीणा ने तो नवगीत विशेषांक भी हाल ही में प्रकाशित किये हैं। पत्रों में हिन्दुस्तान, अमर उजाला, दैनिक जागरण आदि में भी समय–समय पर नवगीत प्रकाशित हो रहे हैं।

मुख्यधारा की आलोचना के भेदभावपूर्ण रवैये के कारण, नवगीत की आलोचना में जो अभाव है, उसे किस प्रकार भरा जा सकता है एवं नवगीत कि आलोचना को समृद्ध करने के लिए क्या किया जाना चाहिए, के उत्तर में नवगीतकारों ने निम्नलिखित उपाय बताये हैं–

(i) नवगीत केन्द्रित सम्मेलन

(ii) सरल भाषा का प्रयोग

(iii) नवगीतकारों को स्वयं गद्य लिखना होगा

(iv) आलोचन सिद्धान्तों का विकास

(v) पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन

(vi) आलोचना कि पुस्तकों का प्रकाशन

(vii) पाठ्य–पुस्तकों में जोड़ना

(viii) पाठ्क वर्ग को बढ़ाना (लोकप्रियता)

साहित्य में विमर्शों का योगदान भी महत्वपूर्ण है, हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श महत्वपूर्ण विमर्श है। वर्तमान समय में लिखे जा रहे नवगीत, इन विमर्शों को किस प्रकार व्यक्त कर पा रहे हैं, इस प्रश्न पर नवगीताकारों ने माना है कि वर्तमान समय में लिखे जा रहे नवगीत, निश्चित रूप से विमर्शों को व्यक्त करने में सक्षम है। विमर्शों में मात्र कहानी, उपन्यास को शामिल करने से उनके एकांकी होने का खतरा उत्पन्न होता है, अतः यह भी आवश्यक है कि विमर्शों के माध्यम से समग्र दृष्टि को जानने के लिए नवगीतों को सम्मिलित करना भी आवश्यक है। इस पर आशीष देशोन्तर का कहना है–

> प्रासंगिक विषयों एवं ज्वलंत मुद्दों से विमुख होकर कोई भी विद्या प्रभावी नहीं हो सकती। नवगीत में दलित, स्त्री, आदिवासी विमर्श निश्चित रूप से उभर कर आ रहा है और यह कोई जबरन लाई जाने वाली विषय वस्तु नहीं है, यह हमारे स्वभाव और परिवेश में मौजूद चिंता है, जिन पर लिखे बैगर हम नवगीत को पूर्ण नहीं मान सकते।

गीत एवं नवगीत सदैव से ही लोक से जुड़ी विधा रही है, परन्तु नवगीत के आलोचक; कुछ समय से उस पर यह आरोप लगाते है कि वर्तमान नवगीत जनता से सीधा संवाद नहीं कर पा रहे हैं। नवगीतों का 'लोकधर्मी एवं जनसंवादी रूप सामने नहीं आ रहा है। नवगीतकार इससे सहमत नहीं है, उनका कहना है कि नवगीत सदैव की भाँति लोक से जुड़ा है। आम जन की पिड़ा, वेदना, दुःख–सुख

की परिस्थितियों को यह व्यक्त कर रहा है। जनसंवाद के जो माध्यम वर्तमान में है, उनमें यह पूर्णरूप से विद्यमान है। आकाशवाणी एवं दुरदर्शन पर नियमित रूप से इसके कार्यक्रम आते हैं। फेसबुक, व्हाट्सप जैसे माध्यमों पर यह अनेक प्रकार से उपस्थित है। हाँ यह सत्य है कि यह मंचों पर उस मात्रा में उपस्थित नहीं है, परन्तु इसका कारण नवगीत न होकर, मंचीय कविता का गिरता हुआ स्तर जिम्मेदार है।

नई कविता एवं नवगीत के मध्य एक प्रमुख अंतर यह माना जाता रहा है कि नई कविता मात्र एक सीमित, बौद्धिक समाज के लिए है, परन्तु नवगीत सभी के लिए है। वर्तमान में यह आरोप नवगीत पर भी लगने लगा है। नवगीतकार भी इससे कुछ हद तक सहमत है, इसके वह अनेक कारण मानते है। जिनमें प्रमुख है–

(i) राजनीतिक विचारधारा की पूर्ति

(ii) खतरा उठाने से बचने की प्रवृति

(iii) गुढ़ता व शिल्प का उलझाव

(iv) समाज में साहित्य का हाशिए पर चले जाना

(v) पाठक वर्ग की कमी (अच्छे साहित्य के प्रति)

यहाँ पर रामस्नेही लाल शर्मा का कहना है–

> लोकप्रिय कविता और श्रेष्ठ कविता सदा एक ही नहीं होती। रामचरितमानस लोकप्रिय है, परन्तु तुलसी की सर्वोत्तम रचना विनयपत्रिका है। कामायनी के पाठक सीमित है, परन्तु इससे उसकी महता कम नहीं हो जाती। नई कविता और नवगीत दोनों के पाठक सीमित है, परन्तु नई कविता से नवगीत के पाठक कई गुने अधिक है।

अपनी छः दशकों की लम्बी यात्रा में नवगीत पर यह आरोप भी लगता रहा है कि इसे महिला नवगीतकारों का सहयोग/साथ नहीं मिला। गणेश गम्भीर इसका कारण बताते हुए कहते हैं– "इसका उत्तर हिन्दी पट्टी कि सामाजिक सरंचना में

छिपा है। नवगीत ही नहीं अन्य साहित्यिक विद्याओं में पुरुष रचनाकारों की उपेक्षा महिला रचनाकारों की संख्या कम है।" इस विषय में रंजना गुप्ता का कहना है–

> घूँघट, घरेलूहिंसा, अशिक्षा, लिंगभेद, कम उम्र में विवाह, शोषण और आर्थिक पराधीनता से वो पहले लड़ी, कुछ दशको बाद जब उनकी स्थिति सुधरी, फिर उन्होंने साहित्य की ओर ध्यान दिया, आज अनेक महिला रचनाकार पुरी सक्षमता से नवगीत रच रही है।

भावना तिवारी इसके एक अन्य पहलु को स्पष्ट करते हुए कहती है–

> पूर्व में संपादक तक पहुँचना ही दुष्कर कार्य थ परन्तु वर्तमान तकनीकि युग में सहजता है कि एक लेखक स्वयं को प्रकाशित करवा सके या कर सके। इसके लिए किसी विशेष माध्यम की आवश्यकता नहीं है। अब तो महिला नवगीतकारों की एक श्रृंखला हमारे सामने है।

प्रभा दिक्षीत तो इस प्रश्न को ही गलत मानती हैं, वह कहती हैं– "यह एक अनुचित प्रश्न है। शांति सुमन जैसी वरिष्ठ नवगीतकार के होते हुए, हम यह नहीं कह सकते है कि नवगीत को महिला साहित्याकार नहीं मिला। वैसे साहित्य की हर विधा में पुरुषों की अपेक्षा महिलायें संख्या में कम भले हो, गुणवत्ता में कम नहीं हैं।"

वर्तमान में नवगीत के क्षेत्र में महिला नवगीतकार सक्रियता से कार्य कर रही है। इनमें शांति सुमन, पुर्णिमा वर्मन, भावना तिवारी, रंजना गुप्ता, गरिमा सक्सेना, मधु प्रधान, शीला पाण्डेय, प्रभा दिक्षीत, इंदिरा मोहन, छाया सक्सेना, अनामिका सिंह 'अना', किर्ती काले, मृदल शर्मा, अनिता सिंह, मधु गोयल, ऊषा सक्सेना आदि कुछ प्रमुख नाम है। महिला नवगीतकारों के बढ़ते योगदान के कारण ही, अब महिला नवगीतकारों पर आधारित पुस्तकें व पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित होने लगे हैं।

किसी भी विधा को पहचान दिलाने वाला साहित्यकार एवं उसके द्वारा लिखा गया साहित्य होता है। समय कि कसौटी पर यह दोनों ही प्रतिमान परखे जाते हैं। यदि नवगीत छः दशकों से भी अधिक अपनी पहचान कायम रख पाया है, तो इसमें

नवगीतकारों की मेहनत व उनके नवगीतों की श्रेष्ठता का हाथ है। नवगीत परम्परा को प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय विद्वान शम्भुनाथ सिंह, राजेन्द्र प्रसाद, वीरेन्द्र मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, उमाकांत मालवीय, शांति सुमन आदि को देते हैं। इस प्रश्न के उत्तर में अधिकांश विद्वानों का मानना है कि किसी एक व्यक्ति को यह श्रेय देना गलत है। प्रत्येक नवगीतकार एवं उनके द्वारा रचित नवगीतों का योगदान अमूल्य है। सभी की सामुहिक नवगीत निष्ठा, के कारण ही, नवगीत अपने वर्तमान स्वरूप का प्राप्त कर पाया है। इसके साथ ही विद्वान, पत्रिकाओं, काव्यगोष्ठियों, समवेत संकलनों को भी नवगीत कि प्रतिष्ठा को बढ़ाने में महत्वपूर्ण मानते हैं।

वर्तमान युवा पीढ़ी के नवगीतकार ही नवगीत का भविष्य है, उनके नवगीतों को देखकर समस्त विद्वान नवगीत विधा के भविष्य को सुरक्षित एवं उज्जवल मानते हैं। राधेश्याम बंधु भविष्य में आने वाली चुनौतियों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

> वर्तमान समय के नवगीतकारों के नवगीतों की वैचारिक जागरूकता, तेवर और जुझारूपन देखकर नवगीत का भविष्य मुझे बहुत उज्जवल और विकासोन्मुख लग रहा है, किन्तु नवगीत के विकास के रास्ते में कुछ सामन्ती, कलावादी, यथास्थितिवादी सोच वाले गीतकारों और मंचीय कवियों की अवसरवादिता के कारण अवरोध और चुनौतियाँ भी बहुत उपस्थित हो रही है।

नवगीत पूर्व में भी अनेक चुनौतियों को पार करते हुए वर्तमान रूप में आया है। भविष्य में भी वह इन पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगा, ऐसा सभी नवगीतकार मानते हैं।

किसी भी विधा को प्रतिष्ठा एवं उसके विकास में शोध कार्य का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान होता है, सभी विद्वान नवगीतकारों ने इस बात को माना है। अविनाश ब्यौवार कहते है–"नवगीत पर शोध होना नवगीत की प्रतिष्ठा पर चार चाँद लगाता है। यह नवगीत के उत्तरोत्तर विकास में बहुत अहम है।"

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य और युगबोध एक दूसरे के पूरक बनकर व्यवहार करते हैं। साहित्यकार समाज में रहता है, उसका जीवन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक परिरिस्थितियों से प्रभावित होता है। समाज की वह एक इकाई होता है, समाज में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन से वह प्रभावित होता है। इन सब परिस्थितियों से ही युगबोध का निर्माण होता है। युगबोध का ज्ञान ही साहित्यकार के साहित्य का आधार बनता है। अपने युगबोध से प्रभावित होकर वह उसे साहित्य में समाहित करता है। युगबोध से साहित्य में परिपूर्णता आती है।

गीत से नवगीत रूपी शाखा के निकलने की परिस्थितियों का बारीकी से अध्ययन करे, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका एक प्रमुख कारण रहा है– गीत का अपने युगबोध से कट जाना। 20वीं सदी के छठे दशक में जब नवगीत जन्म ले रहा था, उस समय की गीत रचनाओं में साहित्यिक उत्कृष्टता भले ही हो, परन्तु वह उस कालखण्ड की युगीन परिस्थितियों को पूर्णता से व्यक्त नहीं कर पा रही थी। इन्हीं कारणों से गीत विधा समाज से कट गयी थी। गीत की इस गलती को नवगीत ने सुधारा। नवगीत का आधार स्तम्भ ही है, अपने युगबोध को व्यक्त करना। साहित्य–समाज के रिश्ते को पुनः जीवित करने का कार्य, नवगीत के माध्यम से नवगीतकारों ने किया। 21वीं सदी के आते–आते नवगीत ने इस आधार स्तम्भ को और मजबूत किया है।

21वीं सदी के युगबोध में जो प्रमुख अवयव हैं, उनका इस शोध कार्य में विश्लेषण किया गया है, नवगीतकार अपने नवगीतों में किस प्रकार से इन अवयवों को प्रकट करते हैं, यही इस शोध का उद्देश्य रहा है। 21वीं सदी के युगबोध के प्रमुख भाग सामाजिक बोध, सांस्कृतिक बोध, राजनीतिक बोध, आर्थिक बोध, पर्यावरणीय बोध एवं साहित्यिक बोध का इस शोध कार्य में गहनता से अध्ययन किया गया है। सूक्ष्म एवं अध्ययन हेतु इन्हें पुनः विभाजित किया गया है।

सामाजिक बोध में नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में वर्तमान सामाजिक यथार्थ, सामाजिक व्यवस्था में आती हुई संकीर्णता, समाज में पैदा हो रही असमानता

के साथ ही सामाजिक समरसता के विभिन्न आयामों को भी अपने नवगीतों में व्यक्त किया है। सामाजिक कुरूतियों को व्यक्त करना साहित्य का प्रमुख ध्येय रहा है। नवगीतों में यह पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसके साथ ही नवगीतों ने उन सामाजिक आयामों को व्यक्त किया है, जिनके माध्यम से समाज में सद्भावना को बढ़ावा मिलता है।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में, अर्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक बनकर उभर रहा है। आज के समाज में आर्थिक ताकत से ही पद, प्रतिष्ठा, सम्मान का निर्धारण होने लगा है। यह स्थिति सम्पूर्ण वैश्विक परिदृश्य में उपस्थित है। इस स्थिति ने कुछ समस्याओं को उत्पन्न कर दिया है। अधिक से अधिक धन संग्रहण की लालसा ने भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, लालफीताशाही एवं अपराधों को बढ़ावा दिया है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में धन का वितरण समान रूप से नहीं होता है, यहाँ अमीर एवं गरीबों के मध्य एक गहरी आर्थिक खाई उत्पन्न हो जाती है।

इन सब परिस्थितियों के कारण समाज वर्ग विभाजन के मुँहाने पर खड़ा हो जाता है और गरीब एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग का शोषण प्रारम्भ हो जाता है। कार्यस्थल पर उनके साथ अनुचित व्यवहार होने लगता है। समाज में वर्ग संघर्ष की घटनायें होने लगती है। 21वीं सदी में लिखे गये नवगीतों में युगबोध के जिस आयाम पर सर्वाधिक नवगीत लिखे गये हैं। वह है– आर्थिक बोध। लगभग प्रत्येक नवगीतकार ने इस आर्थिक असमानता एवं इससे उत्पन्न समस्याओं पर खुलकर लिखा है। इस परिप्रेक्ष्य में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवयव है कि इस पर लिखते समय नवगीतकारों ने बहुत ही कठोर एवं आक्रोशपूर्ण नवगीत लिखे हैं। अपनी भाषा, लय, शिल्प में विद्रोह के भाव बनाये हैं।

भारत के राजनीतिक परिदृश्य में 21वीं सदी में कुछ महत्वपूर्ण कारक उभरकर आये हैं। जिनमें प्रमुख हैं– राज्यों में विभिन्न क्षेत्रीय दलों का दबदबा, केन्द्र में संयुक्त सरकारों का शासन, राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि के नेताओं की संख्या बढ़ना, दलबदल की बढ़ती संख्या, राजनीतिक मूल्यों का पतन, देशहित से पूर्व स्वहित की आकांक्षा, परिवारवाद का बढ़ना। इन सभी कारकों के कारण

राजनीतिक परिदृश्य में, राजनीतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलने लगा है। राजनेताओं में स्वार्थपरकता का विकास, नेता–नौकरशाही गठबंधन के माध्यम से भ्रष्टाचार। नवगीतों में इन सभी परिस्थितियों और उनसे उत्पन्न होने वाले परिणामों का वर्णन है। नवगीतकारों ने राजनैतिक परिदृश्य में आने वाले इन परिवर्तनों को, बहुत ही व्यंग्यात्मक ढंग से अपने नवगीतों में व्यक्त किया है। जिस प्रकार के व्यंग्यात्मक शब्दावली का प्रयोग नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में किया है, उसके कारण नवगीतों में राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन आ जाता है। कुछ स्थानों पर इसमें अधिकता नजर आती है, परन्तु यह नगण्य है। इस अधिकता का कारण, नवगीतकारों के द्वारा अपनी राजनैतिक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता प्रतीत होता है। इसके उपरान्त भी, नवगीतकार अपने नवगीतों के माध्यम से नेताओं पर व्यंग्य के माध्यम से चोट करने के साथ ही, आमजन को सचेत करने में सफल रहे हैं।

20वीं सदी का प्रारम्भिक दौर ग्रामीण संस्कृति का परिचायक रहा है, परन्तु धीरे–धीरे बढ़ते औद्योगीकरण, ने शहरी संस्कृति को बढ़ावा देने में सहायता की। 1991 में भारत सरकार को द्वारा निजीकरण, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण (जिन्हें हम LPG रिफॉर्म के नाम से भी जानते हैं।) की समर्थक नितियाँ बनाने से, ग्रामीण इलाकों से शहरी इलाकों में पलायन में तीव्रता आई। 21वीं सदी के प्रारम्भ होने तक यह एक स्थापित प्रक्रिया हो गई थी। 20वीं सदी के नवगीतों में ग्रामीण संस्कृति का वर्णन प्रचुरता से है। 21वीं सदी के नवगीतों में मूलतः ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति का तुलनात्मक वर्णन अधिक है। अधिकांश नवगीतकार ग्रामीण पृष्ठभूमि से आये हैं। (वर्तमान में यह स्थिति बदल रही है।) ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति के तुलनात्मक वर्णन में नवगीतकारों ने, ग्रामीण संस्कृति के अच्छे पक्षों का वर्णन बहुतायत में किया है। यह अतिश्योक्ति भी नहीं है, परन्तु इस कारण से नवगीतकार शहरी संस्कृति के गुणों को, अपने नवगीतों में पर्याप्त स्थान नहीं दे पाये हैं। शहरी संस्कृति के अच्छे पक्षों पर अभी और कार्य किया जाना चाहिए। शहरी संस्कृति के अवगुणों पर प्रचुर नवगीत लिखे जा रहे हैं, साथ ही वर्तमान परिस्थितियों के कारण ग्रामीण सांस्कृतिक मूल्यों में जो पतन देखा जा रहा है, उस पर भी नवगीतकारों ने अपनी कलम चलाई है। सांस्कृतिक बोध के जिस एक आयाम को, नवगीतकारों ने सबसे अच्छे

ढंग से व्यक्त करने में सफलता पाई है, वह सांस्कृतिक संक्रमण के कारण होने वाली पीड़ा का वर्णन है। अपने संस्कार को छोड़कर, नये माहौल में सामंजस्य बिठाने की पीड़ा, पलायन के कारण उत्पन्न स्थितियाँ, शहरी संस्कृति में ग्रामीण सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने की छटपटाहट, का जैसा सजीव वर्णन नवगीतों में मिलता है, वह इस विधा की परिपूर्णता का द्योतक है।

प्रकृति एवं नवगीतों का रिश्ता इतना मजबूत है कि प्रारम्भ में यह एक–दूसरे के पूरक प्रतीत होते थे, प्राकृतिक वर्णन नवगीतों में सदैव से रहा है। 20वीं सदी के प्राकृतिक वर्णन में प्राकृतिक सुन्दरता, मोहक दृश्य, ऋतु वर्णन प्रमुखता से रहे हैं। 21वीं सदी में प्रकृति को देखने, समझने एवं मानव–प्रकृति के आयामों में प्रदूषण, मानव–वन्य जीव टकराव, अवैज्ञानिक दोहन, ओजोन क्षरण, हरित गैसे, बढ़ता तापमान, घटते जल स्तर का वर्णन होने लगा है। नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में प्राकृतिक परिदृश्य में आ रहे इन परिवर्तनों को अपने नवगीतों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है, परन्तु इन कारकों की भयावहता के सामने यह वर्णन कम है। इस विषय में आमजन को जागरूक करने में, प्रकृति का अवैज्ञानिक दोहन रोकने एवं संतुलित विकास की अवधारणा को विकसित करने में नवगीत महत्वपूर्ण साबित हो सकते हैं; अतः नवगीतकारों को इन आयामों पर अधिक लेखन की आवश्यकता है।

युगीन परिस्थितियों में जो परिवर्तन आते हैं, उनसे साहित्यकार और उनके द्वारा रचित साहित्य भी प्रभावित होता है। साहित्यक बोध से कटकर लिखा गया साहित्य, श्रेष्ठ साहित्य नहीं हो सकता। वर्तमान युगीन परिस्थितियों में नवगीतों की कथ्य योजना को सर्वाधिक प्रभावित किया है। अव नवगीतों में कथ्य के रूप में आमजन का जीवन संघर्ष, पर्यावरणीय संकट, सांस्कृतिक संक्रमण के कारण उत्पन्न स्थितियाँ प्रमुखता से आती है। नवगीतों में नये–नये बिम्ब एवं प्रतीकों का प्रयोग होने लगा है। भाषा के स्तर पर नये शब्दों का चयन, अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग भी होने लगा है। इन सबके प्रयोग से; नवगीतकारों ने वर्तमान समय में नवगीत को प्रासंगिक बनाये रखने में सफलता पाई है।

21वीं सदी में लिखे जा रहे नवगीतों को हिन्दी साहित्य परमपरा में महत्वपूर्ण स्थान मिलने का एक प्रमुख कारण है, नवगीतकारों के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न समस्याओं के साथ ही, उनके समाधानों को भी अपने नवगीतों में व्यक्त किया है। साहित्यकार अपने साहित्य में किसी पात्र, परिस्थिति, वाक्य आदि के माध्यम से समाधान की ओर इशारा करता है। नवगीतकारों ने अपने द्वारा रचित नवगीतों में इनका बड़ी सफलता से प्रयोग किया है। यह अत्यन्त आवश्यक भी है और यह कारक नवगीतों को अन्य विधाओं से श्रेष्ठता भी प्रदान करता है। इस प्रवृत्ति से यह भी स्पष्ट होता है कि नवगीतकार अपने नवगीतों की निर्माण प्रक्रिया के दौरान सकारात्मक सोच के साथ कार्य निष्पादन करते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण यह प्रमाणित करता है कि 21वीं सदी में लिखे जा रहे नवगीत, कुछ सूक्ष्म आयामों को छोड़कर, पूर्णतः वर्तमान युगबोध को व्यक्त करने में सफल हो रहे हैं। इस प्रक्रिया के दौरान कुछ ऐसे कारक भी दृष्टव्य होते है, जिनसे भविष्य में नवगीत को नुकसान हो सकता है। ऐसे बिन्दु वर्तमान में नगण्य है, परन्तु यदि ये बढ़ते रहे तो निश्चित रूप से नवगीत के लिए हानिकारक हो सकते हैं। यथार्थ वर्णन नवगीत की प्रमुख विशेषता है, परन्तु इसकी वजह से कुछ स्थानों पर नवगीतकार अतियथार्थ की ओर बढ़ जाते हैं। नवगीतकारों को इससे बचना होगा। नवगीत किसी घटना, परिस्थिति का टेलीविजन या रेडियो पर प्रसारित होने वाला सजीव कार्यक्रम नहीं है, अपितु साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। अतः यथार्थ वर्णन के समय नवगीतकार यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न करे कि वहाँ साहित्यिक मर्यादाओं का उल्लंघनन न हो।

वर्तमान में नवगीतकारों के द्वारा रचित नवगीतों में, राजनैतिक प्रतिबद्धता का प्रचलन बढ़ता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। नवगीतकार भी लोकतंत्र का भाग होते हैं और वह अपनी राजनैतिक विचारधारा को चुन सकते है, परन्तु वह यह भी सुनिश्चित करें कि इसका प्रभाव उनके द्वारा लिखे जा रहे नवगीतों पर न आये। नवगीत विधा का सर्वाधिक नुकसान करने वाला कारक; राजनीतिक प्रतिबद्धता ही

है। इसके कारण खेमेबाजी बढ़ती है। आरोप–प्रत्यारोप लगते हैं। साहित्य के स्थान पर विचारधारा महत्वपूर्ण हो जाती है। नवगीत के अच्छे भविष्य के लिए इससे बचना आवश्यक है। इस प्रतिबद्धता के कारण ही साहित्य में अनेक आन्दोलनों यथा– अगीत, प्रगतिवाद आदि की समाप्ति हो गई।

नई कविता एवं नवगीत के मध्य अन्तर को स्पष्ट करना हो तो, वह है छन्दशास्त्र। नई कविता 'मुक्त छन्द' के नाम का प्रयोग करके, कब 'छन्द मुक्त' हो गई, यह स्वयं उसके रचियताओं को भी नहीं ज्ञात है। नवगीता का आधार ही छन्द है। 21वीं सदी के नवगीतों में छन्द में छुट लेने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है, अब नवगीतकार लय को महत्व देने लगे हैं। यह प्रवृत्ति इस विधा के लिए घातक साबित हो सकती है। युगीन परिस्थितियों एवं उनसे उभरे युगबोध को व्यक्त करने पर कुछ स्थानों पर मात्रात्मक छुट लेना स्वीकार्य है, परन्तु इस आधार पर छन्दों के प्रयोग में ही अस्पष्टता लाना गलत है। युवा नवगीतकारों का इससे बचना आवश्यक है। मनुष्य जीवन ही साहित्य का विषय है और साहित्य जीवन के ही विभिन्न आयामों को व्यक्त करता है। साहित्य और युगबोध का सीधा सम्बंध होता है। जो साहित्यकार अपने युगबोध में आने वाले परिवर्तनों को अपने साहित्य में समाहित नहीं करता है, वह श्रेष्ठ एवं कालजयी साहित्य की रचना नहीं कर सकता है।

नवगीतकारों ने इस सत्य को भली–भांति जानकर ही अपने नवगीतों की रचना की है। नवगीतों की रचना करते हुए उन्होंने पूर्ण रूप से संवेदनशील एवं सचेत होकर लेखन किया है। उन्होंने अपने समय की समस्याओं के साथ ही इस समयकाल की आवश्यकताओं का भी वर्णन किया है। यही कारण है कि उनके नवगीतों में युगबोध के स्पष्ट दर्शन होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के नवगीत अपने समयकाल के युगबोध को व्यक्त करने में सफल रहे हैं।

उपलब्धियाँ –

शोध कार्य के उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु, आलोचनात्मक, तुलनात्मक और सर्वेक्षण (प्रश्नावली) आदि शोध प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। इससे शोधकार्य की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ/निष्कर्ष प्राप्त हो पाये हैं। सर्वप्रथम नवगीत पर लगने वाले आरोप कि यह विधा वर्तमान परिस्थितियों को व्यक्त करने में सक्षम नहीं है, इस शोध कार्य के द्वारा उसका खण्डन होता है। साथ ही शोध कार्य के निष्कर्षों से यह भी स्थापित होता है कि नवगीत विधा में अपने समय के युगबोध से जुड़कर लेखन हो रहा है। नवगीतकारों ने अपने नवगीतों में युगबोध के विभिन्न आयामों को स्थान दिया है। इस शोध कार्य में समग्रता से नवगीतकारों को सम्मिलित करते हुए, नवगीत विधा के कथ्य एवं शिल्प को उजागर करने में सफलता प्राप्त हुई है। 21वीं सदी के नवगीतों में व्याप्त समसामयिकता को, व्यक्त करने में भी इस शोध कार्य द्वारा सहायता प्राप्त हुई है। शोध कार्य के एक महत्वपूर्ण उद्देश्य, समसामयिक समस्याओं के निराकरण से सम्बन्धित बिन्दुओं को भी इस शोध कार्य द्वारा उजागर किया है।

शोध कार्य में नवगीतकारों के समक्ष भविष्य में जिन क्षेत्रों में अधिक कार्य करने की आवश्यकता है, उनकों भी उजागर किया गया है। साथ ही राजनैतिक प्रतिबद्धता, कलिष्ट भाषाई शब्दावली, अधिक लेखन के प्रयास में, स्तर में गिरावट के प्रति भी नवगीतकारों को सजग करने का प्रयास शोध कार्य में किया गया है। शोध के उद्देश्यों को समक्ष रखते हुए, नवीन निष्कर्षों को प्राप्त किया गया है।

संभावनाएँ –

वर्तमान नवगीतों पर शोध कार्य द्वारा भविष्य में, जिन विषयों पर शोध कार्य हो सकता है, वह निम्नलिखित है –

- 21वीं सदी के गीतों एवं नवगीतों का तुलनात्मक अध्ययन
- 21वीं सदी की महिला नवगीतकारों की रचनाधर्मिता
- 20वीं एवं 21वीं सदी के नवगीतों का तुलनात्मक अध्ययन
- नवगीत आलोचना के प्रतिमान
- नवगीतों में सामाजिक चेतना
- लोकगीत एवं नवगीतों का तुलनात्मक अध्ययन
- नवगीतों में बदलते मानवीय मूल्य
- 21वीं सदी का नवगीत साहित्य स्वरूप
- हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन में नवगीत
- वर्तमान विमर्श परम्परा एवं नवगीत

संदर्भ सूची

1. आधार ग्रंथ :–

1. अष्ठाना, मधुकर. *'खाली हाथ कबीर'* गुंजन प्रकाशन. 2017
2. कौशिक, माधव. *'जोखिम भरा समय है.'* सामयिक बुक्स. 2016
3. गम्भीर, गणेश. *'संवत बदले.'* अंजुमन प्रकाशन. 2016
4. तिवारी, माहेश्वर. *'नदी का अकेलापन.'* आर्य बुक डिपो. द्वितीय संस्करण, 2013
5. नचिकेता. *'सच कहा तुमने.'* बस्ट बुक बड्डीज टेक्नोलोजी प्रा. लि. 2019
6. पाठक, डॉ. अजय. *'मन–बंजारा.'* वैभव प्रकाशन. 2013
7. रविन्द्र, कुमार. *'हम खड़े एकांत में'*: लोकोदय प्रकाशन. 2019
8. राठौर, यशोधरा. *'जैसे धूप हंसती है.'* किताब पब्लिकेशन. 2009
9. शर्मा, रामसनेही लाल. *'झील अनबुझी प्यास की'*. उत्तरायण प्रकाशन. 2016
10. सिंह, डॉ. ओमप्रकाश. *'तंग जड़ों में होंगे अंकुर.'* नमन प्रकाशन. 2019
11. मालवीय, यश. *'समय लकड़हारा'*. अंजुमन प्रकाशन. 2016
12. मिश्र, विनय. *'समय की आँख नम है.'* बोधि प्रकाशन. 2014
13. श्रीवास्तव, अवध बिहारी. *'बस्ती के भीतर'*. अनुभव प्रकाशन. 2017
14. त्रिपाठी, अवनीश. *'दिन कटे हैं धूप चुनते.'* बस्ट बुक बडडीज प्रा. लि. 2019
15. श्रीवास्तव, बृजनाथ. *'रथ इधर मोड़िये.'* मानसरोवर प्रकाशन. 2013

2. संदर्भ ग्रंथ :–

1. अष्ठाना, मधुकर. ''नवगीत संरचना एवं संप्रेषण.'' '*नवगीत के विविध आयाम*' सम्पा. मधुकर अष्ठाना. लोकोदय प्रकाशन. 2018 पृ. 7–22
2. अष्ठाना, मधुकर. ''समकालीनता का पर्याय : नवगीत.'' '*नवगीत नई दस्तकें*.' सम्पा. निर्मल शुक्ल. उत्तरायण प्रकाशन. 2009. पृ. 11–20
3. आस्तिक, विरेन्द्र. ''साधना का नटीय आचरण.'' '*धार पर हम (दो)*.' सम्पा. विरेन्द्र आस्तिक. कल्पना प्रकाशन. 2010 पृ. 19–54
4. आस्तिक, वीरेन्द्र. '*नवगीत समीक्षा के नए आयाम*. के. के. पब्लिकेशन. नई दिल्ली. 2018
5. इन्दीवर. '*नवगीत का दस्तावेज*.' विजय मन्दिर प्रकाशन. 2017
6. कुमार, देवेन्द्र. ''शब्दपदी : साहित्यकारों की दृष्टि में.'' '*शब्दपदी*.' सम्पा. निर्मल शुक्ल. उत्तरायण प्रकाशन. 2006 पृ. 10–11
7. कौशिक, माधव. '*नवगीत की विकास यात्रा*.' हरियाणा साहित्य अकादमी. 2007
8. गणेशन, एस.एन. '*अनुसंधान प्रविधि सिद्धान्त और प्रक्रिया*'. लोकभारती प्रकाशन. प्रयागराज. 2019
9. गुप्ता, एम.एल. और शर्मा, डी.डी. '*समाजशास्त्र का परिचय*.' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स. आगरा. 2012
10. गुप्ता, एम.एल. और शर्मा, डी.डी. '*भारत में समाज*.' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स. 2012
11. गौतम, राजेन्द्र. ''समकालीन कविता के समग्र मूल्यांकन का प्रश्न और नवगीत.'' '*नवगीत के विविध आयाम*.' सम्पा. मधुकर अष्ठाना. लोकोदय प्रकाशन. 2018 पृ. 127–134
12. तिवारी, माहेश्वर. ''दृष्टिकोण.'' '*शब्दायन दृष्टिकोण एवं प्रतिनिधि*.' सम्पा. निर्मल शुक्ल. उत्तराण प्रकाशन. 2012 पृ. 29–30

13. दिनकर, रामधारी सिंह. *'संस्कृति के चार अध्याय.'* लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा पेपरबैक संस्करण. 2019

14. नचिकेता, ''समकालीन गीत की विकास यात्रा.'' *'समकालीन गीतकोश.'* सम्पा. नचिकेता. उद्भावना प्रकाशन. 2017 पृ. 13–94

15. निर्विरोध, तारादत्त. ''दृष्टिकोण.'' *'शब्दायन दृष्टिकोण एवं प्रतिनिधि.'* सम्पा. निर्मल शुक्ल. उत्तराण प्रकाशन. 2012 पृ. 62–65

16. निराला. ''तीन गीत.'' *'पाँच जोड़ बाँसुरी.'* सम्पा. चन्द्रदेव सिंह. भारतीय ज्ञानपीठ. पुननर्वा संस्करण. 2003 पृ. 23–25

17. पाण्डेय, अनिल कुमार. *'नवगीत साहित्य का यथार्थ.'* के. एल. पचौरी प्रकाशन. 2017

18. वर्मा, एस.एल. *'राजनीति विज्ञान में अनुसंधान'.* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. जयपुर. नवां संस्करण. 2014

19. वर्मा, हरिश्चन्द्र. *'शोध–प्रविधि.'* हरियाणा ग्रन्थ अकादमी. पंचकुला. 2018

20. रवीन्द्र, कुमार. ''नवगीत : विकास के सोपान एवं संभावनाएं'.' *'नवगीत के विविध आयाम.'* सम्पा. मधुकर अष्ठाना. लोकोदय प्रकाशन. 2018 पृ. 34–51

21. शर्मा, राम सनेही लाल. ''नई कविता और नवगीत.'' *'नवगीत के विविध आयाम.'* सम्पा. मधुकर अष्ठाना. लोकोदय प्रकाशन. 2018 पृ. 217–224

22. शर्मा, रामसनेही लाल. *'नवगीत : नये सन्दर्भ.'* ईशिका बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स. 2016

23. शर्मा, विजयमोहन. *'शोध–प्रविधि'.* नेशनल पेपरबैक्स. नयी दिल्ली. तीसरा संस्करण. 2018

24. शर्मा. सत्येन्द्र. *'नवगीत संवेदना और शिल्प.'* आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान. दिल्ली. 2019.

25. शुक्ल, निर्मल. ''शाश्वत शब्दपदी.'' *'शब्दायन दृष्टिकोण एवं प्रतिनिधि.'* सम्पा. निर्मल शुक्ल. उत्तराण प्रकाशन. 2012 पृ. 13–18

26. साहा, मधुसुदन. ''नवगीत में प्रतीक बिंब योजना.'' *'नवगीत के विविध आयाम'* सम्पा. मधुकर अष्ठाना. लोकोदय प्रकाशन. 2018 पृ. 198–211
27. सिंह, गुलाब. ''दृष्टिकोण.'' *'शब्दायन दृष्टिकोण एवं प्रतिनिधि.'* सम्पा. निर्मल शुक्ल. उत्तराण प्रकाशन. 2012 पृ. 41–43
28. सत्यनारायण. *'सुनें प्रजाजन'.* समय प्रकाशन. पटना. 2011.
29. (सं) शर्मा, रामकिशोर. *'मीराँबाई की सम्पूर्ण पदावली'.* लोकभारती प्रकाशन. प्रयागराज. तृतीय–संस्करण. 2020.
30. सिंह, गुलाब. ''नवगीत और उसका शिल्प.'' *'नवगीत के विविध आयाम.'* सम्पा. मधुकर अष्ठाना. लोकोदय प्रकाशन. 2018 पृ. 142–152
31. सिंह, चन्द्रदेव. ''प्रस्तुत संकलन और गीत प्रयोग.'' *'पाँच जोड़ बाँसुरी.'* सम्पा. चन्द्रदेव सिंह. भारतीय ज्ञानपीठ. पुननर्वा संस्करण. 2003 पृ. 7–18
32. सिंहल, बैजनाथ. *'शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि.'* वाणी प्रकाशन. तृतीय संस्करण. 2008. पृ. 124
33. श्रीवास्तव, बृजनाथ. ''नवगीत में युगबोध दर्शन.'' *'नवगीत के विविध आयाम.'* सम्पा. मधुकर अष्ठाना. लोकोदय प्रकाशन. 2018 पृ. 225–233
34. श्रीवास्तव, अमरनाथ. ''शब्दपदी : साहित्यकारों की दृष्टि में.'' *'शब्दपदी.'* सम्पा. निर्मल शुक्ल. उत्तरायण प्रकाशन. 2006 पृ. 12
35. त्रिवेदी, आर.एन. डी.पी. शुक्ला, "रिसर्च मैथ्डोलॉजी". कॉलेज बुक डिपो. जयपुर. 2018
36. त्रिवेदी, आर.एन. डी.पी. शुक्ला, *'रिसर्च मैथ्डोलॉजी'.* कॉलेज बुक डिपो. जयपुर. 2018. पृ. 394

3. कोश ग्रन्थ

3.1 हिंदी भाषा के कोश ग्रन्थ

1. प्रसाद, कालिका. *'बृहत हिन्दी कोश'*. ज्ञानमंडल प्रकाशन. नई दिल्ली. 2014.
2. नवलजी. *'नालन्दा विशाल शब्द सागर'*. अदिशा बुक डीपो. दिल्ली. 2012. बाहरी, हरदेव. *'राजपाल हिंदी शब्दकोश'*. राजपाल प्रकाशन. नई दिल्ली. 2013.

3.2 अंग्रेजी भाषा के कोश ग्रन्थ

1. Lal, Ram Narain. *'The Student's Practical Dictionary'*. Forgotten Books. London. 2018.
2. Kumar, Suresh. '*Oxford English-English-Hindi Dictionary'*. Oxford University Press, Oxford. 2nd Edition. 2016.

पत्र–पत्रिकाएँ –

1. अनुगुंजन, (नवगीत अंक) जुलाई–सितम्बर 2016
2. साहित्य त्रिवेणी, (नवगीत, विशेषांक) जनवरी–मार्च, 2018
3. हिन्दुस्तान, (हिन्दी दैनिक) 12 सितम्बर, 2018
4. वीणा (नवगीत विशेषांक) जनवरी 2021
5. Commitment to Reducing Inequality (CRI) Index, Oxfam International's report. 2018

इंटरनेट

1. www.drishtiias.com
2. www.who.int

परिशिष्ट

साक्षात्कार –

1. विनय मिश्र
2. मुकुट सक्सेना
3. कुमार शिव

प्रश्नावली

1. रामसनेही लाल शर्मा 2. अवध बिहारी श्रीवास्तव 3. भावना तिवारी 4. अजय पाठक 5. गणेश गंभीर 6. जयशंकर शुक्ल 7. ओमप्रकाश तिवारी 8. रंजना गुप्ता 9. रवि शंकर 10. मधुकर अष्ठाना 11. विरेन्द्र आस्तिक 12. शिवानन्द सिंह सहयोगी 13. शीला पाण्डेय 14. संजीव शर्मा 'सलील' 15. राधेश्याम 'बंधु' 16. राजा अवस्थी 17. प्रभा दीक्षित 18. इंदिरा मोहन 19. गुलाब सिंह 20. गिरी मोहन गुरु 21. भगवत दुबे 22. अविनाश ब्यौवार 23. छाया सक्सेना 24. राधेश्याम शुक्ल 25. बसंत शर्मा 26. माणिक विश्वकर्मा 27. जयकृष्ण तुषार 28. अश्वघोष 29. उदयशंकर 'उदय' 30. विवेक आस्तिक 31. जयकुमार 'जलज' 32. विनोद निगम 33. सुरेन्द्र वाजपेयी 34. रामकृष्ण 35. शिव ओम अंबर 36. प्रदीप कांत 37. मृदुल शर्मा 38. आशीष दशोन्तर 39. उत्कर्ष अग्निहोत्री 40. अनीता सिंह 41. जयप्रकाश श्रीवास्तव 42. राजेन्द्र वर्मा 43. मधु गोयल 44. रवि शंकर पाण्डेय 45. उषा सक्सेना 46. मनोहर अभय 47. योगेन्द्र प्रताप मौर्य 48. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 49. भुवनेश्वर दुबे 50. पशुपति नाथ उपाध्याय 51. महेन्द्र नारायण 52. प्रभात 53. अवधेश कुमार 54. ईश्वरी प्रसाद 55. आचार्य देवेन्द्र देव 56. किशोर काबरा 57. कृष्ण कुमार 'नाज' 58 कृष्ण भारतीय 59. गोपाल भट्ट 60. बृजेन्द्र कौशिक 61. यादराम शर्मा 62. राजेन्द्र निशेश 63. रामवतार सिंह 64. विजय राठौर 65. सुरेन्द्र श्लेष 66. सुरेश कुमार पण्डा 67. हृदयेश्वर त्रिपाठी 68 मीना शुक्ला 69. ओम धीरज 70. रमेश गौतम

ISSN : 2455-4219

विचार
↓
चिंतन
↓
शोध सृजन

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष-4 अंक-14 अप्रैल-जून, 2019

संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

प्रबंध-संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

सह-संपादक
डॉ० अमित दूबे, श्री सुधीर कुमार तिवारी

विषयानुक्रमणिका

1. संस्कृतसाहित्ये मानवाधिकाराय न्यायदण्डस्य च वैधानिकता 1-3
डॉ. सुमन कुमारी

2. भारतीयास्तिकदर्शनेष्वीश्वरविचारः 4-7
डॉ. सुजाता पटेल

3. कुटिललिपि में अंकों का विकास एवं अंक-चिह्न 8-15
डॉ. अमित दूबे

4. 'ज्यों मेंहदी का रंग' उपन्यास में दिव्यांग-विमर्श 16-18
सनोज पी. आर.

5. उत्तर-आधुनिक परिदृश्य और निर्मल वर्मा का साहित्य 19-22
डॉ. बीना जैन

6. भारतीय साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की भूमिका 23-26
डॉ. दिनेश साहू

7. वृन्दावनलाल वर्मा जी के उपन्यासों में नारी 27-31
अंजना मिश्रा

8. 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में दलित समाज (दगैल, मगहर की सुबह, तर्पण...) 32-35
रेखा रानी एवं डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय

9. हिन्दी नवगीतों में पर्यावरण बोध 36-41
संजय सिंह यादव एवं डॉ. विनोद कुमार

10. 'यही सच है' का फिल्मांकन : नारी मन का अन्तर्द्वन्द्व 42-45
विनोद कुमार शुक्ल

11. भारत में ब्रिटिश शासन और 'चाँद' का फाँसी अंक 46-49
डॉ. दीप कुमार मित्तल

12. भूमि-अधिग्रहण के परिणामतः विस्थापन से बैगा जनजाति समुदाय... 50-55
डॉ. श्रद्धा गिरोलकर एवं मुकेश्वर सोनवानी

13. 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' और 'सोने की पत्नी' कहानी का सांस्कृतिक... 56-59
जगदीश मौर्य

14. अमृतलाल नागर जी के उपन्यासों में महानगरीय परिवेश 60-62
दिव्या

15. स्त्री-विमर्श के स्वरूप की परिधि में स्त्री 63-66
दिलीप कुमार

16. ऐतिहासिक बोध की दृष्टि से 'मानस का हंस' 67-68
पूनम देवी

ISSN 0975-119X

UGC-CARE GROUP I LISTED

वर्ष 13 अंक 1 जनवरी-फरवरी 2021

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

India's Leading Referred Hindi Language Journal

IMPACT FACTOR : 5.051

भारत में संसदीय गरिमा का अवमूल्यन–महेश कुमार 1256
प्रधानमंत्री मोदी के तहत भारतीय विदेश नीति: निरंतरता और परिवर्तन–डॉ० जय कुमार झा 1259
मानव जीवन में भावनात्मक और संवेगात्मक मनोविज्ञान से जुड़े तथ्यों एवं सिद्धांतो की महत्ता: समीक्षा –डॉ० जया भारती; डॉ० संदीप कुमार वर्मा 1262
भारत में जल संसाधन एवं जल संरक्षण की परम्परागत विधियों का शोधपरक अध्ययन–कविता 1266
मानवाधिकार : साहित्य की समग्र दृष्टि–डॉ० रूपेश कुमार चौहान 1271
निधर्नता उन्मूलन में मनरेगा कार्यक्रम की भूमिका : अनुसूचित जातियों के विशेष सन्दर्भ में–डॉ० प्रियंका एन० रूवाली; उपमा द्विवेदी 1275
''उच्च शिक्षा स्तर पर महाविद्यालयी शिक्षा में ई-लर्निंग की प्रभावशीलता का अध्ययन''–प्रीति शर्मा; डॉ० मंजू शर्मा 1279
युवा एवं पंचायती राज संस्थाओं का शिक्षा और महिलाओं के सामाजिक विकास में भूमिका–श्वेता पांडेय; डॉ० मंजू शर्मा 1283
भारतीय राष्ट्रीय जागरण में स्वामी दयानन्द का योगदान–विकास 1287
आजादी के बाद के भारत में महिलाओं की स्थिति–डॉ० अनिल कुमार तेवतिया 1290
टेलीविजन संस्कृति और सामाजिक प्रतिबद्धता के अंतर्विरोध–डॉ० मधु लोमेश 1295
प्रगतिशील समाज में अवरोधित महिला शिक्षा–प्रो० (डॉ०) मंजू शर्मा; रुकमणी हसवाल 1298
विवेकी राय कृत उपन्यास शवेत-पत्र: एक ऐतिहासिक दस्तावेज–विभा रीन 1303
हिन्दी गद्य साहित्य में महिला लेखन का महत्त्व–प्रो० (डॉ०) शिव शंकर मंडल 1306
सुशासन की अवधारणा एवं व्यवहार : भारतीय शासन व्यवस्था के विशेष संदर्भ में–डॉ० सत्येन्द्र कुमार 1309
ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन एवं विकास में पंचायतराज की भूमिका–डॉ० जयराम बैरवा 1312
प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा का महत्व–डॉ० विनय कुमार मिश्र 1317
अनामिका के उपन्यासों में स्त्री-जीवन की अभिव्यक्ति–स्वर्णिम शिप्रा 1322
पूर्वमध्यकाल में जातीय प्रगुणन–प्रवीण पाण्डेय 1326
पश्चिमी राजस्थान की हस्तशिल्प कला का संग्रहालयों में योगदान–अजीत राम चौधारी; डॉ० महेन्द्र चौधरी 1329
भारत में सामाजिक न्याय के निर्वचनकर्ता के रूप में मानव जीवन के विकासात्मक पहलुओं पर सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका –असीम कुमार शर्मा 1332
भारतीय साहित्य की एकता में बाधक तत्व–डॉ० नवनाथ सर्जेराव शिंदे 1336
पं. दीनदयाल उपाध्याय का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद–डॉ० हरबंस सिंह 1339
क्षेत्रीय विकास, सतत विकास एवं राजनीति - उत्तराखण्ड के लोगो के जनजीवन के विशेष संदर्भ में–सुनील सिंह 1341
किशोर छात्र-छात्राओं की चिंता का उनके कॅरियर के प्रति निर्णय क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन –महेन्द्र कुमार; डॉ० जीतेन्द्र प्रताप 1346
पर्यावरण का सामाजिक पक्ष और केदारनाथ सिंह की कविताएं–डॉ० पूर्णिमा आर 1352
सतनामी संप्रदाय और बाबा जगजीवन दास–डॉ० अनिता सिंह 1356
ऑनलाइन एवं ऑफलाइन खरीददारी में उपभोक्ता संतुष्टि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन (बिलासपुर शहर के उपभोक्ताओं के विशेष संदर्भ में)–डॉ० अनामिका तिवारी; अंकिता पाण्डेय 1360
समकालीन विमर्शों के समक्ष चुनौतियाँ–संजय सिंह यादव; डॉ० विनोद कुमार 1374
स्वामी सुन्दरानन्द जी : निम के प्रथम विद्यार्थी–गीता आर्या 1377
दार्शनिक चिन्तन की प्रक्रिया – मूल्यान्वेषण या सत्यान्वेषण–डॉ० रेखा ओझा 1381
इच्छाशक्ति और संघर्ष की दास्तान ('मुर्दहिया' के संदर्भ में)–डॉ० विलास अंबादास सालुंके 1386
हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श–डॉ० दायक राम 1388
भारत में मातृभाषा का महत्व एवं चुनौती : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० सोनू कुमार 1392
भारत में किसानों का दशा एवं दिशा : एक अध्ययन–डॉ० राकेश रंजन 1396
छत्तीसगढ़, पर्यटन और नक्सलवाद–डॉ० काजल मोइत्रा; डॉ० रत्नेश कुमार खन्ना; रेखा शुक्ला 1401
दलित महिलाओं के शोषण के विभिन्न आयाम : एक ऐतिहासिक अध्ययन–कुमारी संगीता कुशवाहा 1405
भारत में महिलाओं को प्रदत्त संवैधानिक अधिकार (सैद्धांतिक व व्यावहारिक विश्लेषण)–आशा नागर 1408

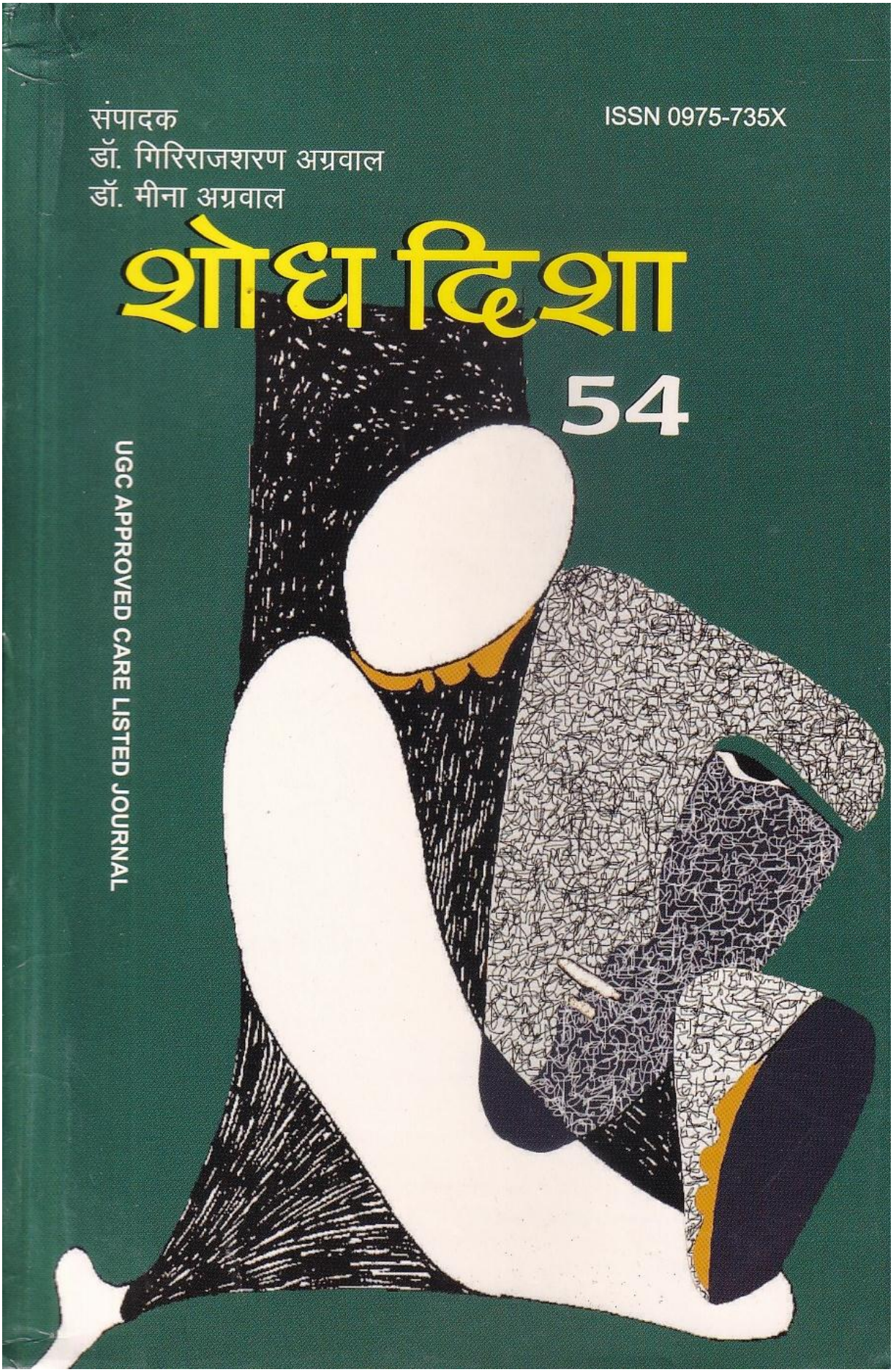
संपादक
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल
ISSN 0975-735X
शोध दिशा
54
UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

भारतीय संविधान भारतीय लोकतंत्र का सच्चा प्रहरी : एक आधार स्तंभ/ **रीना यादव** 140
उदयप्रकाश की कहानियों में आर्थिक अभाव में जूझता मध्यमवर्ग/ **रीतु, मृदुल जोशी** 146
साहित्य, संस्कृति और भाषा/ **गुर्रमकोंडा नीरजा** 151
नवगीत में स्त्री-विमर्श/ **संजय सिंह यादव, डॉ॰ विनोदकुमार** 155
महादेवी के काव्य में वेदनापरक अनुभूति/ **डॉ॰ सरिता** 161
मध्यकालीन मूल्य बनाम आधुनिक बोध/ **शिप्रा, डॉ॰ मृदुल जोशी** 165
हबीब तनवीर के रंगकर्म का लोकदर्शन/ **सुनील कुमार** 174
हिंदी बालसाहित्य में शोध (इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से अब तक)/ **डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम** 181
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी की मंचीय कविता में विकासोन्मुख गाँवों के बदलते परिदृश्य की अभिव्यंजना/**डॉ॰ अनिरुद्ध कुमार अवस्थी** 189
हिंदी उपन्यासों की मिथकीय चेतना के आलोक में नरेंद्र कोहली/ **दिलीपकुमार** 195
क्या इनको भी रेखांकित किया जा सकता है/ **डॉ॰ ईश्वर पंवार** 200
रवींद्र वर्मा के कथासाहित्य में चित्रित पात्रों की मानसिकता/ **डॉ॰ जयलक्ष्मी एफ॰ पाटील** 204
आचार्य रामचंद्र शुक्ल की समीक्षा दृष्टि/ **जितेन्द्रकुमार सिंह, डॉ॰ मृदुल जोशी** 208
दलित कविता में दलित स्त्री/ **डॉ॰ मंदाकिनी मीना** 213
सुदर्शन वशिष्ठ की कहानियों में लोकसंस्कृति/ **डॉ॰ प्रियंका** 218
तापसी : धार्मिक विद्रूपताओं का दस्तावेज/ **शिवानी, डॉ॰ मृदुल जोशी** 223
स्वरूप साम्यता (रागांग) ही राग वर्गीकरण का सैद्धांतिक आधार/ **डॉ॰ शुचि तिवारी** 226
डॉ॰ धर्मवीर भारती के कथासाहित्य में युगबोध : विवेचनात्मक अध्ययन/ **सुधा गंगवार, डॉ॰ आर॰एस॰ मिश्रा** 232
कवि विजेंद्र की लोकधर्मी चेतना/ **डॉ॰ क्रांतिबोध, वीरेंद्र कुमार तिवारी** 236
डॉ॰ रामनिवास मानव के काव्य में शिल्प-सौंदर्य/ **परवीन कुमारी** 243
फणीश्वरनाथ रेणु के कथासाहित्य में प्रयुक्त शब्द-चित्र/ **दिगंत बोरा** 250
स्माल सिनेमा बनाम मालेगाँव का सिनेमा/ **डॉ॰ मनीषकुमार मिश्रा, डॉ॰ उषा आलोक दुबे** 256
कवयित्रियों के काव्य में चित्रित नारी-मन के विविध रंग/ **डॉ॰ जागीर नागर** 265
मनीषा कुलश्रेष्ठ और उनका कथा-संसार/ **सुनिता कुमारी, डॉ॰ विमलेश शर्मा** 273
भारत में मानवाधिकार और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की चुनौतियाँ/ **डौली** 277
लद्दाख के अनूठे प्रेमी और पारखी : प्रोफेसर प्रेमसिंह जीना/ **कुँवर डॉ॰ महाराणा प्रताप सिंह चौहान 'विद्रोही'** 282

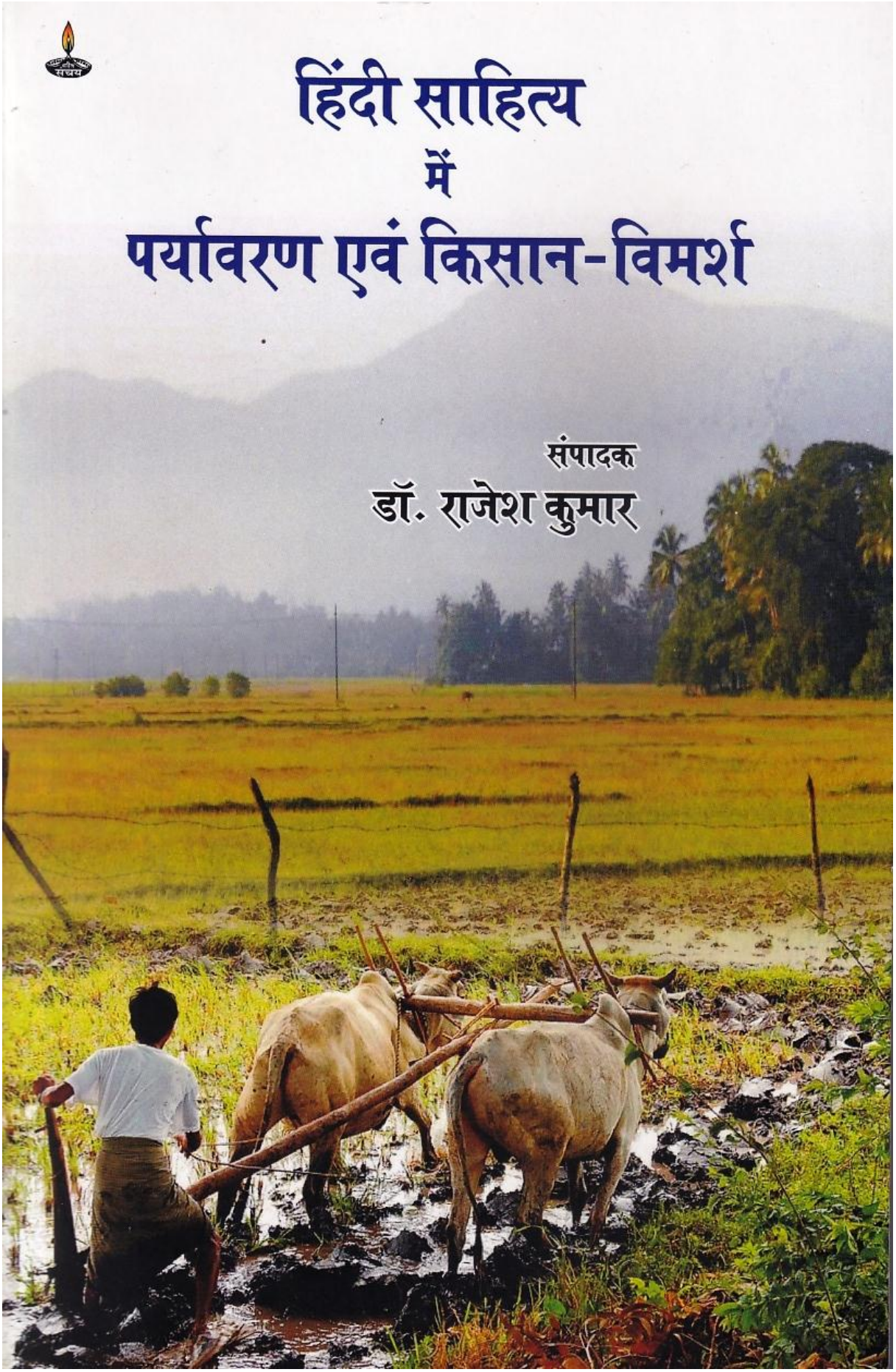
हिंदी साहित्य
में
पर्यावरण एवं किसान-विमर्श
संपादक
डॉ. राजेश कुमार

अनुक्रम

संपादकीय 3

1. भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की महत्ता और हिंदी साहित्य 7
डॉ. नवज्योत भनोत

2. हिंदी उपन्यासों में किसान तुलनात्मक अध्ययन 14
डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा

3. भारतीय उपन्यासों में किसान-चेतना
(छः बीघा जमीन और गोदान के विशेष संदर्भ में) 22
डॉ. ममता खांडल

4. हिंदी साहित्य में कृषि संस्कृति और किसानों से संबंधित चिंताएं 33
डॉ. ममता एच. शिरगंबी

5. भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय संवेदना 37
डॉ. मनीषा

6. तुलसी काव्य में पर्यावरण बोध 45
डॉ. महेंद्रपाल सिंह

7. भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण 54
डॉ. प्रवीण बाला

8. आधुनिक भारत में किसानों की दशा एवं आत्महत्या की स्थिति 60
डॉ. हरेंद्र कुमार

9. बलचनमा : किसान जीवन का संघर्ष 66
पिंकी कुमारी

10. भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की महत्ता और हिंदी साहित्य 70
प्रतीक्षा

11. हिंदी नवगीतों में ग्रामीण समाज व किसानों से संबंधित चिंताएँ 77
संजय सिंह यादव

12. हिंदी साहित्य में किसान-चेतना 85
कंचन कुमारी साहा

गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

Colonialism and Literature

उपनिवेशवाद और साहित्य

विषय पर हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित
अन्तर्राष्ट्रीय ई–संगोष्ठी

22-23 जनवरी 2021

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि संजय सिंह यादव पद शोधार्थी

संस्था LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

ने अन्तर्राष्ट्रीय ई–संगोष्ठी में सक्रिय भागीदारी दी एवं

उपनिवेशवाद और साहित्य

विषय पर पत्र प्रस्तोता के रूप अपनी भूमिका का निर्वाह किया।

हम इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं।

डॉ. राम गोपाल मीना	डॉ. मधु भारद्वाज	डॉ. उमेश कुमार राय	डॉ. अशोक कुमार मीना
संरक्षक एवं प्राचार्य	समन्वयक	संयोजक	आयोजन सचिव

Re-Accredited Grade 'B++'(CGPA:2.84) By NAAC (2017-2022) and Grade "A" by KCG(CGPA:3.02)

DR.VIRAMBHAI RAJABHAI GODHANIYA

COLLEGE OF ARTS, COMMERCE,HOME SCIENCE AND IT FOR GIRLS, PORBANDAR, GUJARAT

Managed by Shri Maldevji Odedra Smarak Trust

Website:drvrginstitute.org, Email: drvrgodhaniaihl@rediffmail.com

RG.NO.DVRGC/187

ONE DAY INTERNATIONAL SEMINAR (WEBINAR) ON

"प्रवासी मजदूरों की समस्या, चुनौतियाँ और समाधान"

CERTIFICATE

This is to certify that Mr./Ms./Prof./Dr. **Sanjay Singh Yadav (Research Scholar) of Lovely Professional University, Phagwara, Punjab** participated in the One Day International Seminar (Webinar) On **"प्रवासी मजदूरों की समस्या, चुनौतियाँ और समाधान"** Organized by "Hindi Department" of Dr.V.R.Godhaniya Girls College,Porbandar on 6th June 2020 and Presented paper entitled **"नवगीतों में प्रवासी मजदूरों की समस्याएं"**

Dr.M.N.Vaghela HOD Hindi Dep. Webinar Convener Dr.V.R.G.C. Porbandar ,Guj.	Dr.V.R.Godhaniya President Shri M.O.S.T. London, U.K.	Dr. Ratan Prakash Professor Hindi Dep. Ranchi University Ranchi,Jharkhand	Shrija Verma Engineer in Cisco systems New York , U.S.	Dr. Ketan Shah Inc-Principal Dr.V.R.G.C. Porbandar Gujarat

FDC- Reference No. 17

Date 25.09.2019

Faculty Development Centre

Under Pandit Madan Mohan Malaviya National Mission on Teachers and Teaching (PMMMNMTT),

Department of Higher Education, MHRD., Govt. of India.

GURU NANAK DEV UNIVERSITY, AMRITSAR

Ministry of Human Resource Development

MHRD

MHRD SPONSORED NATIONAL WORKSHOP

This is to certify that Dr./Mr./Ms. ***Sanjay Singh Yadav***

Designation ***Research Scholar*** *at* ***Deptt. of Hindi, School of Social Science and Languages***

affiliated to ***Lovely Professional University, Phagwara***

participated in National Interdisciplinary Workshop on साहित्य और जीवन–मूल्य *conducted from* ***19.09.2019*** *to* ***25.09.2019*** *at UGC-Human Resource Development Centre, GNDU, Amritsar.*

Project Coordinator

Course Coordinator

Vice-Chancellor

SSPGDAV/06/19-32

उत्कृष्ट शिक्षा के 60 वर्ष
(1958-2018)

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

हिन्दी विभाग

पी.जी.डी.ए.वी.कॉलेज (सांध्य)

नेहरू नगर, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110065

एवं

साहित्य संचय

सोनिया विहार, दिल्ली-110090

एक दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी

हिन्दी साहित्य और समकालीन विमर्श

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री/श्री : संजय सिंह यादव

ने पी.जी.डी.ए.वी.कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली एवं साहित्य संचय, दिल्ली, द्वारा 6 फरवरी, 2019 को 'हिंदी साहित्य और समकालीन विमर्श' विषय पर आयोजित एक दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया और हिंदी नवगीतों में ग्रामीण समाज व किसानों से संबंधित विषय पर अपना प्रपत्र प्रस्तुत किया।

साहित्य संचय
[ISO 9001 : 2015 प्रमाणित प्रकाशन]
हम करते हैं समय से संवाद

दिनांक : 06 फरवरी, 2019

Manoj Kumar
मनोज कुमार
निदेशक, साहित्य संचय

डॉ. हरीश अरोड़ा
संयोजक

गोस्वामी गणेश दत्त सनातन धर्म महाविद्यालय

सेक्टर – 32 सी, चण्डीगढ़ (हिन्दी–विभाग)

राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद, द्वारा पुनर्मूल्यांकित सर्वाधिक 'ए'+ ग्रेड प्रदत्त

चण्डीगढ़ साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

द्वारा आयोजित

एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

(2 फरवरी, 2019)

वैश्विक धरातल पर हिंदी

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सम्माननीय संजय सिंह यादव ने 2 फरवरी 2019 को 'वैश्विक धरातल पर हिंदी' विषय पर जी.जी.डी.एस.डी. महाविद्यालय, सेक्टर 32 सी, चण्डीगढ़(हिन्दी विभाग) में आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सत्राध्यक्ष/विशिष्ट–वक्ता /विशिष्ट अतिथि/आलेख–वाचक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया तथा अपना वैचारिक योगदान दिया। इन्होंने संगोष्ठी में समकालीन नवगीत और बदलते सांस्कृतिक मूल्य विषय पर शोध पत्र/आलेख प्रस्तुत किया।

प्रतिभा

संगोष्ठी संयोजिका :
डॉ० प्रतिभा कुमारी
विभागाध्यक्षा (हिंदी विभाग)
जी.जी.डी.एस.डी. कॉलेज, सेक्टर 32, चण्डीगढ़

आयोजक :
प्रो० जसपाल सिंह, सचिव,
चण्डीगढ़ सहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

प्राचार्य :
डॉ० भूषण कुमार शर्मा
जी.जी.डी.एस.डी. कॉलेज, सेक्टर 32, चण्डीगढ़

13

प्रमाण–पत्र

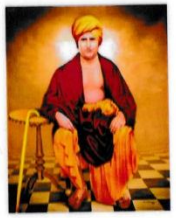

एक दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी

रविवार, 27 जनवरी, 2019

वर्तमान हिन्दी साहित्य किस ओर : वैश्विक परिदृश्य

आयोजक

हिन्दी-विभाग
डी.ए.वी. कॉलेज, चीका

उच्चतर शिक्षा महानिदेशालय
पंचकूला

ग्लोबल हिन्दी साहित्य शोध संस्था
भारत

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/सुश्री/डॉ./प्रो. संजय सिंह यादव ने एक दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में मुख्य अतिथि/बीज वक्ता/विशिष्ट अतिथि/मुख्य वक्ता/प्रतिभागी के रूप में सक्रिय प्रतिभागिता की तथा "समकालीन नवगीतों में आधुनिक समय में दरकते रिश्तों की व्यथा" विषय पर शोध - पत्र प्रस्तुत किया।

डॉ. रमेश लाल ढांडा प्राचार्य, डी. ए. वी. कॉलेज, चीका	प्रो. सरन घई पूर्व प्रो. यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो संस्थापक अध्यक्ष, विश्व हिन्दी संस्थान, कनाडा	डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल साहित्यकार ओस्लो (नार्वे)	डॉ. जसवीर सिंह अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग डी. ए. वी. कॉलेज, चीका

आयोजन स्थलः महात्मा हंसराज सभागार, डी. ए. वी. कॉलेज, चीका (हरियाणा)

HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT CENTER

[Under the Aegis of Lovely Professional University, Jalandhar-Delhi G.T. Road, Phagwara (Punjab)]

Certificate No. 116141

Certificate of Participation

This is to certify that **Mr. Sanjay Singh Yadav** S/o Sh. Badri Prasad Yadav participated in **Workshop on Qualitative Research Methodology** organized at Lovely Professional University w.e.f **September 29, 2018** to **September 30, 2018** and obtained **'B'** Grade.

Prepared by
(Administrative Officer –Records)

Head
Human Resource Development Center

Head
Division of Human Resource

Date of Issue: 30-09-2018
Place: Phagwara (Punjab)